अंक 299 वर्ष 60

भाषा

राम तत्व मीमांसा विशेषांक

नवंबर–दिसंबर 2021

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भारत सरकार

भाषा
नवंबर–दिसंबर (विशेषांक) 2021

HKK'kk ¼noekfld½

लेखकों से अनुरोध

1- ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः टंकित रूप में भेजी जाएँ। हस्तलिखित सामग्री यदि भेजी जाए तो वह सुपाठ्य, बोधगम्य तथा सुंदर लिखावट में होनी अपेक्षित है। रचना की मूलप्रति ही भेजें। फोटोप्रति स्वीकार नहीं की जाएगी।

2- लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3- अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4- सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5- रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6- अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7- भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8- समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

संपादकीय कार्यालय

संपादक भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

भाषा

नवंबर–दिसंबर 2021
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका (क्रमांक–16)

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रोफेसर नागेश्वर राव

परामर्श मंडल
प्रो. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'
डॉ. पी. ए. राधाकृष्णन
प्रो. ऋषभ देव शर्मा
प्रो. मंजुला राणा
प्रो. दिलीप कुमार मेधी
श्रीमती पद्मा सचदेव
श्री हितेश शंकर

संपादक
डॉ. राकेश कुमार

सह–संपादक
डॉ. किरण झा

प्रूफ रीडर
श्रीमती इंदु भंडारी

कार्यालयीन व्यवस्था
सेवा सिंह
संजीव कुमार

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **60** अंक : **6 (299)**
नवंबर–दिसंबर 2021

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
www.chd.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली - 110054
वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

बिक्री केंद्र :
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
www.chd.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12
सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, कें. हिं. नि.,
नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

मूल्य :

1.	एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	**(डाक खर्च सहित)**
2.	वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	
3.	पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	
4.	दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5.	बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या
संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

भाषा
नवंबर–दिसंबर 2021

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से

आपने लिखा

संपादकीय

आलेख

1. राम कथा कै मिति जग नाहीं	प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित	9
2. महात्मा गांधी और राम कथा : 'रामनाम' से 'हे राम' की यात्रा	डॉ. कमल किशोर गोयनका	15
3. मर्यादा पुरुषोत्तम राम एवं आद्या शक्ति सीता	डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'	24
4. राम तत्व की ही प्रधानता : धर्मनगरी अयोध्या	प्रो. पूरन चंद टंडन	27
5. रीतिकाल के रामपरक प्रबंध काव्य	प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल	31
6. राम तत्व की निर्मिति में अभिवादन का महत्व	डॉ. नृत्य गोपाल	38
7. राम काव्य परंपरा और आधुनिक राम काव्य का स्वरूप	डॉ. दीनदयाल	41
8. रामचरितमानस में मानव मूल्यों का चित्रण एवं स्थापना	अखिलेष आर्येंदु	44
9. रहीम के राम	हरींद्र कुमार	51
10. राम काव्य परंपरा का परम महाकाव्य रघुवंश शिरोमणि श्रीराम	डॉ. नरेश मिश्र	54
11. 'अपने–अपने राम' के राम	डॉ. शालिनी राजवंशी	61
12. रामचरितमानस में निर्गुण–सगुण–तत्व–समन्वय	डॉ. शुकंतला कालरा	65
13. राम कवन प्रभु पूछऊँ तोही	वीरेश कुमार	72
14. मैं न जिऊँ बिन राम	नीरजा माधव	76
15. रामचरितमानस में राम का मानवीय सरोकार	डॉ. दीपक कुमार पांडेय	81
16. तुलसी के राम काव्य में राम तत्व का सौंदर्य	साक्षी जोशी	87
17. तुलसीदास के साहित्य में सामाजिक चिंतन	डॉ. अहिल्या मिश्र	91
18. राम कौन हैं? रामायण क्या है?	गन्नू कृष्णामूर्ती	95
19. राम तत्व की मीमांसा	डॉ. प्रभु वि उपासे	99
20. प्रकृति के संरक्षण में राम कथा	डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह	107
21. श्रीलंका की नृत्य–नाटिकाएँ एवं आधुनिक रंगमंच की रामलीलाएँ	डॉ. अमिला दमयंती	114
22. उर्दू कविता में राम कथा प्रसंग	डॉ. शेख़ अब्दुल ग़नी	123
23. राम भक्ति संप्रदाय के कवि और चैतन्य दर्शन	डॉ. शशिकांत मिश्र	127

24. रामचरितमानस में मनोवृत्तियों के उदात्तीकरण की उद्भावनाएँ	डॉ. दीपिका विजयवर्गीय	133
25. रामायण और भारतीय संस्कृति	प्रो. जयंतकर शर्मा	139
26. बंगाली संस्कृति और राम कथाः एक सांस्कृतिक विमर्श	प्रो. निरंजन कुमार	150
27. मानवीयता और जीवन–मंगल का महाकाव्य : रामचरितमानस	डॉ. आलोक रंजन पांडेय	154
28. रामायण और रामचरितमानस में 'राम'	डॉ. वेदप्रकाश	160
29. भोजपुरी लोकश्रुति परंपरा में राम कथा	प्रो. सुनील कुमार तिवारी	165
30. निराला के राम (निराला कृत 'राम की शक्तिपूजा' के विशेष संदर्भ में)	डॉ. अभिषेक शर्मा	173
31. राम भक्तिरस का पूर्ण परिपाक : विनयपत्रिका	प्रो. दिलीप सिंह	177
32. निराला के राम	डॉ. तृप्ता	190
33. वाल्मीकि रामायण के महारहस्य के उद्घाटक गुंटूर शेषेंद्र शर्मा	डॉ. जे. आत्माराम	194
34. तुलसीदास की भक्ति भावना और विशिष्टाद्वैतवाद	डॉ. देवी प्रसाद तिवारी	199

संपर्क सूत्र **204**

सदस्यता फॉर्म

निदेशक की कलम से

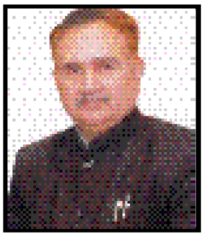

महर्षि वाल्मीकि के अनुसार 'रामो विग्रहवान धर्मः' अर्थात् राम मूर्तिमान धर्म है। वास्तव में सत्य, प्रेम और करुणा मिलकर ही धर्म का निर्माण करते हैं और राम में इन तीनों गुणों का मूर्तिमान स्वरूप देखने को मिलता है। ये तीनों मूल्य शाश्वत एवं सनातन हैं तथा राम और रामायण में भी उसी रूप में प्रतिष्ठित हैं। सत्य अभय प्रदान करता है, प्रेम एक दूसरे को प्रीति के सूत्र में बाँधता है और करुणा अहिंसा की प्रतिस्थापना करती है। पूज्य महात्मा गांधी ने इसी सत्य को स्वीकार कर भारतवर्ष के लिए रामराज्य की कल्पना की थी। किसी भी पूर्वाग्रह से हटकर विचार किया जाए तो किसी भी देश और काल के लिए इसी सनातन सत्य को आत्मसात् करने के अलावा अन्य कोई उपाय मानवता के कल्याण के लिए नहीं है।

रामायण और राम कथा का भारतीय जन–जीवन पर व्यापक प्रभाव रहा है। युग बीत जाते हैं, विवरण बदल जाते हैं, परंतु मनुष्य के मूलभूत विचारों में कोई बदलाव नहीं होता। रामायण और राम कथा के संदेशों का उपयोगी एवं आज तक प्रभावपूर्ण बने रहने का यही रहस्य है। सदियों से संचित संस्कार संस्कृति का निर्माण करते हैं और दोनों के सूक्ष्म प्रभाव के कारण निर्मित हुए स्थायी भाव से ही अस्मिता जन्म लेती है। कोई भी जन–समुदाय अपनी पृथक पहचान के बिना अच्छी तरह से जीवन–यापन नहीं कर सकता। राम कथा वस्तुतः मानव जाति की कथा है। रामायण मानवता का महाकाव्य है। रामायण के राम संस्कृति पुरुष हैं, पुराण पुरुष हैं और सनातन पुरुष हैं। मानवता जब ईश्वरीय सत्ता के साथ एकाकार होने के लिए मंथन करती है, तब उसका व्यक्तित्व धीरे–धीरे अस्तित्वमय बनता जाता है। अवतार की संकल्पना का जन्म इसी विचार–बोध से हुआ प्रतीत होता है। अध्यात्म, धर्म, दर्शन और काव्य की हल्की सी चोट खाए बगैर नर में निहित नारायणत्व का जाग पाना संभव नहीं होता। राम तत्व और राम कथा में कहीं कुछ ऐसा है जो समग्र मानव जाति को हृदय–धर्म के सूत्र संकेत दे जाता है। इसमें एक ऐसी जीवन–पद्धति उजागर हुई है, जो पृथ्वी पर जन्म लेने वाले प्रत्येक भूमि–पुत्र के अंतः संघर्ष को तो व्यक्त करती ही है, साथ ही उस संघर्ष के पार जाकर उसे सार्थकता का आस्वाद भी करवाती है।

राम तत्व और राम कथाओं के संदेशों को पुनर्स्थापित करने के उद्देश्य से राम तत्व विमर्श विशेषांक सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

(नागेश्वर राव)

आपने लिखा

नई शिक्षा नीति 2020 विशेषांक प्राप्त हुआ। इस महत्वपूर्ण कार्य में समय और संसाधन लगता है उसके पश्चात् ही इसके परिणामों पर हमारी दृष्टि केंद्रित हो पाती है। मैं यहाँ कुछ आलेखों पर अवश्य चर्चा करना चाहूँगा। प्रोफेसर पूरन चंद टंडन ने अपने आलेख 'अनुवाद बना नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का आधार स्तंभ' तथ्यात्मक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। डॉ. हरीश कुमार सेठी का आलेख 'नई शिक्षा नीति में राष्ट्रीय विकास का प्रमुख अस्त्र अनुवाद' कई दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण है। अनुवाद आज ज्ञान परंपरा का सेतु बना हुआ है। इसी प्रकार से डॉ. वेद प्रकाश, डॉक्टर हरेंद्र सिंह, रसाल सिंह, डॉ. शकुंतला कालरा, डॉक्टर राजरानी शर्मा और विजय कुमार भारती का आलेख बहुत महत्वपूर्ण लगा। मैं सभी लेखकों और संपादक तथा उनके समूह का इस कार्य के लिए अभिनंदन करना चाहूँगा। मुझे इस बात का पश्चाताप अवश्य है कि मैं इसमें अपना आलेख नहीं भेज सका यदि मुझे सूचना होती तो अवश्य लिखता कारण कि यह एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी का विषय है जो राष्ट्रीय महत्व का कार्य सिद्ध होगा।

प्रोफेसर त्रिभुवननाथ शुक्ल

'भाषा' पत्रिका का 'भारतीय एवं विश्व सिनेमा' का यह विशेषांक इसी परंपरा में पूर्व प्रकाशित 'आजकल', 'नया ज्ञानोदय', 'वर्तमान–साहित्य', 'आउटलुक' और 'नया पथ' के विशेषांकों के सरोकारों को और समृद्ध करता अंक है। दो साल पहले हैदराबाद में 29–30 नवंबर को इसी पत्रिका के परिसंवाद का यह सार–पाठ यहाँ करीबन 34 लेखों में संदर्भ सहित पाठकीय–समाज के लिए उपलब्ध है। 20वीं शताब्दी के छठे दशक से प्रारंभ 'भाषा' की यह बौद्धिक–वैचारिक यात्रा मूलतः भारतीय सिनेमा के अंचलों और, हिंदीभाषी चलचित्रों की विकास–यात्रा के शोध पर केंद्रित है। वैश्विक–जगत में भारतीय सिनेमा को रेखांकित करते एकाध लेख भी दिए गए हैं। किंचित–ग्लोबल–दृष्टि और स्तर से उसे आँका नहीं गया है। विश्व–सिनेमा की नई–लहर के प्रणेताओं–गोदार, कुरोसावा, कोपोला, ज़फ़र पनाही, और ईरान–इराक की नई पीढ़ी के जागरूक–सिनेमा के सिने महारथियों का हवाला तक यहाँ अनिवार्य नहीं है। हिंदुस्तानी 'पारसी थिएटर' से जन्मे सिनेमा के मूक युग और बोलती तस्वीरों में विकसित होते रहे, समाए सिनेमा उसके अप्रतिम सिने–पंडितों, गीतकारों, सफल अभिनेता–अभिनेत्रियों, धुनों–गीतों, मौसिकारों तथा निर्माता–निर्देशकों के रचाव की कला–भूमियों का यहाँ बोलबाला है। स्मृति–खंड में बिछड़ गई तीन प्रतिभाओं इरफ़ान, ऋषि कपूर, सुशांत सिंह राजपूत की सुनहली–यादों में अजय मलिक की लेखनी ने इरफ़ान की प्रतिभा और पूर्वदीप्ति का कारुणिक–शैली में हृदयस्पर्शी विवेचन किया है। बाकी खाकों में ऋषि कपूर (विनोद अनुपम) और सुशांत राजपूत (नीति सुधा) के रचे गए एहसास भी कारगर सिद्ध हुए हैं। युगीन गीतकारों में शैलेंद्र शंकर के साहित्यिक महत्व और चलचित्रों के गगन में उनकी गूँज का भी एहसास कराया गया है। नए विषयों में 'भूमंडलीकरण' (पृ. 68), 'सिनेमा–समाज'(पृ. 114), 'बाल–मन' के नवदूत सिनेमा की चर्चा भी विचारणीय प्रस्तुति है। आधुनिक 'फिल्म व्यवसाय', बदलते ट्रेंड, 'किन्नर–विमर्श' तथा 'जातिगत (प्रेमचंदीय) चित्रण' ध्यान आकर्षित करते विषय हैं। शेक्सपीयर की कृतियों पर बनी फिल्मों का जिक्र और आंचलिक–सिनेमा का ज़ख़ीरा उल्लेखनीय है। मलयाली, भोजपुरी, गुजराती, कॉकबर सिनेमा तथा मणिपुरी, असमिया फिल्मों का बौद्धिक–विवेचन और भूपेन हजारिका के योगदान का यह रचाव भी नया सा है।

प्रताप सिंह

संपादकीय

भारतीय संस्कृति में 'राम शाश्वत सत्य के प्रतीक हैं, भारतीय सस्कृति के द्योतक हैं। हमारे सभी प्राचीन धर्म ग्रंथों में राम कथा का उल्लेख है। अथर्ववेद में राम कथा का जिक्र है, छान्दोग्य उपनिषद में भी कहा गया है "रामाख्यम् इदम् ब्रह्म" अर्थात् राम ब्रह्म हैं। राम शब्द की व्युत्पत्ति रम् धातु से हुई है, जिसका अर्थ है रमण। यहाँ रमण से प्रयोजन सांसारिक विलासिता में रमण करने से नहीं है अपितु यह योग की वह चरम सीमा है, जहाँ पहुँचकर योगी को ईश्वर के सामीप्य का अनुभव कर आनंद मिलता है, उसका मन रमण करने लगता है। "रमन्ते योगिनः यस्मिन सः रामः– वस्तुतः जो रमता है वही राम है। कबीर ने भी अपने आराध्य को 'राम' कहा था– लेकिन कबीर के राम दशरथ के पुत्र नहीं है "दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम न जाना।"

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम जनमानस ही नहीं संपूर्ण विश्व की आस्था का केंद्र हैं। उनका हर आचरण मानव मात्र के लिए कल्याणकारी है। उनका शासन, उनकी मर्यादा, उनका नेतृत्व, उनका शौर्य और लोकमन में उनकी आस्था किसी भी लोक–शासक के लिए अनुकरणीय है। राम सामान्य नाम नहीं है। मुनि मन रंजन हैं राम। गोस्वामी जी लिखते हैं– "राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारि।" यही नहीं वे यहाँ तक कहते हैं– "राम सकल नामन्ह से अधिका" अर्थात् सामान्य मनुष्य होकर भी राम परब्रह्म परमेश्वर हैं।

वेद व्यास और वाल्मीकि से लेकर आधुनिक युग तक हिंदी ही नहीं बल्कि लगभग सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में विष्णु के अवतार, दशरथ पुत्र राम कथा का वर्णन अनेक रूपों में हुआ है। इन सभी कथाओं में राम के लौकिक और अलौकिक, दोनों रूपों को स्वीकार किया गया है। सभी कथाओं में राम के स्वरूप और उनके जीवन संघर्षो का चित्रण तो किया गया है, किंतु एक मानव के रूप में कठिनाई सहते हुए राम की उस मनोदशा का संकेत नहीं मिलता, जो सामान्य मनुष्य की होती है। राम के हृदय की निराशा, कुंठा, विवशता और अवसाद को निराला से पहले और बाद में किसी कवि ने दर्शाने का प्रयास नहीं किया।

आज के परिप्रेक्ष्य में श्रीराम का चरित्र सर्वाधिक प्रासंगिक है। मानवीय मूल्यों में निरंतर गिरावट, चारों ओर अशांति, अराजकता, असुरक्षा, आतंकवाद और युद्ध की विभीषिका का साम्राज्य फैला हुआ है। वैश्विक महामारी के बीच सारी मानवता दिशाहीन है। सत्य, संयम, सद्व्यवहार, संकल्प, शालीनता, विनम्रता, नैतिकता समाज से विलुप्त हो रही है। विनाश की नींव पर महाशक्तियाँ शांति का महल खड़ा करना चाहती हैं। हिंसा द्वारा न तो वैश्विक धरातल के बीच संतुलन बन सकता है और न ही मन की स्थायी शांति स्थापित हो सकती है। जब तक ब्रह्मांड का एक भी व्यक्ति दुखी है तब तक लोकतंत्र की सफल कल्पना व्यर्थ है सिर्फ 'रामराज्य' से ही विश्व का कल्याण संभव है। गोस्वामी जी ने कहा है कि सातों द्वीपों, नवों खंडों और तीनों लोकों में शांति के समान सुख नहीं है। शांति चाहे भौतिक हो, मानसिक हो, दैहिक हो, वैयक्तिक हो या सामाजिक हो उसकी प्राप्ति श्रीराम के आचरण पर अनुगमन, अपरिग्रह, अनासक्त कर्म, ज्ञान, भक्ति और अहिंसा के द्वारा ही संभव है, शायद इसीलिए महात्मा गांधी ने "अंहिसा परमोधर्मः" को स्वीकारा। राम कोई संज्ञा नहीं, वेदों की आत्मा हैं, सनातन संस्कृति हैं, भारतवर्ष के जन–जन का प्राण हैं।

राम संपूर्ण कलाओं में दक्ष, राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ, समाज सुधारक, नारी सम्मान के रक्षक दीन–दुखियों, गौ–ब्राह्मण–संतों के संरक्षक, निर्भीक, चतुर प्राण पालक, दुष्टों के संहारक, नीति–निपुण शासक हैं। जिसने उन्हें जान लिया, सब कुछ जान लिया है इसे जानने का मार्ग दुरूह अवश्य है असंभव नहीं है। गोस्वामी जी ने लिखा है ″सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।″ निश्चय ही राम सामान्य जन जीवन के प्रेरणा स्रोत हैं।

राम तत्व मीमांसा से संबंधित आलेखों से समन्वित प्रस्तुत विशेषांक सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। आपके सुझावों से भाषा के आगामी अंकों को और बेहतर रूप में प्रस्तुत कर सकेंगे इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

(डॉ. राकेश कुमार)

आलेख

राम कथा कै मिति जग नाहीं

प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित

राम कथा की विश्व–व्याप्ति का पूर्वाभास गोस्वामी जी को हो गया था। शायद इसलिए उन्होंने कहा था– "राम कथा कै मिति जग नाहीं....." तथा "रामायन सतकोटि अपारा"। उन्होंने 'मानस' में अनेक 'राम कथाओं के संदर्भ दिए और उनके कुछ उपयोगी प्रकरण यथाप्रसंग अपने काव्य में रखे भी। तुलसी के अनुसार राम कथा के मूल रचयिता हैं– भगवान शिव। उनके अतिरिक्त उन्होंने अगस्त्य, लोमष ऋषि, याज्ञवल्क्य और काकभुशुंडि को राम कथा का स्रोत माना। वाल्मीकि कृत रामायण को आदि काव्य माना गया है। अनेक विद्वानों ने उसे लगभग 4000 ई. पू. की रचना कहा है। यों, वेद में भी 'जनक', 'सीता', 'राम', 'मरुत' आदि शब्द आए हैं, पर कई विद्वानों ने वेद में राम कथा की उपस्थिति नहीं मानी है। दूसरी ओर, स्वामी करपात्री जी ने 'राम कथा मीमांसा' में वेद से अनेक संदर्भ खोज निकाले हैं।

एक यह जनश्रुति भी उत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों में विद्यमान है कि पहली राम कथा हनुमान जी ने लिखी थी। रामराज्य के स्थापित हो जाने के बाद हनुमान जी कुछ समय के लिए कैलाश चले गए थे। वहाँ श्रीराम चरित का स्मरण करते हुए पत्थरों पर एक राम कथा उत्कीर्ण की थी। उसी बीच महर्षि वाल्मीकि कैलाश पहुँचे। वहाँ 'हनुमत रामायण' को देखकर वे दुखी हो गए। हनुमान जी ने उनके दुख का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि एक राम कथा मैंने भी रची है, किंतु उसकी पहल का श्रेय अब मुझे नहीं मिलेगा। हनुमान जी ने उन्हें श्रेय देने हेतु अपने काव्य के सारे प्रस्तर खंड समुद्र में तिरोहित कर दिए। यह भी मान्यता है कि श्रीराम का राज्य त्रेतायुग में लगभग 11,000 वर्षों तक चला। उस बीच वाल्मीकि ने कुशीलवों द्वारा मौखिक राम कथा की गायन–परंपरा शुरू की थी। पहले यह श्रुति परंपरा में थी। बाद में लिपिबद्ध हुई। क्रमशः उसमें नए–नए प्रकरण प्रक्षेप जुड़ते गए, इसलिए रामायण को विकासात्मक काव्य (एपिक आफ ग्रोथ) कहा जाता है। उसके अनेक संस्करण अनेक आकार और अनेक पाठ हैं।

वाल्मीकि रामायण से प्रेरित होकर विभिन्न भाषाओं में राम कथाएँ रची गईं। संस्कृत में विष्णुपुराण, ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, भागवतपुराण, गरुड़पुराण, नृसिंहपुराण, मत्स्यपुराण, स्कंदपुराण, अग्निपुराण, वायुपुराण आदि में राम कथा प्रस्तुत की गई। इनमें ये रामायणें ज्यादा लोकप्रिय हुईं– अध्यात्म रामायण, आनंद रामायण, अद्भुत रामायण, भुशुण्डि रामायण, वशिष्ठ रामायण या महारामायण या योगवासिष्ठ, उदारराघव (साकल्य) अनर्घराघव (मुरारि) उदांतराघव (आयुराज) उल्लासराघव (सोमेश्वर) उन्मत्तराघव (पांडवीय) हनुमन्नाटक (मधुसूदन, दामोदर मिश्र) प्रसन्नराघव (जयदेव) आदि। संस्कृत के भास, कालिदास, भवभूति, भट्टिकाव्य कर्ता जैसे कवियों ने अनेक रामाख्यान लिखे। इसी काल क्रम में पाली भाषा में 'दशरथ

जातक' 'अनाम जातक' तथा प्राकृत अपभ्रंश में 'उत्तरपुराण कथा' (गुणभद्र), जैन रामायण (हेमचंद्र), रामपुराण (जिनदास), पउमचरिउ (स्वयंभू विमलसूरि, सत्यभूदेव), महारामायण (पुष्पदंत) आदि की रचना हुई। इन सबमें अपने निहित उद्देश्यवश समय–समय पर नए–नए प्रकरण सम्मिलित किए जाते रहे। बौद्ध कथाओं में यह संकेत दिया गया है कि अयोध्या परिवार में रक्त–पात रोकने के उद्देश्य से राम अकेले ही वन को गए थे। आरंभिक राम कथाओं में और उपर्युक्त कई पुराणों में सीता–निर्वासन की घटना नहीं आई है। महानाटक (दामोदर मिश्र 11वीं शती) में प्रथम बार पर्णकुटी के चारों ओर लक्ष्मण रेखा का उल्लेख हुआ है और रावण, मेघनाद के माया–युद्ध के बहुशः वर्णन किए गए हैं। 9वीं शताब्दी में तमिल के प्रसिद्ध कवि कंबन के 'रामावतारम' काव्य (कंबु रामायण) की रचना हुई। इसमें प्रथम बार जनक वाटिका में राम–सीता का पूर्वराग चित्रित किया गया है। कवि कंबन की एक और नई उद्भावना यह है कि रावण ने अकेली सीता का हरण न करके, समूची पर्णकुटी को उखाड़कर अशोक वाटिका में रख दिया था। तेलुगु की 'रंगनाथ रामायण' (गोन बुद्ध 1980 ई.) में यह कथा आई है कि एक बार कंदुक क्रीड़ा करते हुए राम ने मंथरा को घायल (विकलांग) कर दिया था। अतः उसने राम से बदला लेने के लिए गृह कलह करवाई थी। तेलुगु की 'रंगनाथ रामायण', 'भास्कर रामायण', 'मोल्ला रामायण' एवं 'रामाम्युदय' में भी ऐसी कई नई घटनाएँ हैं।

कन्नड में पंप रामायण (नागचंद) रामायण (कुमुदेंदु) रामविजय चरित (देवण्य) तोरावै रामायण आदि काफी चर्चित हैं। कन्नड की एक रामायण है 'सेतुराम'। इसमें प्रथम बार सेतु–निर्माण में गिलहरी प्रयास का उल्लेख किया गया है। कविवर कुंवेंपु ने भी अनेक नूतन वृत्तांत रखे हैं। मलयालम रामायण के कवि एषुतुच्छन तुल्लल ने सीता स्वयंवर का विवरण विस्तारपूर्वक दिया है। 'राघवीयम' काव्य में श्रीराम की जल समाधि का वृत्तांत आया है। केरल वर्मा की रामायण एवं 'इराम चरित' में भी कई नए वृत्तांत हैं। ओड़िया 'कवि दांडि, बलरामदास, जगमोहन की रामायण, विचित्र रामायण, विलंका रामायण (सारलादास) आदि में राम कथा विषयक कई नव वृत्तांतों को स्थान मिला है। असमिया रामायण (माधवकंदली) गीति रामायण (दुर्गाव) श्रीरामविजय (उत्तर पुराण, शंकर दव) तथा रघुनाथ काव्य (18वीं शती) में रामचरित का विवरण मिलता है। असमिया में सीताहरण प्रसंग पर कई काव्य और नाटक लिखे गए हैं। बांग्ला की 'कृत्तिवास रामायण' में वैष्णव मत की स्पर्धा में शाक्तमत को महत्व देने के ध्येय से महाशक्ति के समक्ष राम की प्रणति (शरणागति) का विस्तृत विधान किया गया है। उसमें यह भी कथा आई है कि रावणवध के पश्चात् मंदोदरी सीता को शाप देती है कि तुम्हारा पति एक दिन तुम्हारा परित्याग कर देगा। 'अनंत रामायण' में पूरी राम कथा है। माइकेल मधुसूदन ने 'मेघनादवध' काव्य में लक्ष्मण को खलनायक बना दिया है। पंजाब में 'गोविंद रामायण' (गुरुगोविंद सिंह) ने श्रीराम के शौर्य की बड़ी प्रशस्ति की है। गुजराती में 'नागर कृत रामायण', कहाव की रामायण, काशी सुत का 'हनुमंत चरित' देवविजय मणि कृत 'रामचरित्र' एवं क. मा. मुंशी के लेखन में भी राम कथा है। कश्मीरी रामायण (दिवाकर भट्ट) और मराठी की राम कथाओं में इसी प्रकार के अनेक नए एवं विचित्र प्रकरण प्राप्त होते हैं। महाराष्ट्री प्राकृत में प्रवरसेन कृत 'सेतुवंध' (5वीं शती) और एकनाथ के 'भावार्थ रामायण' की कई नई कथाएँ हैं। केशवराज की रामायण तथा स्वयंभू देव के रामायण पुराण में भी कई नए वृत्तांत हैं। तात्पर्य यह कि भारत की विभिन्न भाषाओं में, आदिवासी समाज की बोलियों तक में राम कथा की भरमार है।

राम कथा विदेशों में भी बहुव्याप्त है/रही है। स्याम देश (थाईलैंड) में राजा सेरीराम की परंपरा आज भी विद्यमान है। अभी वहाँ अयोध्या का भी अस्तित्व है। यहाँ पूरे विश्व में अयोध्या नाम से मिलते–जुलते लगभग एक दर्जन स्थान हैं। वहाँ ख्मेर भाषा में रचित 'रामकियेन' (रामाख्यान) रामवस्तु, रामताज्या, रामतात्थो, थिरीराम, पोंतव राम, थामप्वे आदि काव्य बहु प्रचलित हैं। ये 16वीं शती की

रचनाएँ हैं। बैंकाक की 'खोन' नामक रामलीला भी अतिविशिष्ट है। राम कथा के रचनाकार वहाँ के अधिपति राजाराम माने जाते हैं। इस काव्य की एक यह मान्यता है कि सीता की जन्मभूमि है श्रीलंका। वहाँ के राजा अतुल्यतेज (9वीं शती) स्वयं को कुश का वंशज मानते हैं। थाई देश में लवपुरी, जनकपुरी जैसे स्थान भी पाए जाते हैं। अभी वहाँ के राजवंश में राम पादुका–पूजन की प्रथा विद्यमान है। सत्यानंद कीर्ति रचित 'रामकीर्ति' नामक काव्य में भारतीय संस्कृति की गहरी छाप दिखाई देती है। वहाँ की कई सड़कों का और सेतुओं का नामकरण राम पर किया गया है। रामायण सर्किट वाले देशों में गणेश, लक्ष्मी, गरुड़ आदि के नाम करेंसी नोटों, बैंकों और हवाई अड्डों में दिखते हैं। थाई में कालनेमि उद्यान हैं। संजीवनी के चिह्न हैं। बैंकाक के रायल पैलेस की दीवारों पर राम कथा की चित्रावली अंकित है।

लाओस में भी एक अयोध्या है, रामायण मंदिर है और लिंग पूजा के अवशेष हैं।

लाओस (स्वर्णभूमि) में प्राप्त 'रामजातक' लाओ भाषा में रचा गया है। उसमें कहा गया है कि सीता की रक्षा करने वाली त्रिजटा विभीषण की पत्नी थी। वहाँ पुवंग प्रवंग में रामायण–प्रदर्शन 23 वर्षों से चल रहा है। इनके मुखौटे बड़े भव्य हैं। फालम पोंपचाक में भी चर्चित राम कथा हैं। इंडोनेशिया मुस्लिम बहुल राष्ट्र है। उसके बाली द्वीप में चकमक रामायण सचित्र राम कथा मिलती है। वहाँ गुजराती व्यापारियों द्वारा इस्लाम धर्म पहुँचा था। चीन से वहाँ बौद्ध धर्म पहुँचा था, जिससे प्रभावित होकर भी अधिकतर लोग प्राचीन सनातन संस्कृति से जुड़े रहे। आज भी भारतीय पुराख्यानों के अभिधान (संज्ञा शब्द) वहाँ बहुत प्रचलित हैं। इनकी एअर लाइन का नाम है 'गरुड़'। ये स्वर्ग नरक मानते हैं और राम की पूजा करते हैं। जावा में मुस्लिम जनता 'रामायण' नृत्य करती है। उनकी बैंकों में गणेश, लक्ष्मी एवं सेना में हनुमान तथा देवी के चिह्न (चित्र) दिखाई देते हैं। जकार्ता में भीम, अर्जुन, रथारूढ़ कृष्ण की प्रतिमाएँ हैं। बाली के विद्यालयों में मार्कण्डेय, भारद्वाज, अगस्त्य आदि का स्मरण किया जाता है। वहाँ त्रिकाल संध्योपासना तथा गायत्री मंत्र का प्रचलन है। उनके राष्ट्रीय चिह्न में त्रिशूल अंकित है धोती उनका राष्ट्रीय परिधान है। वहाँ जनता (कृषक) प्रायः भूदेवी–श्रीदेवी की पूजा करती है। हिंदी में इनसे संबंधित रेडियो, टी.वी. प्रसारण निरंतर होता रहता है। वहाँ की राम कथा में थोड़ा अंतर है। वहाँ मूर्ति निमार्ण में लुवंन प्रवंग की बड़ी भूमिका रही है। जकार्ता की रामलीला 43 वर्षों से चल रही है। वहाँ 8वीं शती में विरचित 'रामलीला 43 वर्षों से चल रही है। वहाँ 8वीं शती में विरचित 'रामायण काकविन' की बड़ी ख्याति है। इसमें लंका को 'लंगा' लिखा जाता है। जावा द्वीप में प्राप्य 'सेरतकांड' (15वीं) और राजा सिदौक की 'जवाई रामायण' (9वीं शती) का ऐतिहासिक महत्व है। सेरतकांड में रावण के चरित्र को काफी विस्तार दिया गया है। इस कवि के अनुसार रावण मंदोदरी का पुत्र है। सीता वेदवती का अवतार है। वहाँ के मंदिरों में सीताहरण की घटना, शिव धनुष के बजाय दूसरा धनुष, सीता द्वारा राम को लिखा गया पत्र और राम कथा के कई प्रसंग चित्रित हैं। सीता राम को वहाँ के राजाओं का पूर्वज माना जाता है। वहाँ देवपासर की एक सड़क का नाम लक्ष्मण पर है। इनकी राम कथा के अनुसार मंदोदरी दशरथ की रानी थी। सीता रावण की बहिन है। सीता का पुत्र है– पुल्लव। हनुमान रावण के अनुचर हैं। वहाँ 'हिकायत सेरीराम' में अल्लाह की तपस्या और नबी आदम के सहयोग से राम को सफल होते दिखाया गया है। जकार्ता में होने वाली रामलीला इस कथन का प्रमाण है कि राम वहाँ बहुपूज्य हैं। वहाँ के कई चौराहों पर राम की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं।

कंबुज (कंबोडिया) की प्राचीन राज्यसत्ता को महात्मा कौंडिन्य से संबंधित माना जाता है। वहाँ 'रामकेति' 'रामकेर' नामक एक अधूरी राम कथा मिली है। यों सत्रहवीं शती से लेकर अद्यावधि थाई एवं कंबुज में सात राम काव्य प्रचलित हैं 1. रामवस्तु 2. महाराम 3. रामतोन्यया 4. रामताज्यी 5. रामभगना 6. रामतात्यो 7. परंतुनराम। मलेशिया

में हिकायत सेरीराम' मलय रामायण एवं रामलीला के कठपुतली प्रदर्शन की बड़ी ख्याति है। इसमें बौद्धों और मुसलमानों की विशेष सहभागिता रहती है। फिलीपाइन में महारादिका लखना की ख्याति है। वहाँ खमेर राज्य के महल में बालिन (बालि) और सुग्रीव के युद्ध –चित्र हैं। सुमात्रा, बोर्नियो, सिंगापुर और वियतनाम (प्राचीन चंपा नगरी) में भी रामलीला की अपनी विशिष्ट शैलियाँ हैं। लंका में सिंहली राम कथा के अनेक अवशेष द्रष्टव्य हैं। इसके अतिरिक्त इनका कुमार मणि रचित 'जानकीहरण' काव्य भी महत्वपूर्ण है। जापान में राम शाक्यमुनि के रूप में पूज्य हैं। जापान के इकेदा ने 'रामचरितमानस' का जापानी में अनुवाद किया है। चीन में वाल्मीकि रामायण का अनुवाद गीनशेंग ने और रामचरितमानस का सफल अनुवाद दिग्जन ने किया है। दक्षिण कोरिया के गिरहे से भारत का घनिष्ठ संबंध रहा है। अयोध्या की राजकुमारी (रानी हो) का विवाह वहाँ के राजा से हुआ था। वहाँ 'हांग' नाम से रामचरितमानस का अनुवाद हुआ है। इसी प्रकार ओमान में राम तत्व न्यूनाधिक प्राप्य है। निष्कर्ष यह है कि रामायण को 'इपिक आफ एशिया' की जो मान्यता प्रदान की गई है, वह तथ्याधारित है। राम कथा चूँकि बृहत्तर भारत से संबंधित है, इसलिए श्रीलंका, नेपाल, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बांग्लादेश आदि उससे जुड़े हुए हैं। अविभाजित भारत में लाहौर, स्यालकोट, ढाका और प्राचीन गुरुकुल तक्षशिला आदि उससे अभिन्न रहे हैं। नेपाल, तिब्बत, भूटान आदि देशों की रामायण बहुचर्चित है। जावा में राम, हनुमान आदि की मूर्तियाँ भरी पड़ी हैं। वहाँ मंदिरों में पूर्णिमा को मुस्लिमों का नृत्य होता है। इन देशों के स्कूली पाठ्यक्रमों, जनसंचार माध्यमों, राष्ट्रीय चिह्नों और उपासना पद्धतियों में गायत्री, त्रिशूल, भूदेवी, श्रीदेवी, धोती, त्रिकाल संध्या एवं पुराकथाओं–पौराणिक चरित्रों की बहुव्याप्ति है।

भारतवंशी बहुल राष्ट्रों में मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गयाना, नेटाल (दक्षिण अफ्रीका) में रामोपासना लगभग डेढ़ सौ वर्षों से प्रचलित है। वहाँ भारत के कई प्रसिद्ध तीर्थों की अनुकृतियाँ तैयार की गई हैं। प्रायः हर घर में सनातनी मंदिर हैं। उनमें विष्णु, राम, कृष्ण, हनुमान आदि कई देवी–देवताओं के श्रीविग्रह प्रतिष्ठित हैं। स्थान–स्थान पर मंडलियाँ हैं। रामलीला के आयोजन होते हैं विश्व रामायण सम्मेलन तो प्रायः होते रहते हैं। 'मानस' – गायन प्रतियोगिता का वहाँ बड़ा प्रचलन है। दूरदर्शन का 'रामायण' धारावाहिक वहाँ बहुत लोकप्रिय है/ रहा है। जनसंचार माध्यमों में रेडियो, टी.वी. –सिनेमा तथा पत्र–पत्रिकाओं में राम कथा की बराबर अनुगूँज सुनाई देती है। मॉरीशस के 'रामायण सेंटर' में रामलीला, मानस पाठ, सत्संग, प्रतियागिताओं के आयोजन होते रहते हैं। यहाँ के कवि लेखक से कवि कमलाप्रसाद मिश्र, जोगेंदर सिंह कँवल, डॉ. सुब्रमणी, कुँवरसिंह और विवेकानंद शर्मा ने तथा सूरीनाम में मुंशी रहमान ने राम परक साहित्य रचा है। इन देशों के लोक साहित्य में तो राम कथा की भरमार है। त्रिनिदाद में मिट्टी का राममंदिर तथा तुलसी मंदिर सुप्रसिद्ध है। परशुराम यहाँ पूर्वज माने जाते हैं। इन देशों में यू.पी. शैली की रामलीला बहु प्रचलित है। गयाना की 'हिंदू धार्मिक सभा' रामलीला का आयोजन कराती रहती है।

राम कथा का परिविस्तार यूरोपीय देशों में भी देखा जा सकता है। इंग्लैंड के कई विद्वानों ने 'रामचरितमानस' का गहन मनन किया है। 'मानस' का पहला–पहला अनुवाद ग्राउज ने 1865 ई. में किया था। कॉरपेंटर ने 'थियोलॉजी ऑफ तुलसीदास' नामक शोधप्रबंध लिखकर 1918 में लंदन विश्वविद्यालय से हिंदी की प्रथम डॉक्ट्रेट (उपाधि) प्राप्त की थी। जॉर्ज ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य का इतिहास लिखकर विशेषतः 'नोट्स ऑन तुलसीदास' लिखकर तथा 'ब्रितानिया विश्वकोश' में टिप्पणी देकर गोस्वामी जी को विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवियों के बीच प्रतिष्ठित किया। एच.एन. विल्सन, एडमिन ग्रीब्ज, एटकिंस, स्मिथ, ग्राहमवेली, फर्गुसन, पिंकाट आदि ने राम कथा के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला और यह सिद्ध किया कि तुलसी जैसा लोकप्रिय कवि कहीं अन्यत्र नहीं दिखाई देता। फ्रांस के गार्सा द तासी ने जो इतिहास

लिखा, उसमें तुलसी को पहली बार स्थान दिया। वादविल ने पेरिस यूनिवर्सिटी से 'मानस' पर डी. लिट. की उपाधि प्राप्त की। इटली की तसमानिया को पाँचवी शती में निर्मित 'राम कथा चित्रावली' प्राप्त हुई। वहाँ एल.पी. तेस्सोतरी ने जितना शोधपरक कार्य किया है, वह स्तर की दृष्टि से अतुलनीय है। वेटिकन स्टेट और इथिपीय संग्रहालय में सीताहरण, जटायू लवकुश आदि के राम कथा संबंधी कई चित्र, सिक्के एवं अभिलेख पाए गए हैं। नीदरलैंड (हॉलेंड) में राम कथा का काफी प्रचलन है। पॉलैंड में प्रो. विस्की जैसे प्रसिद्ध भारतविद्या प्रेमी रहे हैं। वारसा विश्वविद्यालय के तात्याना ने 'मानस' का पोलिश भाषा में अनुवाद किया है। रूस में राम संस्कृति की विश्वयात्रा काफी चर्चित है। लेनिनग्राद में वारान्निकोव ने 'मानस' का रूसी में अनुवाद करते हुए जो भूमिका लिखी, वह आज भी बड़ी प्रासंगिक है।

यही स्थिति जर्मनी एवं चेकोस्लोवाकिया की है। बेल्जियम के फादर कामिल बुल्के ने तो राम कथा के क्षेत्र में अतुलनीय काम किया है। रूस में राम कथा के अध्ययन की शुरुआत चिशतीकोव ने की थी। चेलीशेव ने उसे और ऊँचाई प्रदान की। अमरीका के होडरास कैलिफोर्निया तथा यूनेस्को में राम कथा पर बहुत सामग्री प्राप्य है। वहाँ लगभग चार सौ मंदिर हैं। 55 मंदिर अकेले कैलिफोर्निया में हैं। दक्षिण अमरीका के देश ब्राजील में और सर्वाधिक कैरीबियन देशों में राम कथा अति प्रचलित है। प्रो. वेंडर सैमुल्ल जैसे प्राच्यविदों की यहाँ सक्रियता रही है। यही ख्याति कनाडा के क्रिष्टोफर की है। ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड में लोक चित्रशैली की राम कथा का पर्याप्त विकास बसंत निर्गुणे के माध्यम से हुआ है। अफ्रीकी देशों में विशेषतः नेटाल–प्रिटोरिया क्षेत्र में भारतवंशियों के बीच राम कथा का पर्याप्त प्रचार–प्रसार है। खाड़ी देशों में ईरान, मुख्यतः इराक, में राम कथा विषयक कुछ गुफा चित्र प्राप्त हुए हैं। दोनों देश आर्य संस्कृति से जुड़े रहे हैं। दुबई (संयुक्त अरब गणराज्य) में भी राम कथा लोकप्रिय है। सुलेमानिया में आज भी राम और हनुमान की कई मूर्तियाँ मिलती हैं। इसी प्रकार जर्मनी के ईनेसफार्नेल, हेलगुट नेस्पिताल की, स्वीडन के प्रो. लेनार्ड एवं पेर्सन की और जापान के तोमियो निजोकामी तनाका आदि की सक्रियता सराहनीय रही है।

भारत के पड़ोसी देशों में नेपाल, अफगानिस्तान तो वृहत्तर भारत के पहले अंग ही थे। राम कथा के कई पात्र और प्रकरण अफगानिस्तान से जुड़े हुए हैं। नेपाल का जनकपुर, मिथिला और मधेस क्षेत्र राम कथा से ओत–प्रोत है। नेपाल के कवि भानुभक्त की रामायण 18वीं शती की महत्वपूर्ण रचना है। पाकिस्तान के दो नगर–कसूर और लाहौर क्रमशः कुश और लव से संबंधित माने जाते हैं। जिन्ना ने अपनी डायरी में लिखा था कि कसूर के इन अपने पूर्वजों पर हमें गर्व है। इक़बाल की एक उक्ति है– 'है राम के वजूद पर हिंदोस्तां को नाज'। निष्कर्ष यह है कि वर्तमान विश्व न्यूनाधिक रूप में 'सीयराममय' है।

हिंदी में रामानंद, ईश्वरदास, नाभादास, सूरदास, अग्रदास (रामध्यानमंजरी), तुलसीदास, केशवदास, मधुसूदन (रामाश्मेध), विश्वनाथ सिंह (आनंद रघुनंदन), सरयू पंडित (जैमिनी पुराण), नवलसिंह (रामचंद्र विलास), सहजराम (रघुवंश –दीपक), बनादास, (उभय प्रबोधक), ललकदास (सत्योपाख्यान), शीतल (श्रीरामचरितायन), रुद्रप्रताप (सुसिद्धांतोत्तम रामखंड), लालदास (अवध विलास), रामनाथ जोतिषी (रामचंद्रोदय), मैथिलीशरण गुप्त (साकेत), रामकुमार वर्मा (उत्तरायण, ओ अहिल्या), बलदेव मिश्र (साकेत संत, रामराज्य, सीता वनवास), हरिऔध (वैदेही वनवास), नरेश मेहता (संशय की एक रात), निराला (राम की शक्तिपूजा, पंचवटी प्रसंग), सुमित्रानंदन पंत (मर्यादा पुरुषोत्तम), प्राणचंद चौहान, बैजनाथ, हृदयराम, सेनापति, पद्माकर, जगदीशगुप्त (जयंत, शांता), आदि सहस्रों ग्रंथ रचे गए हैं। (द्रष्टव्य–राम काव्य कोश–सूर्यप्रसाद दीक्षित)

राम कथा से संबंधित अनेक काव्य, नाटक, जीवनी ग्रंथ और इतिहास ग्रंथ तो रचे ही गए हैं अन्य कलाओं में भी इसे पर्याप्त प्रश्रय दिया गया है। महाराष्ट्र की चित्रवीथी, आंध्र की चित्रकलमारी, ओड़िया की पट्टचित्रावली, साथ ही पहाड़ी,

राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, बुंदेली, अवधी आदि की लोकचित्रकारी, संगीत एवं स्थापत्य में भी राम कथा की व्याप्ति है। कंबोडिया का अंकोरवाट मंदिर विश्व का सबसे बड़ा विष्णु मंदिर है। तिब्बत के जातकों में और मंगोलिया में राम कथा के अनेक चित्र पाए जाते हैं। दक्षिण भारत में 'कोदंड राम' के मंदिर अत्यंत प्रसिद्ध हैं। उत्तर–पूर्व के आदिवासी बहुल राज्यों में राम कथा के कई संकेत मिलते हैं। आदिवासी समाज की 'कर्वी रामायण' इस दृष्टि से विचारणीय है। भारत में आरण्यक राम की अनेक छवियाँ उकेरी गई हैं। इन सबके माध्यम से राम को मर्यादापुरुषोत्तम माना गया है और रामराज्य को आदर्श राज्य। यह कथा मातृ–पितृ–भक्ति, वात्सल्य, भ्रातृप्रेम, सतीत्व, राजा–प्रजा–संबंध, आस्तिक्य भाव, संतत्व अर्थात् परिपूर्ण मानुष भाव का प्रतिमान बन गई है। वस्तुतः सनातन, शाश्वत मानवीय मूल्यों को रूपायित करने के कारण यह राम कथा आज भी विशेषरूप से प्रासंगिक मानी जा रही है।

– साहित्यिकी, डी. 54, निरालानगर, लखनऊ–226020

❑❑❑

महात्मा गांधी और राम कथा : 'रामनाम' से 'हे राम' की यात्रा

डॉ. कमल किशोर गोयनका

विश्व में ऐसी कोई अवतारी कथा या महापुरुष की कथा हजारों वर्षों तक निरंतर लोकमानस में उसकी स्मृति का अंग नहीं रही है और कथा के साथ एकरूपता, उसे जीवन में उतारने तथा बार–बार देखने तथा आने वाली पीढ़ियों को सौंपने की अदम्य इच्छा भी नहीं रही है। वाल्मीकि ने 'रामायण' महाकाव्य रचकर राम कथा का जो बीजांकुर किया था, वह कालिदास आदि के साथ होता हुआ गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के रूप में कल्पवृक्ष बन गया और करोड़ों व्यक्तियों के लिए हिंदू धार्मिक ग्रंथ, कुछ के लिए इतिहास तथा कुछ के लिए काव्य–कल्पना के रूप में समादृत हुआ।

गांधीजी की धार्मिक आस्थाओं एवं बहुधर्मी ज्ञान के बीच राम कथा का उनका परिज्ञान, जीवन के कर्म–क्षेत्र में उसका उपयोग तथा राम की ईश्वरी सत्ता एवं अस्तित्व के प्रति उनका विश्वास तथा जीवन एवं राष्ट्र–जीवन में उसकी सार्थकता एवं स्वराज्य–संघर्ष में उनके प्रयोग सर्वविदित हैं।

गांधीजी को अपने परिवार से सभी धर्मों के प्रति समान भाव रखने के संस्कार मिले थे 'भगवद्गीता' और तुलसीदास की 'रामायण' से अपार शांति मिलती है।

गांधीजी ने 'लंदन' लेख ('इंडियन ओपिनियन', 27 नवंबर, 1909) में विजयादशमी पर लिखा है। वे लिखते हैं कि विजयादशमी राम–रावण युद्ध की याद दिलाती है। ऐतिहासिक पुरुष के रूप में रामचंद्रजी को प्रत्येक भारतीय सम्मान दे सकता है। जिस देश में रामचंद्र सरीखे पुरुष हो गए हों, उस देश पर हिंदुओं, मुसलमानों और पारसियों सभी को गर्व होना चाहिए। श्रीरामचंद्रजी महान भारतीय थे, इस दृष्टि से वे प्रत्येक भारतीय के लिए माननीय हैं। हिंदुओं के लिए तो देवता रूप हैं। अगर रामचंद्रजी, सीताजी, लक्ष्मणजी और भरतजी जैसे लोग भारत में फिर पैदा हों तो भारत शीघ्र ही एक सुखी देश बन जाए।

गांधीजी ने एच.एस.एन. पोलक को 29 अक्तूबर, 1909 को पत्र में लिखा कि दशहरे का उत्सव रावण पर राम की–अर्थात् असत्य पर सत्य की विजय का उत्सव है।

गांधीजी ने 'हिंद स्वराज' (दिसंबर, 1909) में दो स्थानों पर तुलसीदास को उद्धृत किया है। पाठक कहता है कि 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं है और हमें काल–स्वरूप अंग्रेज को भगाना है। दूसरे स्थान पर संपादक दया के महत्व के लिए तुलसीदास को उद्धृत करता है– *दया धर्म को मूल है, देह मूल अभिमान/तुलसी/दया न छोड़िए, जब तक घट में प्राण।* गांधीजी के अनुसार यह शास्त्र–वचन है। दया–बल, आत्म–बल है, वह सत्याग्रह है। यह बल न हो तो पृथ्वी रसातल में समा गई होती।

गांधीजी शरीर–बल की तुलना में चैतन्य–बल अथवा आत्म–बल के महत्व को बताते हुए मगनलाल गांधी को 2 अप्रैल, 1910 को पत्र में लिखते हैं, श्रीरामचंद्रजी अथवा अन्य महापुरुषों के

उदाहरणों का अक्षरशः स्थूल अर्थ लेना बहुत उलझन में पड़ना है। रावण का दसशीश और बीस भुजाओं वाले शरीर के रूप में होना मुझे संभव नहीं लगा, परंतु उसे महाविषयी और जड़ मानकर रामचंद्रजी रूपी चैतन्य ने उसका विनाश किया, यह बात समझ में आ सकती है। तुलसीदासजी ने रामचंद्रजी को मद, मोह और महा ममता रूपी रजनी के तमपुंज का नाश करने वाले भगवान भास्कर की सेना का रूप दिया है। जब हम में मद, ममता और मोह शेष नहीं रहेंगे, तब क्या तुम समझते हो कि हम में किसी के भी शरीर का नाश करने की कामना लेश मात्र भी रह सकती है? अगर तुम 'नहीं' कहते हो तो रामचंद्रजी, जो अभिमान, ममता, मोह आदि से रहित और दया के निधान थे, रावण का वध किस प्रकार कर सकते थे, फिर भी, जब हम उस विभूति को प्राप्त कर लेंगे और लक्ष्मण की तरह 14 वर्ष तक निद्रा का त्याग कर देंगे और ब्रह्मचार्य का पालन करेंगे, तब समझ सकेंगे कि शरीर–बल का प्रयोग कहाँ किया जा सकता है। ('संपूर्ण गांधी वांङ्मय', खंडः 10, पृष्ठ 220)।

गांधीजी मगनलाल गांधी को ही 4 नवंबर, 1910 के पत्र में तुलसीदास के 'रामचरितमानस' से अयोध्या–कांड का अंतिम छंद उद्धृत करते हैं– *सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनम न भरत को/मुनि मन अगम यम नियम सम दम विषम व्रत आचरत को/दुख दाह दारिद्र दंभ दूषण सुजस मिस अपहरत को/ कलिकाल तुलसी के सठन्हि हठि राम सनमुख करत को।* इसे गांधीजी भरत की प्रशंसा में नहीं यम–नियमों के उपयोग का महत्व बताने के लिए करते हैं, जिसका वे स्वयं प्रयोग कर रहे थे और अपने बेटों से भी करा रहे थे। इसी कारण गांधीजी लिखते हैं कि इस छंद की ध्वनि मेरे कानों में गूँजती रहती है। इस कठिन समय में भक्ति को प्रधान पद मिला है और भक्ति के लिए भी यम–नियम आदि तो चाहिए ही। यह हमारी शिक्षा के मूल हैं। उनके बिना सारी–सारी चतुराई व्यर्थ है। (वही, खंड : 10, पृष्ठ 369)।

गांधीजी रंभा बाई के साथ में हुए अन्याय के संदर्भ में रामचंद्रजी द्वारा अंगद को समझौते के लिए रावण के पास भेजना, रावण का मरना और सीताजी को छुड़ाने आदि प्रसंगों का उल्लेख करते हैं और चाहते हैं कि जनरल स्मट्स न्याय करें अन्यथा जनता उन्हें धराशाही कर देगी। (वही, खंडः 10, पृष्ठ 393)। गांधीजी ने अदालत में रंभा बाई की पैरवी की थी।

गांधीजी के मन में एक भारत था जो उन्हें अपने परिवार, अध्ययन, सत्य–संघर्ष एवं धर्मों की गहरी पैठ से मिला था और एक भारत रामराज्य का था जिसका वह स्वप्न लेकर भारत–सेवा के लिए भारत जा रहे थे। गांधीजी ने गोखले की सलाह पर एक वर्ष भारत की परिक्रमा की, उसे देखा–समझा और सत्याग्रह के द्वारा ब्रिटिश सत्ता के अन्याय–अत्याचार से लड़ने के लिए मैदान में अपने चंपारण–सत्याग्रह को उन्होंने तुलसीदास, 'रामचरितमानस', तथा राम–रावण युद्ध से जोड़कर उसमें अपना सत्याग्रह–अहिंसा–आत्मबल का दर्शन समाहित कर दिया। गांधीजी को ज्ञात है कि तुलसीदास ने कृष्ण की मूर्ति को शस्त्रधारी राम का रूप लेने पर ही सिर झुकाया था और उन्होंने लिखा भी कि तुलसीदास के अलौकिक ग्रंथ में शस्त्र–पूजा दृष्टिगोचर होती है, परंतु वे मानते हैं कि सभी ग्रंथों में आत्मिक बल ही सर्वोत्कृष्ट शक्ति है। गांधीजी एक बार अयोध्या गए थे तो राम–मंदिर के दर्शन करने गए और उन्होंने लिखा कि मुझमें तुलसी जैसी राम–भक्ति नहीं है, अन्यथा मैं राम–सीता को खादी के वस्त्रों को पहनवा देता। गांधीजी ने इसके विवरण में 'नवजीवन', 20 मार्च, 1921 को लिखा है, अयोध्या में जहाँ रामचंद्रजी का जन्म हुआ, कहा जाता है उसी स्थान पर छोटा–सा मंदिर हैं जब मैं अयोध्या पहुँचा तो वहाँ मुझे ले जाया गया। श्रद्धालु और सहयोगियों ने मुझे सुझाव दिया कि मैं पुजारी से विनती करूँ कि वह सीता–राम की मूर्ति के लिए पवित्र खादी का उपयोग करे। मैंने विनती तो की, लेकिन उस पर अमल शायद ही हुआ हो। जब मैं दर्शन करने गया तब मैंने मूर्तियों को भौंडी मलमल और जरी के वस्त्रों में पाया। यदि मुझमें तुलसीदासजी जितनी गाढ़ी भक्ति की सामर्थ्य होती तो मैं भी उस समय

तुलसीदासजी की तरह हठ पकड़ लेता। कृष्ण–मंदिर में तुलसीदासजी ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक धनुष–बाण लेकर कृष्ण राम–रूप में प्रकट नहीं होते तब तक तुलसी–मस्तक नहीं झुकेगा। श्रद्धालु लेखकों का कहना है कि जब गोस्वामीजी ने ऐसी प्रतिज्ञा की तब चारों ओर उनकी आँखों के सामने रामचंद्रजी की मूर्ति खड़ी हो गई और तुलसीदास का मस्तक सहज ही नत हो गया। अनेक बार मेरा ऐसा हठ करने का मन आता है कि हमारे ठाकुरजी को जब पुजारी खादी पहना कर स्वदेशी बनाएँगे तभी हम अपना माथा झुकाएँगे, लेकिन मुझे पहले तप करना होगा, तुलसीदासजी की अपूर्व भक्ति को प्राप्त करना होगा। (वही, खंडः 19, पृष्ठ 461)। गांधीजी द्वारा राम–रावण के युद्ध और रावण–वध की सत्याग्रह– दर्शन से व्याख्या भी दर्शनीय है। गांधीजी ने अपने लेख 'निष्क्रिय प्रतिरोध नहीं, सत्याग्रह' में लिखा, रावण की अतुलित शारीरिक शक्ति रामचंद्र की आत्मिक शक्ति के निकट किसी गिनती में ही नहीं है। रावण के दस मस्तक रामचंद्र के सामने तृणवत् है। रामचंद्र योगी पुरुष हैं, वे संयमी हैं, निरभिमानी हैं– 'सम भाव सदा वैभव विपदा' तथा 'नहीं राग न लोभ मान मदा', इत्यादि उनके गुण हैं। यही सत्याग्रह की पराकाष्ठा है। इस भारत–भूमि में सत्याग्रह की विजय पताका फिर उड़ सकती है और उसे उड़ाना हमारा प्रधान कर्तव्य है। हम यदि सत्याग्रह का अवलंबन करें तो हम अपने विजेता अंग्रेजों को जीत लें, वे हमारी प्रबल आत्म–शक्ति के वश में रहें और ऐसे परिणाम से संसार को लाभ पहुँचे। (2 सितंबर, 1917, वही, खंडः 13, पृष्ठ 530)। यहाँ गांधीजी कहना चाहते हैं कि रामचंद्रजी ने जैसे शस्त्र से नहीं आत्मबल से रावण को हरा दिया, हम वैसे ही ब्रिटिश सत्ता रूपी रावण को सत्याग्रह रूपी आत्मबल से पराजित कर सकते हैं। गांधीजी इस प्रकार धर्म, अधर्म, सत्य, सत्याग्रह, अहिंसा, हिंसा, ईश्वर, आत्मा, आत्मबल, शस्त्रबल, आत्मा की आवाज आदि अनेक दार्शनिक शब्दों को अपने गांधी–दर्शन के अनुरूप पारिभाषित करते हैं और अपने स्वराज– संघर्ष को राम के संघर्ष से तथा राम कथा के प्रसंगों, संदर्भों तथा उपलब्धियों से संबद्ध करके देश के करोड़ों भारतीयों के मन में दासता से मुक्ति और स्वराज्य के रूप में रामराज्य प्राप्ति की ज्वाला प्रज्वलित कर देते हैं। उस कालखंड में गांधीजी में ही भारतीय लोकमानस को समझने तथा उसे अपने विचारों–कार्यों का अनुगामी एवं संकल्पशील बनाने की अद्भुत क्षमता थी। गांधीजी के पास भारत की मुक्ति का एक महास्वप्न था और वह रामराज्य का स्वप्न था। गांधीजी के शब्दों में रामराज्य का अर्थ है– स्वराज्य, धर्मराज तथा लोकराज्य। इसके लिए जनता का धर्मनिष्ट होना आवश्यक है और कांग्रेस एवं असहयोगी जनता को धार्मिक बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। (वही, खंडः 20, पृष्ठ 120) और रामराज्य–धर्मराज्य के लिए राम की कथा सबसे अधिक आदर्शपूर्ण है, सर्वोत्तम है। वैसे भी रामराज्य की स्थापना तो राम के जीवन एवं जीवन–दर्शन के आधार पर ही हो सकती है। राम कथा की भित्ति पर ही रामराज्य का महल निर्मित हो सकता है। गांधीजी भारतीय जनता के मूल स्वभाव को जानते थे। उन्होंने 30 जनवरी, 1927 को 'सर्चलाइट' में लिखा था कि भारत कर्मभूमि, धर्मभूमि और त्यागभूमि है और राम कथा के कारण ही भारत का ऐसा लोकमानस बना है। गांधीजी इसी धर्मपरायण भारत–भूमि की स्वतंत्रता के लिए लगभग तीस–बत्तीस वर्ष तक स्वराज्य के लिए विभिन्न रूपों में आंदोलन–सत्याग्रह आदि करके, सर्वहिताय रामराज्य की स्थापना का प्रयत्न करते रहे। राम कथा रामलीला, कथावाचन, धार्मिक उत्सवों–पर्वों मंदिरों में पूजा, साधु–संतों के संसर्ग आदि से सैकड़ों वर्षों से जनमानस के जीवन का अंग बन चुकी थी, इस कारण गांधीजी ने तुलसीदास की 'रामचरितमानस' की राम कथा और उसके दर्शन के कुछ महत्वपूर्ण तत्वों को अपने स्वराज्य–दर्शन का आधार बनाया और अपनी हजारों प्रार्थना–सभाओं, भाषणों, पत्रों, लेखों आदि के द्वारा उसे धार्मिक एवं आध्यात्मिक स्पर्श देकर उसे विशाल जनता द्वारा सहज–स्वाभाविक रूप में स्वीकार करना संभव बना दिया। गोस्वामी तुलसीदास तथा

'रामचरितमानस' को राष्ट्रव्यापी स्वीकृति थी और जनता 'मानस' के अनेक विचारों, सूक्तियों के साथ राम कथा को कई रूपों में जीती आ रही थी। अतः तुलसीदास के प्रमाण से प्रस्तुत प्रसंग, सिद्धांत अथवा उद्देश्य जनता के लिए प्रेरणा, प्रबोधन, जागरण और कर्मशीलता एवं त्याग–तप–आत्माहुति आदि का आधार बनता चला गया और गांधीजी के आंदोलन में जनता की भागीदारी हजारों–लाखों में होती गई। राम कथा धर्म की अधर्म पर, सत्य की असत्य पर तथा दैवी संस्कृति की राक्षसी संस्कृति पर विजय की कथा है और गांधीजी ने ब्रिटिश सत्ता को राक्षसी सभ्यता तथा रामराज्य रूपी भारत सभ्यता को दैवी सत्ता बताकर स्वराज्य के संघर्ष को प्रस्तुत किया और उनका स्वाधीनता आंदोलन भी अधर्म पर धर्म की विजय का आंदोलन बन गया। उन्होंने दक्षिण अफ्रिका तथा अपने भारतीय संघर्ष को स्वयं धर्म–युद्ध कहा और देश के हजारों–लाखों लोगों ने इस धर्म–युद्ध के लिए स्वयं को गांधीजी को सौंप दिया। तुलसीदास ने मुगल सल्तनत की गुलामी और अत्याचार के विरुद्ध कलियुग में रामराज्य का विकल्प दिया था और हिंदू जनता अपने धर्म एवं अस्तित्व को बचा कर रख सकी और गांधीजी भी ब्रिटिश राक्षसी सत्ता के विरुद्ध रामराज्य का विकल्प दे रहे थे। इस प्रकार तुलसीदास और गांधी दोनों ही विदेशी सत्ता के विरुद्ध स्वशासन के उच्च आदर्श के रूप में रामराज्य को भारतीय स्वप्न के रूप में प्रस्तुत कर रहे थे जो भारतीय जनता के लिए इससे बेहतर विकल्प नहीं हो सकता था, क्योंकि वह भारतीय जनता की स्मृति में सैकड़ों–सैकड़ों वर्षों से बीज रूप में विद्यमान था।

वे यह भी जानते थे कि भारत में स्वराज्य के संघर्ष को सफलता तभी मिलेगी जब प्रत्येक परिवार तक पहुँचा जाएगा। इस लक्ष्य के लिए राम कथा ही सर्वाधिक उपयोगी हो सकती थी। राम कथा पूर्ण रूप में एक पारिवारिक कथा है और परिवार में होने वाले अधिकांश रिश्ते इसमें विद्यमान हैं। राम कथा में पिता, माता, पुत्र, भाई, पत्नी, भाभी, सास, ससुर, बहू, जेठानी, देवरानी आदि मानवीय रिश्तों का अद्भुत सौंदर्य विद्यमान है। इनमें से अधिकांश पात्र आदर्श चरित्र बन कर सामने आते हैं। गांधीजी अपने स्वाधीनता के आदर्शों एवं लक्ष्यों को इन पात्रों के आदर्शों से जोड़कर भारतीय परिवारों तक पहुँचाते हैं और बड़ी संख्या में स्त्री–पुरुष, युवा–वृद्ध, बालक–बालिका आदि उनकी अहिंसक क्रांति के अंग बनते चले जाते हैं और गांधीजी एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन करने में सफल होते हैं। इसी कारण उन्होंने राम कथा को 'संस्कारी' कथा कहा है जो पूरे परिवार को देश–प्रेम के संस्कार में बाँध देती है। इसके साथ ही राम कथा के श्रेष्ठ मानवीय मूल्य भी सत्याग्रह के द्वारा परिवार तक पहुँचते हैं और वे राष्ट्र–जीवन को प्रभावित करते हैं। प्रेमचंद की कहानियों तथा उपन्यासों की कथाओं एवं पात्रों के चरित्रों में इस प्रभाव को देखा जा सकता है। गांधीजी अपने लक्ष्यों के लिए इसका बार–बार उपयोग करते हैं– राम का धर्मयुद्ध था तो उन्होंने अपने संघर्ष को भी धर्मयुद्ध कहा; राम सत्य के पालक थे तो वे भी सत्याग्रह की बुनियाद पर खड़े थे और गांधीजी तो सत्य को ही ईश्वर मानते थे। राम कथा में रामराज्य अंतर्भूत है और गांधीजी का स्वराज्य भी रामराज्य के लिए गांधी जी के मानवीय मूल्य सत्य, अहिंसा, अंतर्भूत, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, क्षमा, सेवा, त्याग, सहिष्णुता, उदारता, प्रेम, दया, वात्सल्य, विनय, बलिदान, उत्सर्ग, समरसता आदि का स्रोत राम कथा में देखा जा सकता है। राम कथा में दशरथ और राम प्राण जाने हों तब भी वचन का पालन करते हैं, अर्थात् वे अपने निर्णय पर अटल रहते हैं और गांधीजी के जीवन में तो कई बार ऐसे अवसर आते हैं जब वे अपने निर्णय में अकेले होने पर पीछे नहीं हटते और प्राणोत्सर्ग के लिए भी तैयार रहते हैं। रामचंद्रजी रावण–वध के बाद सोने की लंका विभीषण को सौंप देते हैं और सब जीती संपदा त्याग कर स्वर्ग से भी अधिक प्रिय अपनी जन्मभूमि लौट आते हैं और गांधीजी भी स्वराज्य मिलने पर कांग्रेस पार्टी भंग करने का प्रस्ताव रखते हैं और कोई सरकारी पद भी स्वीकार नहीं करते। रामचंद्रजी ने अपने वनवास

तथा सीता की खोज एवं रावण से युद्ध में भील, निषाद, रीछ, वानर, विश्वकर्मा आदि जातियों का सहयोग लिया तथा उनकी विजय में तो वानर जाति का महत्वपूर्ण योगदान रहा। राम ने उस युग में शबरी, निषादराज, जटायु, जामवंत तथा हनुमान–सुग्रीव आदि को गले लगाकर तथा उन्हें अपने समकक्ष–समरूप बनाकर मानवता का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया और गांधीजी ने भी 'अंत्योदय से सर्वोदय' को व्यावहारिक रूप देने की पूरी चेष्टा की और रामराज्य के लिए अत्यावश्यक बताया। गांधीजी ने तुलसीदासजी की अनेक सूक्तियों एवं सिद्धांत– कथनों को अपनी स्थापनाओं के लिए अपना लिया। वे अनेक बार तुलसी के 'दया धर्म का मूल है' का उल्लेख करते हैं, *दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान/तुलसी दया ना छोड़िए जब तक घट में प्राण।* गांधीजी दया का अर्थ अहिंसा करते हैं और देश के प्रति दया हो तो भारतीयों को अपृश्यता एवं विदेशी वस्तुओं को बहिष्कार करना चाहिए। वे तो दया–धर्म को हिंदू–धर्म का मूल ही मानते हैं। वे 'रामचरितमानस' के इस दोहे का भी खूब उपयोग करते हैं– *जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार/ संत हंस गुन गहहि पय परिहरि बारि बिकार।* गांधीजी इस सूक्ति–कथन से अपने अनुयायियों तथा स्वराज्य–समर्थकों को समझाते हैं कि विधाता ने जड़–चेतन विश्व को गुणदोषमय रचा है, किंतु संत–रूपी–हंस दोष–रूपी–जल को छोड़कर गुण–रूपी–दूध को ही ग्रहण करता है।

गांधीजी द्वारा राम कथा के चिंतन और व्यवहार में गोस्वामी तुलसीदास का 'रामचरितमानस' ही मुख्यतः केंद्र में है। उन्होंने किशोरावस्था में 'रामचरितमानस' का पाठ तथा रामनाम के भजनादि सुने थे जो राम कथा के प्रति उनके प्रेम एवं श्रद्धा का कारण बने और वे ऐसे बने कि कदम–कदम पर प्रेरणा तथा शक्ति एवं निर्णय के स्रोत बने और उनके आंदोलनों को राष्ट्रव्यापी बनाने एवं जन स्वीकृति तथा उसकी भागीदारी में सफल हुए। गांधीजी के जीवन के वर्ष 1884 से 1896 तक के बारह वर्षों में जब वह 27 वर्ष के हो चुके थे, उनके मन में राम, कृष्ण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि के अवतार होने तथा हिंदू–धर्म के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हो गई थी। गांधीजी ने पहली बार जून, 1891 को 22 वर्ष की आयु में इंग्लैंड आने की अपनी कठिनाइयों के संदर्भ में 'रामायण' के चरितनायक राम तथा राक्षस खलनायक रावण का उल्लेख किया था। 'रामायण' (तुलसीदास की 'रामचरितमानस') की चर्चा 1906–07 से मिलती है जब वे उसका संक्षिप्त रूप प्रकाशित करने की तैयारी कर रहे थे। गोस्वामी तुलसीदास का नामोल्लेख पहली बार गांधीजी के मगनलाल गांधी को लिखे 2 अप्रैल, 1910 के पत्र में मिलता है। गांधीजी इस पत्र में तुलसीदास द्वारा राम के रावण के वध में शरीरबल की अपेक्षा आत्मिकबल के प्रयोग को समझाते हैं। वे लिखते हैं कि तुलसीदास ने रामचंद्रजी को मद, मोह और महा ममता रूपी रजनी के तम–पुंज का नाश करने वाले भगवान भास्कर की सेना का रूप दिया है। (वही, खंडः 10, पृष्ठ 220)। गांधीजी भारत लौटने के बाद तुलसीदास की प्रशंसा की झड़ी लगा देते हैं। वे जब भी 'रामचरितमानस' (जिसे बराबर 'रामायण' कहते हैं) तथा उसके महत्व एवं प्रतिपाद्य पर चर्चा करते हैं तो उनकी लेखनी तथा वाणी से उनकी प्रशस्ति में शब्द निकलते हैं, जैसे तुलसीदास हिंदू–धर्म का मूल 'दया' का ज्ञान देते हैं, लेखकों से 'कादंबरी' नहीं 'रामायण' माँगते हैं, असंत रूपी अंग्रेजी राक्षसी गुलामी के नाश की प्रेरणा देते हैं, तुलसी के भजन 'रघुवर तुमको मेरी लाज' को सदैव गुनगुनाते हैं, मैं तुलसी का पुजारी हूँ, करोड़ों में एक तुलसी हैं, तुलसी के कारण अवतारवाद पर श्रद्धा है, वे सुधारक नहीं भक्त शिरोमणि हैं, हिंदी के शेक्सपियर हैं, मानवता के कवि हैं, उनकी महान आत्मा ने दुखी भारत को 'रामायण' के रूप में संजीवन मंत्र दिया है, रामनाम रूपी 'गीता' दी है तथा रामनाम के मंत्र प्रदाता हैं, आदि (वर्ष 1919 से 1946 तक के दस्तावेजों से) गुणगान करते हैं और कई बार उन पर लगे आरोपों से रक्षा करते हैं। तुलसीदास पर नारी विरोधी होने तथा बालि आदि का वध दिखाने के आरोप लगाए जाते हैं

और गांधीजी उन्हें इन आरोपों से मुक्त करते हुए लिखते हैं कि' 'ढोल गवार सूद्र पशु नारी' वाली उक्ति तुलसी की नहीं है। वह क्षेपक है और यदि वह उनकी है तो भी उन्होंनें उसका प्रयोग युग की प्रचलित रूढ़ि के निरूपण के लिए किया है। गांधीजी ने 10 अक्तूबर, 1929 (वही, खंडः 42) को तुलसीदास के स्त्री पात्रों के संबंध में उन्हें 'स्त्री–जाति के पुजारी' बताते हुए लिखा कि राम को सीता के कारण यश मिला, न कि सीता को राम के कारण मिला। कौशल्या, सुमित्रा आदि भी –'मानस' के पूजनीय पात्र हैं। शबरी और अहिल्या की भक्ति आज भी सराहनीय है। रावण राक्षस था, मगर मंदोदरी सती थी। ऐसे अनेक दृष्टांत इस पवित्र भंडार में मिल सकते हैं। मेरे विचार में इन सब दृष्टांतों से यही सिद्ध होता है कि तुलसीदासजी ज्ञानपूर्वक स्त्री–जाति के निंदक नहीं थें। ज्ञानपूर्वक तो वे स्त्री–जाति के पुजारी ही थे। गांधीजी की इस तुलसी–भक्ति को हमारे स्त्री–विमर्श के लेखकों–आलोचकों को अवश्य ही देखना चाहिए।

गांधीजी तुलसी की 'रामचरितमानस' के इतने भक्त–प्रशंसक थे कि उन्होंने 1906–07 में इसका संक्षिप्त रूप तैयार करा कर प्रकाशित कराया, जिससे आश्रमवासियों को पढ़ाया–समझाया जा सके।

गांधीजी ने राम, रामनाम, रामनाम का जाप, रामधुन तथा रामराज्य आदि राम–कुल के विषयों पर गंभीरता पूर्वक विचार किया है और अपनी मान्यताएँ स्पष्ट की हैं। गांधीजी राम और राम कथा के संबंध में अपने विचारों के काफी सूत्र तुलसीदास के महाकाव्य 'रामचरितमानस' में से लेते हैं और प्रायः स्वीकृति का भाव ही होता है, किंतु बहुत कम स्थानों पर असहमति की मुद्रा रहती है। गांधीजी और तुलसी दोनों ही राम कथा में राम को ही केंद्र मानते हैं और वैसे भी राम कथा की संरचना राम के जीवन पर ही आधारित है और उसके सभी पात्र राम से जुड़े हैं और राम के प्रसंग से ही उनका प्रसंग सामने आता है। 'रामायण' के प्रकांड पंडित, लेखक तथा मॉरीशस में 'रामायण सेंटर' तथा राम मंदिर' का निर्माण कराने वाले पंडित राजेंद्र अरुण ने इसी का अनुमोदन करते हुए लिखा है, 'रामचरितमानस' में राम की भूमिका केंद्रीय है, शेष सारे पात्र राम के चरित्र को महिमामंडित करने के लिए नकारात्मक या सकारात्मक भूमिका निभाते हैं। राम से अलग किसी भी पात्र का कोई मोल नहीं है। ('मानस में नारी', पृष्ठ 7)। गोस्वामी तुलसीदास राम को परमेश्वर, कामनारहित, अनाम, अरूप, अजन्मा, सच्चिदानंद, सर्वव्यापी, परम ब्रह्म, आदि के रूप में देखते हैं– *एक अनीह अरूप अनामा, अज सच्चिदानंद पर धामा/ व्यापक बिस्व रूप भगवाना, तेहि धरि देह चरित कृत नाना।* ये भगवान राम के रूप में दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकार की लीला करते हैं। तुलसीदास के एक अन्य दोहे (बालकांड, दोहा 51) में राम को समस्त ब्रह्मांड का स्वामी, मायावती बताते हुए कहते हैं कि अपने भक्तों के हित के लिए, अपनी इच्छा से, रघुकुल के मणि–रूप में अवतार लेते हैं। राम के जन्म पर स्वयं भगवान शिव काकभुशुंडी के साथ अयोध्या में परम आनंद और प्रेम सुख में खुले घूम रहे थे और सूर्य एक मास तक अयोध्या में अपने रथ सहित रुके रहे और राम का गुणगान करते चले गए। तुलसी राम के कौशल्या की गोद में खेलने पर फिर उनके ईश्वरत्व का गुणगान करते हैं– *ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुण बिगत बिनोद/सो अज प्रेम भगति बस कौशल्या के गोद।* एक और तुलसी ऐसे ब्रह्मरूप, अवतारी राम की आराधना में उनका गुणगान करते हैं– 'भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी' और ये राम 'निज आयुध भुज चारी' हैं। कौशल्या इस पर राम के चतुर्भुज रूप को देखकर बालक रूप में आने की प्रार्थना करती हैं। इसी प्रकार तुलसीदास को 'रामचरितमानस' में जहाँ भी दशरथनंदन राम के ईश्वर के गुणगान का अवसर मिलता है, वे बड़े भक्तिभाव से उनका गुणगान करते हैं। तुलसी के लिए दशरथनंदन राम मनुष्य रूप में परम ब्रह्म हैं, लेकिन गांधीजी राम के इस द्विरूपात्मक स्वरूप की अनुभूति जीवन के नित–नए होने वाले अनुभवों से करते हैं। उन्होंने अपने जीवन में अंतिम महीनों में कहा

था कि शुरू में मैंने राम को सीतापति के रूप में पाया, लेकिन जैसे–जैसे मेरा ज्ञान और अनुभव बढ़ता गया, वैसे–वैसे मेरा राम अविनाशी और सर्वव्यापी बना है, और है। इसका मतलब यह है कि वह सीतापति बना रहा और साथ ही सीतापति के माने भी बढ़ गए। संसार ऐसे ही चलता है। जिसका राम दशरथ राजा का कुमार ही रहा, उसका राम सर्वव्यापी नहीं हो सकता, लेकिन सर्वव्यापी राम का पिता दशरथ ही सर्वव्यापी बन जाता है।

गांधीजी ने अपने पूजनीय राम को चैतन्य दैवी–शक्ति, निरंजन, निराकार, ओंकार, अजन्मा, सृष्टिनिर्माता एवं पालक, दरिद्रनारायण, परमात्मा तथा सच्चिदानंद पूर्ण ब्रह्म कहा है। गांधीजी इन दोनों प्रारूपों के अस्तित्व को स्वीकारते हुए 14 अप्रैल, 1933 को लिखते हैं, "मेरा राम दशरथनंदन है सही, लेकिन वह उनसे भी बहुत अधिक है। वही सच्चिदानंद पूर्ण ब्रह्म है"। तुलसीदास और गांधी ने राम के दशरथनंदन एवं ब्रह्म–परमात्मा दोनों होने की समस्या का अपने–अपने कर्म और आस्था–विश्वास की मनोरचना से हल किया है। तुलसी भक्त हैं और वे राम को दशरथनंदन और हरि का अवतार दोनों ही मानते हैं और इस प्रकार वे सगुण (राम) तथा निर्गुण (ब्रह्म) एक एकत्व करते हुए रामनाम को इन दोनों ही रूपों से बड़ा सिद्ध करते हैं। तुलसी स्पष्ट कहते हैं कि राम ने भक्त के हित में ही नर–तन धारण किया है– *राम भगत हित नर तन धारी/सही संकट किए साधु सुखारी।*(1/23)। *तुलसीदास राम को अगुण–सगुन दुइ ब्रह्म–सरूपा, अकथ अगाध अनादि अनूपा/मोरें मत बड़ नामु दुइ तें, किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें।* अर्थात् निर्गुण और सगुण–ब्रह्म के दो स्वरूप हैं। ये दोनों ही अकथनीय, अथाह, अनादि और अनुपम हैं।

तुलसीदास का अटूट विश्वास है कि नाम लेते ही नामी उसका अनुगमन करते हैं। राम का नाम लेते ही राम वहाँ आ जाते हैं– *समुझत सरिस नाम अरु नामी/प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी।* राम के नाम और राम के रूप में छोटे–बड़े का कोई प्रश्न नहीं है, लेकिन रूप नाम के अधीन है। कोई भी रूप नाम के बिना पहचाना नहीं जा सकता, परंतु रूप को देखे बिना रामनाम का स्मरण किया जाए तो विशेष प्रेम के साथ वह रूप हृदय में आ जाता है– *सुमिरिअ नाम रूप बिन देखें/आवत हृदयं सनेह बिसेषें।* तुलसी के इन विचारों से गांधी को रामनाम, रामधुन, जपना–प्रार्थना आदि के संबंध में अपने विचार एवं कर्म–शैली को निर्धारित करने में बड़ी मदद मिली है।

तुलसी भक्त–कवि थे और राम कथा एवं राम–चरित्र को देखने की उनकी दृष्टि भक्त की थी, लेकिन गांधी की मनोरचना एवं लक्ष्यरचना एक राजनीतिज्ञ की थी जिसे वे धर्माश्रित राजनीति कहते थे तुलसी तथा गांधी में एक बड़ा अंतर यह भी है कि तुलसी मध्य–काल के तथा गांधी आधुनिक–काल के व्यक्ति हैं और अपने–अपने युग–स्वभाव एवं युग–चेतना से अनुप्राणित हैं और अपने–अपने समय में राष्ट्रीय सांस्कृतिक भाव–विचार की क्रांति कर रहे हैं। यह गांधीजी की बुद्धिमत्ता, बुद्धि–कौशल तथा देश एवं युग–निष्ठा थी कि उन्होंने मध्य युग के विराट भक्ति–दर्शन को आधुनिक –काल के स्वाधीनता के महाकाव्यीय संघर्ष का अंग बना दिया और अपने स्वराज्य आंदोलन के लिए राम कथा का नैतिक, आध्यात्मिक, मानवीय एवं श्रद्धामूलक सदुपयोग ऐसा किया कि रामनाम उनकी प्रत्येक गतिविधि में एक शक्ति–स्रोत, एक आस्था–विश्वास, एक उत्सर्ग–बलिदान तथा एक राष्ट्रीय एकत्व का अवलंब बना और स्वराज्य रूपी नौका में बैठाकर अपने कल्पित रामराज्य के द्वार तक पहुँचा दिया। गांधीजी ने अपने जीवन में रामनाम का उपयोग राम–कुल के अन्य सदस्यों की तुलना में सर्वाधिक किया है। यहाँ 'राम कथा विचार–कोश' में सर्वाधिक टिप्पणी 398 रामनाम पर हैं, राम पर 236, रामधुन पर 32 तथा रामराज्य पर 93 विचार–टिप्पणियाँ हैं और इस प्रकार लगभग आधी टिप्पणियाँ (कुल 1461 में 759) हैं। ('नवजीवन', 6 मई, 1928, 'संपूर्ण गांधी वांङ्मय', खंड : 36, पृष्ठ 314)। गांधीजी रामनाम की शक्ति और स्वरूप का बराबर उद्घाटन करते चलते हैं–

'रामनाम रामबाण औषधि है', 'आत्मा का उपचार' है, 'एकमात्र आधार है', 'कल्पद्रुम है', 'तारणहार है', 'त्रिविध व्याधियों का उपचार है', पारमार्थिक वस्तु है जो निर्विकार–निष्काम है', 'यह ईश्वर का नाम है', 'यह पारसमणि–राम–ओंकार सब है' तथा यह 'आत्मा को शुद्ध' करता है। गांधीजी दशरथनंदन सीतापति राम को अर्थात् ऐतिहासिक राम को ईश्वर नहीं मानते। वे राम के निराकार रूप को ईश्वर मानते हैं और इस राम के नाम के भूखे हैं और इस रामनाम को जगत का एकमात्र रामबाण मानते हैं।

गांधीजी की इस समदृष्टि के कारण और अपने जीवन–दर्शन और प्रार्थना एवं लक्ष्य को दशरथनंदन राम, रामधुन, रामनाम तथा आदि में केंद्रित करने तथा अपने भाषणों, प्रश्नोत्तरों पत्रों, लेखों आदि में इनका बार–बार उल्लेख करने के कारण हिंदू–मुस्लिम तथा अन्य लोगों द्वारा भी गांधीजी पर अनेक आरोप एवं आपत्तियाँ उठाई गईं और उन्होंने उनका सामना किया और उत्तर दिया और दृढ़ता एवं तर्कशीलता से उत्तर दिया। गांधीजी पर एक बड़ा आरोप था कि वे राम की जब चर्चा करते हैं तो उन्हें दशरथ–पुत्र नहीं मानते, पर वे 'सियापति रामचंद्र की जय' का जयकार कराते हैं। यहाँ इस ग्रंथ में कुछ ऐसी टिप्पणियाँ हैं जिन्हें वे राम को इतिहास–पुरुष नहीं कल्पना–पुरुष मानते हैं और कभी वे उन्हें दशरथनंदन कहते हैं। गांधीजी ने ऐसे ही एक प्रश्न का उत्तर 26 मई, 1946 को दिया जो 'हरिजनसेवक' के 2 जून, 1946 के अंक में प्रकाशित हुआ। उन्होंने आरंभ में इस प्रश्न का उल्लेख किया और लिखा, 'रामधुन में राजाराम, सीताराम रटा जाता है, वह दशरथनंदन राम नहीं तो कौन है? तुलसीदास ने इसका उत्तर तो दिया ही है, तो भी मुझे कहना चाहिए कि मेरी राय कैसे बनी है। राम से रामनाम बड़ा है। हिंदू–धर्म महासागर है। उसमें अनेक रत्न भरे हैं। जितने गहरे पानी में जाओ, उतने ज्यादा रत्न मिलते हैं। हिंदू–धर्म में ईश्वर के अनेक नाम हैं। सैकड़ों लोग राम–कृष्ण को ऐतिहासिक व्यक्ति मानते हैं और मानते हैं कि जो राम दशरथ के पुत्र माने जाते हैं, वही ईश्वर के रूप में पृथ्वी पर आए और यह कि उनकी पूजा से आदमी मुक्ति पाता है।

गांधीजी इस प्रकार तुलसीदास के राम को ईश्वर मानते हुए तुलसी के समान ही राम से अधिक उनके नाम को अधिक महत्व देते हैं और कहते हैं कि राम का उच्चारण करने में एकाक्षर ही है और ओंकार और राम में कोई फर्क नहीं है (13 जुलाई, 1927), और जब राम का स्मरण करते हैं तो राम अचानक एक सर्वव्यापी और सर्व–शक्ति ईश्वर का रूप धर लेते हैं जो शंका और आलोचना से परे हैं। वे तुलसीदास को बार–बार याद करते हैं और उनकी रामनाम की महिमा को उद्धृत करके अपने श्रोताओं–पाठकों को समझाते हैं कि राम नाम एक ऐसा सूर्य है जो जीवन के गहन अंधकार को मिटाता है और उसमें दिव्य नाम की एक आध्यात्मिक शक्ति है और उस पर भरोसा करना चाहिए। गांधीजी इस पर तुलसी की यह पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं– *और नहीं कुछ काम के, मैं भरोसे अपने राम के/दोऊ अक्षर सब कुछ तारे, वारी जाऊँ उस नाम पे/तुलसी प्रभु राम दयाधन, और देव सब दाम के।* (27 अप्रैल, 1947 के भाषण से)। इसलिए गांधीजी गॉड या अल्लाह की अपेक्षा रामनाम लेने और जपने का आग्रह करते हैं क्योंकि वह भारतीय परिवेश, इतिहास एवं भावनाओं से जुड़ा हुआ है।

गांधीजी के सम्मुख तुलसी के रामराज्य का आदर्श था। वे तुलसी के समान राम–भक्त नहीं थे, यद्यपि वे वैसी राम–निष्ठा एवं राम–भक्ति चाहते थे। गांधीजी भारत–भक्त थे और भारत के प्रति पूर्णतः निष्ठावान थे। गांधीजी ने तुलसी की राम–भक्ति को भारत–भक्ति में रूपांतरित कर दिया और वे भारतीय जनता के लिए स्वराज्य के रूप में, रामराज्य की स्थापना के लिए सत्याग्रह, सविनय–अवज्ञा, असहयोग, बहिष्कार और 'करो या मरो' तक संघर्ष करते हुए विभाजित भारत की स्वतंत्रता के द्वार तक पहुँचे।

गांधीजी उस समय एकमात्र ऐसे राजनेता थे जो स्वराज्य को रामराज्य कह रहे थे, भारत में रामराज्य स्थापित करने का सपना देख रहे थे, और क्योंकि, रामराज्य को साकार करने की शक्ति

राम में ही थी और रामवंश का कोई उत्तराधिकारी ही इस पवित्र काम को कर सकता था, अतः वह रामवंश के उत्तराधिकारी के रूप में इस रामराज्य की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे। गांधीजी का जन्म रामवंश में नहीं हुआ था, लेकिन वह अपने कर्म से रामवंशी हो गए थे और उनका यह विश्वास कि रामवंश अभी मौजूद है, जीवित है, इसी तथ्य का प्रमाण है। यदि गांधीजी राम बन सके होते तो रामराज्य ने तो स्वतः ही अपना आकार–स्वरूप ले लिया होता। तुलसी के राम के राजा बनते ही सर्वत्र रामराज्य स्वतः बन गया था और राम को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता, जबकि गांधीजी इस रामराज्य के आदर्श से अपना रामराज्य स्थापित करना चाहते थे। गांधीजी के रामराज्य में तुलसी के रामराज्य की अनेक विशेषताएँ मिलती हैं।

— ए–98, अशोक विहार, फेज प्रथम, दिल्ली–110052

❑❑❑

मर्यादा पुरुषोत्तम राम एवं आद्या शक्ति सीता

डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'

विश्व–संस्कृति के गौरवशाली आधार मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्र एवं नारीत्व की गरिमामयी आधारशीला श्री सीता की आदर्श से अभिमंडित चरित–गाथा, युग–युगांतरों से इस धरती की धड़कन बनकर, प्रेरणा का अमृतमय, अक्षय स्रोत बनी हुई है।

भारतीय दर्शन की 'अवतार वाद' की अनूठी चिंतन धारा में शील–शक्ति–सौंदर्य की त्रिवेणी, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम तत्वतः 'पर ब्रह्म' का अवतार हैं, तो श्री सीता मूलतः पर ब्रह्म की शाश्वत धर्मा' आद्याशक्ति' ही हैं, जो श्री राम के साथ सदैव जन–कल्याण में प्रवृत्त रहती हैं। वस्तुतः इसी व्यापक दर्शन–चेतना के कारण 'राम और सीता' भारतीय धर्म–साधना में 'ब्रह्म' एवं उनकी 'परम शक्ति' के रूप में अवतरित माने गए हैं।

अध्यात्म दर्शन के अनुसार 'ब्रह्म' श्रीराम तथा 'शक्ति' की सीता का यह आविर्भाव पृथ्वी मंडल पद 'सत्यं–शिवं–सुंदरम्' की प्राण–प्रतिष्ठा के लिए ही होता है। 'रामचरितमानस' में महाकवि तुलसी ने यही कहा है–

जब जब होय धरम कै हानी। बाढ़इ असुर महा अभिमानी।।
तब तब धरि प्रभु मनुज सरीरा। हरहिं सकल भव सज्जन पीरा।।

विश्व–साहित्य को 'रामचरितमानस' जैसी अमृतमय काव्य कृति देने वाले लोकनायक महाकवि तुलसीदास ने तो श्रीराम को 'पूर्ण ब्रह्म' के रूप में प्रतिष्ठित करके उनके युगांतरकारी चरित्र में 'सद्, चिद्, आनंद' की दिव्य त्रिवेणी को ही प्रतिष्ठित करके, 'सच्चिदानंद' ब्रह्म श्रीराम को 'शील' के साथ 'शक्ति' और सौंदर्य का अनुपम अधिष्ठाता बनाया है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्र के चरित्र का यह 'शील' ही तो युग की प्रेरणा बन गया है। श्री कृष्ण भी अवतार हैं, किंतु 'लोक रंजन' की भूमिका में होने के कारण उनमें 'शील' नहीं है; केवल 'शक्ति' एवं सौंदर्य' ही हैं; जबकि 'लोक–रक्षण' की भूमिका में होने के कारण श्रीराम के चरित्र में 'शील' के आधार पर ही 'शक्ति' एवं 'सौंदर्य' की प्रतिष्ठा हुई है।

'दिव्य हैं श्रीराम और सीता'

मर्यादा, विनयशीलता और आदर्श के चिरंतन प्रतीक श्रीराम और शक्ति रूपा सीता के चरित्र केवल सांसारिक आदर्शों की स्थापना के प्रतीक मात्र नहीं हैं, बल्कि भारतीय–दर्शन में परम् ब्रह्म की महत्वपूर्ण अवधारणा के प्रतीक भी हैं। महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जब 'रामचरितमानस' में अपार श्रद्धा के साथ घोषणा करते हैं–

सिया राम मय सब जग जानी।
करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

तब निश्चय ही, तुलसी तत्व रूप में 'ब्रह्म' श्रीराम तथा 'आद्या शक्ति' श्री सीता को इस चराचर जगत के कण–कण, अणु–परमाणु आदि में विद्यमान मानते हैं। महाकवि संत तुलसीदास की यह व्यापक दृष्टि एक ओर, जहाँ विश्व के सभी धर्मों, जातियों, भाषाओं और देशों की सीमाओं का

लाँघकर 'विश्व–एकता' के सर्वोच्च आदर्श को स्थापित करती है, वहीं ब्रह्म 'रूप में श्रीराम एवं 'शक्ति' रूप में सीता के आध्यात्मिक दिव्यत्व की उद्घोषक भी बन गई है।

मर्यादा पोषक एवं लोक रक्षक श्रीराम का चरित्र दिव्य है, यही संकेत स्पष्ट रूप से आदि महाकवि महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण' से भी मिलता है। सृष्टि पालक भगवान विष्णु से श्रीराम के अभिन्नत्व को स्वीकार करते हुए महर्षि वाल्मीकि 'युद्धकांड' में घोषणा करते हैं–

अश्ररं ब्रहम सत्यं च मधेचान्ते च राघव,
लोकानां त्वं परोधर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः।।

अर्थात्– 'हे राघव! आप ब्रह्म हैं। आप ही सृष्टि के आदि, मध्य तथा अंत में सत्य रूप 'अक्षर' हैं। आप ही समस्त लोकों में परम धर्म हैं और आप ही चतुर्भुज विष्वक्सेन विष्णु हैं।'

आदि महाकवि महर्षि वाल्मीकि ने 'रामायण' में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और आद्या शक्ति श्री सीता को जगत के चराचर में प्राण रूप मान कर, उनके 'ब्रह्मत्व' को जिस अनूठे रूप में अभिव्यक्ति दी है वह भारतीय अध्यात्म की उपलब्धि है।

'श्रीराम ही परमेश्वर हैं'

भारतीय अध्यात्म–दर्शन में 'राम' और 'सीता' के नामों की अनेकशः व्याख्याएँ की जाती रही हैं। दर्शन, साधना, अध्यात्म और धर्म के विशिष्ट तत्व दर्शियों ने श्रीराम को 'परमेश्वर' मानते हुए, उन दोनों की जो गूढ़ तात्विक व्याख्याएँ दी हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय अध्यात्म–चिंतन का मूलाधार अनादिकाल से ही शाश्वत मानव–कल्याण रहा है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को जहाँ आदि महाकवि वाल्मीकि 'अक्षरं ब्रह्म सत्यं' कह कर चराचर सृष्टि का मूल घोषित करते हैं, वहीं, ब्रह्म वैवर्त पुराण' में स्पष्ट रूप से भगवान विष्णु के अवतार श्रीरामचंद्र के 'राम' को 'परमात्मा' का वाचक माना गया है–

'रा' शब्दो विश्व वचनो,
'म' श्वापीश्वर वाचकः।
विश्वानामीश्वरो योहि,
तेन रामः प्रकीर्तितः।।

'ब्रह्म वैवर्त पुराण' उक्त श्लोक में प्रयुक्त 'राम' शब्द के 'रा' को पूर्णत्व का वाचक माना गया है, तो 'म' शब्द विशेष रूप से ईश्वरत्व का व्यंजक है। समस्त चराचर का ईश्वर होने के कारण 'राम' का ही अर्थ 'परमात्मा' है। स्पष्ट है कि 'राम' के विराटत्व की यह अवधारणा ही भारतीय–चिंतन की विस्तृत जीवन–दृष्टि का मूल कारण भी बन गई है।

भारतीय अध्यात्म–साधना में 'राम' को 'निराकार' तथा 'साकार' रूपों में चिरंतमन 'ब्रह्म' का ही रूप माना गया है। रूप में साधक लेते हैं, तब यह 'ओम्' का वाचक होकर उन्हें परम ब्रह्म की अनुभूति कराता हैं वैयाकरणों तथा दर्शनाचार्यों की मान्यता है कि 'राम' शब्द में विद्यमान 'आ' तथा 'अ' की धवनियाँ मूलतः 'र्' तथा 'म्' व्यंजनों के सम्यक उच्चारण के लिए ही प्रयुक्त होती हैं।

इस संदर्भ में, 'मांडूक्य–उपनिषद्' में एक प्रामाणिक सूत्र हमें मिलता है– "ओमित्वेतच्क्षरम्" जिससे व्याकरण की उक्त धारणा की संपुष्टि तो होती ही है, साथ ही 'राम' शब्द की परमात्मावाची 'ओम्' शब्द से अभिन्नता भी पूर्णतः सिद्ध हो जाती है।

'राम' के नाम में प्रयुक्त हुए दो वर्णों की इसी गूढ़ आध्यात्मिक महत्ता को 'रामचरितमानस' के रचयिता महाकवि तुलसीदास भी श्रद्धापूर्वक स्वीकार करते हैं–

एकु छत्र एकु मुकुटमनि, सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुवर नाम के, बरन विराजत दोउ।।

ये ही ब्रह्म– राम जब निराकार 'ओम' से साकार रूप धारण करते हैं, तो योगमाया 'सीता' और शेष रूप 'लक्ष्मण' के साथ अवतरित होते हैं। 'अध्यात्म रामायण' इस महान चिंतन को संपुष्ट करती है–

रामो नारायणः साक्षाद ब्रह्मणा या चितः पुरा।
रावणस्य वधार्थाय जातो दशरथात्मजः।।
योगमायापि सीतेति जाता जनक नंदिनी।
शेषोऽपि लक्ष्मणो जातो राममन्वेति सर्वदा।।

इसी 'अध्यात्म रामायण' के रचयिता ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के इस अवतार को महादेव

'शिव' का अवतार घोषित करके, शेष अवतारों से, 'रामावतार' को पृथक बताया है–

अवताराः सुबहवो विष्णु लीलानुकारिणः।
तेषां सहस्र सदृशो रामो ज्ञानमयः शिव।।

अर्थात्– 'विष्णु के अनेक अवतार हुए हैं और उन सभी अवतारों में विष्णु की लीलाओं के अनुरूप ही लीलाएँ की गई हैं, लेकिन शिव स्वरूप ज्ञानमय यह रामावतार वैसे सहस्र अवतारों के समान है।' स्पष्ट है कि 'अध्यात्म–रामायण' में ही श्रीराम के लोक रक्षक रूप को व्यापक 'शिवत्व' की अवधारणा से जोड़कर देखा गया है।

आद्या शक्ति हैं श्री सीता

मर्यादा पुरुषोत्तम राम की अर्धांगिनी 'सीता' मूलतः ब्रह्म की आदि शक्ति ही हैं। श्री सीता को चराचर जगत के 'सृजन, पोषण तथा संहार की सूत्रधारिणी' परम शक्ति स्वीकार करते हुए 'अध्यात्म रामायण' में कहा गया है–

एषा सीता हरेर्माया सृष्टि स्थित्यंत कारिणी।
सीता साक्षात् जगद्धेतुश्चिच्छत्तिू र्जग–दात्यिका।।

अर्थात्– 'विश्व की सृष्टि, स्थिति तथा अंत की सूत्रधारिणी आद्या शक्ति साक्षात माया सीता हैं। यही सीता जगत का कारण और चेतना, शक्ति तथा जगत का रूप हैं।'

महाकवि गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामचरितमानस' के 'बालकांड' में श्री सीता नतोऽरं राम वल्लभाम्।।"

भारतीय धर्म की भी दार्शनिक एवं आध्यात्मिक व्याख्या की गई है। 'सीता' शब्द में प्रयुक्त हुए चार वर्णों, अर्थात् 'स्+ई+त्+आ' में भी 'राम' शब्द की ही भाँति दो स्वर तथा दो व्यंजन ध्वनियाँ प्रयुक्त हुई हैं, जिनकी व्याख्या सूत्रकार इस प्रकार करते हैं– "साकारः सत्यममृत प्राप्तिः सोमश्च कथ्यते" अर्थात् 'स' का अर्थ है– 'सत्य एवं अमृत की प्राप्ति तथा 'ई' का अर्थ है 'माया'। "तकारस्तारो लक्ष्म्या वैराजः प्रस्तर स्मृति" अर्थात् 'त्' तथा 'आ' का अर्थ है 'महालक्ष्मी' और विराट पुरुष'। इस प्रकार सीतोपनिषद् के अनुसार, श्रीराम की शक्ति श्री सीता मूलतः चराचर सृष्टि में "सत्यामृत प्राप्त कराने वाली महाशक्ति" ही हैं, जिनके सान्निध्य से श्रीराम का विराटत्व भासित होता है।

निःसंदेह, भारतीय दर्शन एवं अध्यात्म–चेतना के अनुसार मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम 'ब्रह्म' रूप में और उनकी नित्य प्रिया श्री सीता 'आद्या शक्ति' रूप में इस चराचर सृष्टि के कण–कण में व्याप्त हैं। इसी कारण महाकवि तुलसी कहते हैं–

सिया राम मय सब जग जानी।
करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

यही कारण है कि भारतीय अध्यात्म–साधना मंदिर, मस्जिद, चर्च और गुरुद्वारे में कोई अंतर नहीं करती। हमें सोचना होगा कि फिर आदमी और आदमी के बीच घृणा और विद्वेष क्यों और कैसे आ जाता है? आइए, महाकवि जयशंकर प्रसाद के इन शब्दों में आज विश्व–मानव को भारतीय–धर्म एवं अध्यात्म का अमृत संदेश देकर प्रेम की राह दिखाएँ–

मस्जिद, पगोडा, गिरजा, किसको बनाया तूने।
सब भक्त भावना के, छोटे–बड़े नमूने।।
सुंदर वितान कैसा, आकाश भी तना है।
उसका अनंत मंदिर, यह विश्व ही बना है।।

— 74/3, न्यू नेहरू नगर, रुड़की–247667

❑❑❑

राम तत्व की ही प्रधानता : धर्मनगरी अयोध्या

प्रो. पूरन चंद टंडन

अखिल भारतीय ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व के सनातकियों अथवा सनातनधर्मियों के लिए अयोध्या जैसा पावन–पुनीत स्थल इसीलिए धर्म, संस्कृति और दर्शन का संगमस्थल रहा है क्योंकि वह मर्यादा पुरुषोत्तम राजाधिराज भगवान श्रीरामचंद्र जी की जन्मस्थली है, उनकी पुण्य जन्मभूमि है। वह सूर्यवंशी राजाओं की राजधानी रहा है। भारतीय इतिहास इसका साक्षी है कि देश की भक्ति परंपराओं का राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं का, विश्व को राजधर्म और राष्ट्रधर्म की संस्कृति देने का केंद्र एवं अद्भुत शिक्षा–स्थल अयोध्या रहा है। सूर्यवंशी महाराज ‘पृथु’ ने संपूर्ण अयोध्या नगरी के जड़–चेतन में प्रकृति के कण–कण में कृषि–संस्कृति की सशक्त आधारशिला की स्थापना करते हुए कर्म–प्रधान व्यवस्था को उद्घाटित किया। पृथुवंश के कर्णधार सम्राट ‘दिलीप’ ने इस कृषि–प्रधान–संस्कृति में ‘गोपालन’ के माहात्म्य को उजागर एवं लागू करते हुए अयोध्या की रामतात्विक संस्कृति का बीज–वपन किया। अनेक सूर्यवंशी एवं चक्रवर्ती सम्राटों ने अपने शौर्य एवं पराक्रम का परिचय देते हुए सृष्टि के अन्याय एवं अधर्म का विनाश करने वाले मानकों का निर्माण किया और देशवासियों को धर्ममार्ग तथा कर्तव्य निर्वाह के पथ पर अग्रसर होने का आलोक प्रदान किया। इसी उज्ज्वल परंपरा को सम्राट ‘मान्धाता’ ने अपने पराक्रम से तीनों लोकों तक प्रकाशित करते हुए विजयिनी मानवता का ध्वजारोहण किया। रामत्व के बीज–वपन की इस सुदीर्घ सम्राट–परंपरा की सुखद, शीतल, स्वस्थ एवं सुरक्षित छाया में पूरा देश ही नहीं, संपूर्ण विश्व भी जीवन–यापन की आनंदयात्रा का भागी बना। रामराज्य के परिकल्पना– बिंदुओं को भी अयोध्या की पावन पवित्र भूमि में विधिवत रोपित करने का सात्विक इतिहास लिखा जाता रहा। दैत्य एवं दानव वंश के अनाचारी तथा अत्याचारी आचरण को अनुशासित करने तथा पापियों को दंडित कर न्याय की प्रतिष्ठा एवं स्थापना करने में अयोध्या के लोकोद्धारक शासकों की तलवार और उनकी धनुर्विद्या सदा समर्पित तथा तत्पर रही। अरिहंत अयोध्या शासकों ने शत्रुओं को धूल–धूसरित करते हुए उनके रक्त से तिलक किया और अपनी विजय–पताका सदा–सर्वदा सगर्व लहराई। शरणागत रक्षक बनकर अयोध्या नरेश का छत्र निरपराध जनता के लिए निर्भय आश्रय–स्थली बना रहा।

राम राष्ट्रनायक ही नहीं, लोकनायक के रूप में अवतरित हुए। सूर्यवंशी समस्त शासकों में लोकपालक भगवान विष्णु ही प्रतिबिंबित होते रहे। जो सहिष्णुता, प्रभविष्णुता, उदारता, आत्मीयता और लोकहित तथा लोकमंगल की भावना अयोध्या–नरेशों की थाती थी उसी ने विराट–रूप के धनी विश्वपूज्य श्रीराम के उदात्त चरित्र का भी निर्माण किया। देश के अनेक राज्यों के राजाओं और शासकों को विष्णु रूप मानकर उनका आदर–सम्मान करने की पुण्य परंपरा अयोध्या से ही पड़ी। चतुर्वेदी

ऋषियों ने जिस नीति, संविधान और जीवन–शैली के मानक निर्मित किए, अयोध्या के प्रजापालक शासकों ने उसी का अनुसरण एवं अनुपालन करते हुए अपने और प्रजा के पथ को आलोकित किया। रामराज्य में जिन आदर्शों की, कर्तव्य और दायित्वों की, आचरण और व्यवहार की, मूल्य और संस्कृति की स्थापना की गई थीं उनके बीज वैदिक वाङ्मय में विद्यमान थे। देश–विदेश की नीति का संदर्भ हो अथवा राज्यों की आंतरिक शासन–अनुशासन व्यवस्था, प्रजा पालन के प्रतिमान हों तथा जनहित और राष्ट्रहित के नीति निर्धारक तत्व रामराज्य की अवधारणा ने उन सभी को सगर्व स्थापित एवं व्याख्यायित किया।

भारत की संस्कृति राजा को दैवीय अवतार मानती रही है। हमारे पारंपरिक मूल्य नैतिक सिद्धांत राजा को परमात्मा का ही अंश मानते रहे हैं। इसीलिए राजा को तो ‘प्रजापति’ कहा भी गया है।

महर्षि वेदव्यास ने तो राजा का व्युत्पत्तिपरक अर्थ स्पष्ट करते हुए महाभारत के शांतिपर्व में स्पष्ट लिखा है कि– ”रञ्जिताश्च प्रजाः सर्वस्तेन राजेति शब्द्यते”, अर्थात् राजा का प्राथमिक, वरेण्य और प्रधान कार्य प्रजा के रंजन के साथ–साथ उसे सुखी, समृद्ध, स्वस्थ और प्रसन्न रखना भी है। अयोध्या के समस्त सूर्यवंशी राजाओं की तरह भक्तवत्सल एवं प्रजापालक भगवान श्रीराम ने भी इन समस्त गुणों एवं दायित्वों का विधिवत निर्वाह एवं अनुपालन करने में ही अपने जीवन की सार्थकता स्वीकार की थी। भगवान श्रीराम के जीवन, व्यक्तित्व, कर्म, धर्मपालन, त्याग, साधना, भक्ति, निष्ठा, उदारता, संघर्ष, निर्भय–अभय व्यवहार आदि असंख्य गुणों एवं विशेषताओं के कारण ही संपूर्ण अयोध्यानगरी आज भी श्रीराम तत्वमयी दिखाई देती है। आज अयोध्यानगरी के इसी माहात्म्य के कारण संपूर्ण भारत और विश्व के अनेक देश राममय दिखाई देते हैं।

राम तत्व वस्तुतः राम के उन समस्त कार्यों का उनकी जीवनशैली का, उनके आचरण–व्यवहार का, उनके दर्शन और संस्कृति का प्रतिबिंबन ही है जिसे हम श्रीअयोध्या जी के कण–कण में, वहाँ की माटी की गंध में, वहाँ की जलधारा में, वहाँ के वट–वृक्षों और लताओं में वहाँ के आराधना स्थलों में सहज ही अनुभव कर पाते हैं। ”रामकाजु कीन्हें बिनु, मोहि कहाँ बिश्राम” की भावना से पूरी अयोध्यानगरी, पूरा भारत और संपूर्ण विश्व आज आप्लावित प्रतीत होता है। लगभग संपूर्ण विश्व अब यह मानता है कि भारत भूमि, भारतवासी राममयी संस्कृति को आत्मसात् किए हैं, उसी संस्कृति को जीते, बिछाते और ओढ़ते भी हैं। राममयी शाश्वत आस्था और राष्ट्रीय भावना का मूल मंत्र भारतवासियों को राम तत्व के संकल्प से ही प्राप्त है। यही राम तत्व है जिसकी धुरी भले ही अयोध्या में स्थापित हो किंतु उनकी असंख्य सूर्य किरणें पूरे विश्व में निरंतर विकीर्ण हो रही हैं।

श्रीराम को पूरे विश्व में सूर्य–सम तेजस्वी, पृथ्वी के समान आभाशील, गुरुदेव वृहस्पतिदेव की तरह बुद्धिमान और देवराज इंद्र की तरह यशस्वी तथा कीर्तिपुरुष माना जाता है। वे सत्य की प्रतिमूर्ति बनकर प्रकाशस्तंभ की तरह मार्ग प्रशस्त करने वाले विलक्षण एवं अनुकरणीय अलौकिक पुरुष की तरह सृष्टि में विद्यमान रहते हैं। सामाजिक समरसता का संचार तथा ज्ञान, प्रेम, वात्सल्य, सहयोग विश्वास का सेतु बनकर प्रभु श्रीराम भक्तों के हृदय में युगों–युगों के विराजमान रहते हैं। ‘राम तत्व’ भारतवासियों का आदर्श बनकर, देशवासियों की आस्था बनकर, निर्गुण–सगुण का आग्रह बनकर, भक्तों–कवियों और साधु–संतों का भजन बनकर तथा समाजसेवियों का सत्याग्रह बनकर यत्र– तत्र–सर्वत्र विद्यमान रहता है। इसी ‘राम तत्व’ ने संपूर्ण भारत की समेकित संस्कृति को भी जोड़ कर रखा हुआ है। इसे हम तमिल की ‘कम्बरामायण’ में भी देखते हैं तो तेलुगु के ‘रघुनाथ’ और ‘रंगनाथरामायण’ में भी देखते हैं। ओड़िया में उपलब्ध ‘रूइपादकातेड़पदी रामायण’ में भी अनुभव करते हैं। इसी प्रकार कश्मीर में ‘रामावतारचरित’ में, मलयालम में ‘रामचरितम्’ के रूप में, बांग्ला के ‘कृतिवास रामायण’ के रूप में तो सिक्खों के दशम् गुरु गुरुगोविंद सिंह कृत ‘गोविंद रामायण’ भी उसी ‘राम तत्व’ का आनंद ले पाते हैं। यही राम

तत्व की सर्वव्याप्ति, लोकस्वीकृति तथा सर्वग्राह्यता का भी प्रमाण दिखाई देता है। राम तत्व एक ही है तो इन सब में, ऐसे ही अनेक काव्य और गद्य ग्रंथों में वह विद्यमान है।

इसी राम तत्व के कारण हम अनुभव करते हैं कि राम में ही संपूर्ण सृष्टि विद्यमान है और सब के हृदय में, मन मस्तिष्क में राम विद्यमान हैं। अभिवादन के राम, भक्तों के चित्त में 'राम–राम' या 'जयश्रीराम' बनकर विद्यमान हैं तो संसार से पलायन करते हुए वही राम 'राम नाम सत्य है' के रूप में उपस्थित होते दिखाई देते हैं। वेदना में, दुख दर्द में, संवेदनाधिक्य में, हानि–लाभ में पूजा–पाठ में बिछोह–मिलन में अलग–अलग तरह के 'राम तत्व' हमारी जीवन–शैली का अंग बना दिखाई देता है।

भारत देश ही नहीं, विश्व के अनेक देश ऐसे हैं जहाँ श्रीराम और श्रीराम तत्व अपनी सात्विकता के साथ श्रद्धा–भक्ति के साथ, आस्था–विश्वास के साथ विद्यमान हैं। 'रामायण', रामचरितमानस, साकेत आदि ग्रंथों की तरह 'राम की शक्तिपूजा' जैसी लंबी कविताओं की तरह, अनेक उपन्यास, कहानियों, नाटकों और एकांकियों की तरह देश–विदेश में हजारों–लाखों रचनाएँ हैं जो राम तत्व को विस्तार दे रही हैं। रामलीलाओं में, गीतों में, धारावाहिकों में, अभिनय तथा संगीत आदि में भी राम तत्व की परिव्याप्ति सहज ही देखी जा सकती है। विश्वभर में हजारों–लाखों राममंदिर विद्यमान हैं, श्रीअयोध्या जी में भी अब पुनः एक विराट–विशाल भव्य राममंदिर का पुनर्निर्माण इसी राम तत्व की स्वीकृति का ही द्योतक है।

इंडोनेशिया में 'ककविन रामायण', 'स्वर्णदीप रामायण', तथा 'योगेश्वर रामायण' जैसी अद्भुत राम स्तुति एवं कथापरक अनेक रचनाएँ इसी राम और रामत्व के प्रचार–प्रसार की परिचायक हैं। कंबोडिया में रामकेर्ति रामायण, श्रीलंका में 'जानकीहरण' थाइलैंड में 'रामकियेन' और इसी तरह चाइना तथा ईरान आदि देशों में श्रीराम तथा रामचरित का गुणगान सहज ही देखा जा सकता है। मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद, श्रीलंका, मलेशिया, बाली, आदि अनेक देशों में रामलीलाओं द्वारा राम तत्व की उपस्थिति का बोध होता है। अनेक देशों की शैक्षिक संस्थाओं में रामचरित आधारित गद्य–पद्य रचनाओं पर शोधकार्य चल रहे हैं, प्रबंधन में, नीति–निर्धारण में उनके आचरण की सार्थकता का शिक्षण पाठ्यक्रमों से भी किया जा रहा है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि 'सबके राम, सबमें राम' का भाव पूर्णत सत्य स्थापित होता है।

वास्तव में अयोध्यानगरी तो भगवान राम की अपनी नगरी ही है। स्वतः राम ही कहते हैं– 'जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि' अर्थात् 'मेरी जन्मभूमि अयोध्या अलौकिक शोभा की नगरी है।' वास्तव में राम का चरित्र जिन सिद्धांतों की स्थापना करता है उन्ही में– 'नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना' अर्थात् 'पृथ्वी पर न तो कोई दरिद्र हो और न ही कोई दुःखी हो' भी उल्लेखनीय है। हमारे शास्त्रों ने तो सगर्व कहा भी है कि पूरी पृथ्वी पर श्रीराम जैसा नीतिवान शासक न कभी हुआ है और संभवतः न होगा–'न राम सदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत्।' सभी नर–नारी, जीव–जंतु, पशु–पक्षी समान रूप से सुखी रहें, निर्भय रहें और आनंदपूर्वक जीवन यापन करें, यही राम का और राम राज्य का मूलभूत संदेश है। राम कहते भी हैं कि यदि कोई शरण में आया है तो उसकी रक्षा करना हमारा धर्म है–

जौ सभीत आवा सिरुनाई। रखिहँउ ताहि प्रान की नाई।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी– इन्हीं समस्त गुणों, विशेषताओं तथा राम तत्व की सार्थकता को ध्यान में रखते हुए पुनः स्वतंत्र भारत में रामराज्य का स्वप्न देखा भी था। वास्तव में 'राम' सृजनात्मक परिवर्तन के पक्षधर बनकर, समय की गति को समझकर विकास और उन्नयन के प्रवर्तक बनकर, कर्तव्यपालन, विरोधों का सामना करते हुए उनके समाधानी–संकल्प के पक्षधर बनकर, गति और प्रगति की राह पर अग्रसर होते हुए बोध और शोध का मार्ग प्रशस्त करने वाले प्रणेता बनकर हमारे मध्य उपस्थित होते हैं।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि ईशा पूर्व 12617 में अयोध्या के आदि संस्थापक नरेश महाराज वैवस्वत मनु से लेकर, सम्राट इक्ष्वाकु, सम्राट निकुंभ, सम्राट मांधाता, सम्राट रोहिताश्व, सम्राट सगर, महाराज दिलीप, सम्राट भगीरथ, सम्राट दशरथ आदि अनेक राजाओं–महाराजाओं से होती हुई यह राज परंपरा भगवान श्रीराम के जन्म ईसापूर्व 11 फरवरी, 4433 तक पहुँचती है। भगवान श्रीराम के ब्रहमलोक प्रस्थान और उनके पश्चात् भी रामराज्य के प्रतिमानों का अनुपालन करते हुए अनेक शासकों का शासन इस परंपरा में गतिमान रहा। सभी में राम तत्व और 'सियाराम मैं सब जग जानि' वाली भावना समृद्ध विद्यमान रही है।

– हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

रीतिकाल के रामपरक प्रबंध काव्य

प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल

मैंने अपनी पुस्तक 'अवधी साहित्य की भूमिका' में लिखा था– "रीतिकाल अवधी साहित्य की दृष्टि से भाग्यहीन रहा है। फिर भी संभव है कि गहन शोध करने पर कुछ रचनाएँ मिल जाएँ, जिसकी संभावना अधिक है। यह अपने आप में स्वतंत्र रूप से शोध का विषय है। यह विषय अनुसंधित्सुओं की बाट जोह रहा है। (पृ. 49, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, सन् 2003 ई.)"

मैं तब से लगा रहा अब जाकर मुझे कुछ महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकी है। इसे यहाँ 'रीतिकाल के रामपरक प्रबंध–काव्य' शीर्षक से दिया जा रहा है। मेरा अपना मत है कि इससे बहुत बड़ी कमी की पूर्ति हुई है। यहीं मैं यह भी कहना चाहूँगा कि हमें आगे और भी अधिक सामग्री मिलने की संभावना बनी हुई है।

'रीतियुग और प्रबंध काव्य' ये शब्द साहित्य के विद्यार्थियों को प्रायः विस्मय विमुग्ध करते रहे हैं। इसका दायित्व सं. 1700 से 1900 वि. में रचे जाने वाले साहित्य को 'रीतियुग' की सीमा में आबद्ध कर देने वाले इतिहासकारों पर है। यद्यपि इधर इस काल को श्रृंगारकाल, कलाकाल आदि अभिधाएँ मिली हैं। यदि विषय–वस्तु का पाधान्य का थोड़ा भी ध्यान न दिया जाकर विभाजन समग्र की सीमा निर्धारित करने के हेतु किया जाता और इसका नाम 'उत्तर मध्यकाल' ही रहता तब प्रबंध काव्यों का नाम सुनकर लोग न बिदकते, न चकित और स्तंभित होते।

हिंदी के तथाकथित रीतियुग ने दो विदेशी शासन देखे। मुगल तथा अंगरेजों की सभ्यता, संस्कृति से वह प्रभावित हुआ। राजनीतिक उथल–पुथल, सामाजिक दुरवस्था, तथा धार्मिक बवंडरों के कारण भक्ति–युगीन स्वस्थ धारा तो अवरुद्ध हो गई थी परंतु इस समय की कतिपय प्रतिभाओं और उनके वर्चस्व की अवहेलना करना अन्याय होगा। "रामचरितमानस के स्थान पर अब व्रजविलास की ही रचना हो सकती थी।"[1] इस पर आँख मूँद कर किया हुआ विश्वास 'मूढ़ः पर प्रत्ययनेषु बुद्धिः' का परिचायक होगा। गुमान मिश्र की कृष्ण चंद्रिका बड़ी सुंदर रचना है। यहाँ सचमुच विस्तार–भय से (पलायन का ब्याज नहीं है यह) मैं कुछ उत्कृष्ट प्रबंध काव्यों का परिचय दे रहा हूँ और ये प्रबंध न वीरगाथात्मक हैं, न प्रेमाख्यान, न कृष्ण जीवन से संबद्ध अपितु राम कथा परक हैं।

अवध विलास

इस ग्रंथ के रचयिता श्री लालदास गुप्त हैं। हिंदी के अधिकांश कवियों की भाँति इनका जीवनवृत्त अप्राप्य है। इस रचना के प्रारंभ तथा समाप्त करने की तिथियों पर दृष्टि निक्षेप करने से प्रकट होता है कि कवि ने इस विशाल ग्रंथ को केवल 9 मास और 21 दिन में लिख दिया जिससे यह निष्कर्ष निकल सकता है कि कवि भावुक भक्त था। लालदास ने वैशाखी पूर्णिमा सं. 1700 को अवध–विलास लिखना प्रारंभ कर उसी वर्ष के फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी को ग्रंथ

समाप्त कर अवध से प्रयाण भी कर दिया। स्पष्ट है कि कवि का अभिजन अन्यत्र रहा होगा।

यह ग्रंथ अभी अप्रकाशित है। इसका विशद परिचय डॉ. बाबूराम सक्सेना ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अवधी का विकास' में दिया है। 18 विश्रामों में समाप्त होने वाली इस रचना में 602 पृष्ठ हैं तथा प्रत्येक पृष्ठ में प्रायः 22 या 23 पंक्तियाँ हैं। इस ग्रंथ में राम के जन्म से वन–गमन तक की कथा अवधी भाषा और दोहा चौपाई शैली में कही गई है। महाकाव्य के विस्तार के विचार से सर्गो का विभाजन महत्वपूर्ण है। कवि ने रघु का दान, दशरथ का प्रयाग गमन तथा लोमपाद से उनकी भेंट, रामजन्म और उनके बचपन का आनंदोल्लास का वर्णन सविस्तार किया है। राम की तीर्थ–यात्रा और दार्शनिक विषयों पर विवाद की चर्चा भी की गई। अंतिम सर्ग में दशरथ अपनी पुत्र–वधुओं सहित सानंद रहते हुए दिखाए गए हैं। कैकेयी के वरदानों की याचना के अनुसार राम वन चले जाते हैं और कवि पुस्तक समाप्ति पर अयोध्या से बाहर चला जाता है।

कवि ने ग्रंथ के प्राकपृष्ठों में अपनी रचना के विषय में कहा है कि अनेक ग्रंथों के पढ़ने की आवश्यकता ही नहीं। सर्वगुण संपन्न एक 'अवध विलास' ही पठनीय है–

काह को बहुतै चहै, पोथी भार अनंत,
पढ़िहै जो सो होइहै, कहत लाल गुनवंत।

अवधकुमार राम की कथा अवधी में कही जाए (पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र ने ब्रजलाल की कथा अवधी में कही है।) ऐसा संकेत भी है। 'देसिल बयना सब जन मिट्ठा' को आदर्श बनाकर, संस्कृत के कूपजल को दुष्प्राप्य समझ कर कवि ने भाषा में कविता की हैं। उसने लिखा–

सुधा प्रगट लौकिक वचन, सुनि समुझइ सब कोइ,
कठिन शब्द है संस्कृत, भाषा कहिए सोइ।

गोविंद रामायण

भारती और भावनी के वरद पुत्र गोविंद सिंह (गुरु) गणेश और कार्तिकेय के मिश्रित व्यक्तित्व की छाप है। फलतः वह वीर वरेण्य भी हैं और सुकवि भी। 'चंडी चरित्र' में वीर रस की अजस्र आपगा प्रवाहित हुई है। इस प्रबंध के अतिरिक्त अपनी नव नवोन्मेषशालिनों प्रतिभा के बल पर कवि ने गोविंद रामायण में अपने ढंग से राम कथा कही है। उसकी दृष्टि में–

राम कथा जुग–जुग अटल, सब कोइ भाखत नेत।

अनेक प्रकारों में से गोविंद रामायण भी रामकथा कहने का एक प्रकार है।

यद्यपि रामावतार से लेकर राम के स्वर्गारोहण तक की राम कथा कवि ने कही है फिर भी पुस्तक 240 पृष्ठों में ही समाप्त हुई जिसमें कथा के मूल भाग को 125 पृष्ठों का ही समझना संगत होगा। कारण कि 240 पृष्ठ सामान्य अर्थ सहित हैं।[2] पुस्तक में कांड, विश्राम नामक सर्ग न होकर, मसनवी ढंग से 22 शीर्षक हैं। श्रवण कथा, सीता–त्याग, रामाश्वमेध, लवणासुर–वध आदि प्रसंग अन्य रामायणों से कुछ अधिक हैं। अहिल्या उद्धार, शबरी–सम्मिलन अनसूया सत्संग और सुरसा–प्रसंग अस्पष्ट हैं। भरत का मातुलालय काश्मोर,[3] कौशल्या की जन्मभूमि कुड़हाम है।[4] एक गंधविणी मंथरा द्वारा कैकेयी में कुबुद्धि उत्पन्न की गई है। अपत्यहीन होने के कारण दशरथ कैकेयी से विवाह करते हैं और उसी समय दो वरदान देते हैं। परशुराम और राम से सीधे–सीधे बातचीत हुई है लक्ष्मण यहाँ बिल्कुल मौन हैं। भरत से राम के मिलने की वेला में भी लक्ष्मण का कोपाविष्ट रूप नहीं दिखाया गया है। शक्ति लगने पर राम–विलाप तथा संजीवनी–आनयन प्रसंग नहीं है। हाँ युद्धों के सूक्ष्म से सूक्ष्म वर्णन कवि न किए हैं। यहाँ तक कि विराध (राक्षस) वध के लिए राम को संहत–संग्राम करना पड़ा है। और आगे चलकर प्रहस्त त्रिमुंड, महोदर, इंद्रजीत, अतिकाय, मकराक्ष आदि से होने वाले युद्ध का महत्व पुस्तक के 'अतिकाय दैत्य युद्ध कथनम्' जैसे शीर्षकों से स्पष्ट है। सारांश यह कि कवि की वृत्ति वीर रस के निरूपण में निर्बंध मुक्त गति से रमी है। अन्य स्थलों में कवित्व का प्रदीप समास शैली के आँचल में छिपकर ही प्रकाश बिखेरता है।

पुस्तक में दोहा, चौपाई कवित्त आदि के अतिरिक्त प्रायः तीस प्रकार के अन्य छंद भी प्रयुक्त हैं जिनमें बहुत से छंद वीर रस के अनुकूल ध्वनि–व्यंजक हैं। एक मौलिक उद्भावना द्रष्टव्य है। शूर्पणखा को पत्नी रूप में न ग्रहण कर लक्ष्मण ने रूप का अपमान किया मानो शूर्पणखा की नाक ही काट ली। 'नाक काटना' मुहावरे द्वारा लक्ष्मण के साधु–चरित्र का विशदीकरण किया गया है। स्त्री पर हाथ चलाकर वीरों की कक्षा में प्रवेश पाना कठिन ही होता है। फिर मर्यादापुरुषोत्तम राम लक्ष्मण को नासाकर्ण होन कर देने की आज्ञा क्यों देते। गुरु गोविंदसिंह ने लिखा है–

जात भई सुनि बैन त्रिया तहँ।
बैठ हुते रणधीर जती जहँ।।
सो न बरै अति रोष भरी तब।
नाक कटाय गई गृह को सब।।

वाल्मीकि और तुलसी की पुरानी लीक छोड़ने वाले कवि का ऐसा प्रयास प्रशस्य है।

वीर–रस के प्रयोग में कवि की वृत्ति अधिक रमी है, ऐसा ऊपर कहा जा चुका है। युद्ध का वर्णन करते समय वीर–भाव व्यंजक 'सागड़दी, झागड़दी, कागड़दी, आगड़दी शब्दों का प्रयोग कवि ने किया है। यद्यपि अर्थ इनके कुछ नहीं हैं।

भरत के (लव, कुश से संग्राम करते समय) गिर जाने पर राम युद्ध के हेतु चले उस समय का सामरिक वातावरण क्या था–

चचक्क चाँवड़ी नभ फिरंत फिकरी घरं।
भखंत मास हारनं वमंत ज्वाल दुर्गयं।
पुअंत पावती सिरं वचंत ईसनो रणं।
भकंत भूत प्रेतनो बकंत वीर बैतलं।।

इस ग्रंथ के विविध छंद, इसकी उपमाएँ, उत्प्रेक्षाएँ नवीन उद्भावनाएँ सभी मनोहारिणी हैं। निबंध के छाटे से चौखटे में उसकी सुंदर तस्वीर अट नहीं सकती।

रघुवंशदीपक

इस महाकाव्य के प्रणेता सहजराम हैं। कविवर सहजराम को लाला भगवानदीन तथा मिश्रबंधुओं ने बँधुवा ग्राम जिला सुलतानपुर निवासी सनाढ्य ब्राह्मण बताया है। परंतु इतिहासकार की एक भूल के कारण बड़ी भ्रांतियाँ फैल जाती हैं। वस्तुतः सहजराम जाति के हरिद्वारी वैश्य थे और हरदोई जिले से उनका गहरा संबंध था। उनके ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियाँ हरदोई जिले के विभिन्न स्थानों के वैश्य घरों से प्राप्त हुई हैं। पुस्तक के प्रकाशक (संपादक भी) रामभरोसेलाल को यह ग्रंथ उनके मामा के घर हरदोई जिले में मिला था और उन्होंने लिखा है 'सहजराम' का आना–जाना विशेष करके संग्रहकर्ता के नाना के पिताजी के यहाँ हुआ करता था। रघुवंशदीपक की भाषा अवधी है। रघुवंशदीपक में प्रयुक्त शब्द हरदोई तथा उसके प्रतिवेशी जिलों में बोले जाते हैं। जैसे भुल–भुल (ग्रीष्म में जलती हुई धूल) सुतन (सुताओं ने) अगोटी, गपचि, पिहान आदि।

इन्होंने अयोध्या में आटे–दाल की दूकान खोल ली थी। ऋणाक्रांत महात्मा रामप्रसाद की कृपा से इन्हें भगवान राम के दर्शन हुए थे।[2] इनकी बही पलटूसाहब के अखाड़े रामकोट में है।

रघुवंशदीपक मुद्रित होकर भी सर्वथा नवीन ग्रंथ है। गीता–प्रेस से प्रकाशित मझली साइज की मानस में 607 पृष्ठ हैं और ठीक उसी साइज में सघन छपाई में मुद्रित रधुवंशदीपक में भी 706 पृष्ठ हैं। श्लोकों का प्रयोग रघवंशदीपक में एक ही कांड में है। दोहा, चौपाई, हरिगीतिका, भुजंग–प्रयात आदि छंदों का प्रयोग इसमें है। मूल शैली मानस की ही है। इसकी भाषा और रचना पर मुग्ध मिश्रबंधुओं का यह कथन महत्वपूर्ण है–

"इस सत्कवि ने अपनी कविता बिल्कुल गोस्वामी जी में (कविता में) मिला दी है। ऐसी उत्तम कविता दोहा–चौपाइयों में गोस्वामी जी और लाल के अतिरिक्त शायद कोई भी कवि नहीं कर सका है। इसके भक्ति–ज्ञान आदि के विचार सब गोस्वामी जी से मिलते हैं"। प्रह्लाद–चरित्र की जितनी प्रशंसा की जाए थोड़ी है।[3]

रघुवंशदीपक की सर्जना रीतियुग की महत्वपूर्ण घटना है। इस युग में 'उक्ति, जुक्ति सब सूरइ केरी' वाला ब्रजविलास भी लिखा गया और रघुवंशदीपक भी, जिसमें स्नेह है, आलोक विकीर्ण

करने की पर्याप्त क्षमता है। आवश्यकता है किसी मँजे हाथों की सधी शलाका की जो इसकी वर्तिका को बाहर निकाल सके जिससे परंपरागत भ्रांति और मोह दूर हो जाए।

कवि ने प्रारंभ में रघुनाथ कथा को विबधनदी बताते हुए वाल्मीकि ब्रह्मा के आदि काव्य कमंडल से निःसृत कहा है।[4] तुलसी के प्रति उसकी प्रणति देखिए–

वंदों तुलसीदास पद पंकज, कीन्ह सुलभ हरि सुयश भयंकर।
भणिति तुम्हारि आदि पटरानी, चेरी चारु चतुर मम वानी।।
तुलसिदास कीन्हों प्रथम कवित्त वज्र मणि देह।
पहिराए मैं सूत, मति बिनु श्रम सहित सनेह।।

'मन्दः कवि यशः प्रार्थी' जैसी शालीनता में भी कवि ने अपनी बानी को चतुरचेरी कहा है। महाकाव्यकार के कर्तव्य का पालन करते हुए सहजराम ने राम कथा अपने ढंग से कही। गोस्वामी जी ने बहुत–सी कथाओं को संक्षिप्त कर दिया है किंतु सहजराम–समास–व्यास के मध्य का मार्ग ग्रहण कर सफल हुए हैं।

रामप्रताप

चंद और जल्हन की भाँति गोपाल तथा माखन (पिता–पुत्र) ने रामप्रताप की रचना की थी। ये छत्तीसगढ़ के रतनपुर ग्राम के निवासी थे। गोपाल ने लिखा है–

यहि विधि कवि गोपाल ग्रंथ आरंभहि कीन्हैं,
तिन सुत माखन नाम तिनहिं पुनि सासन दीन्हें।
अधक बरनौ आप अध कहु तुमहि बनावहु,
जिहि विधि कथा रसाल बरन सज्जन मन भावहु।।

इस ग्रंथ का प्रथम बार मुद्रण पं. जैलाल ने चंद्रप्रभा यंत्रालय में 1886 वि. में कराया। इसमें बड़े आकार के 376 पृष्ठ हैं। कथा–प्रसंगों में मानस से भिन्नता है। परशुराम की राम से भेंट मिथिला से लौटते समय हुई है। उत्तरकांड में रामाश्वमेध–प्रसंग है। राम के विवाह के उपरांत पृथक अध्याय में षट्ऋतु बिहार वर्णन है, जो रीतियुगीन काव्य की विशेषता है। गीतों का भी यत्र–तत्र प्रयोग है। वर्णन वैविध्य के कारण कवि व्यापक ज्ञान तथा बहुश्रुत तो प्रतीत होते है, किंतु महाकाव्य के अनुरूप चरित्र–चित्रण इसमें नहीं है।

रामचरित्र

प्रसिद्ध ग्रंथ 'जंगनामा' के कर्ता 'श्रीधर उर्फ मुरलीधर' से नितांत अलग मुरलीधर मिश्र के दो सुंदर प्रबंधकाव्य लेखक ने पढ़े हैं। दोनों अभी अप्रकाशित ही नहीं वरन् एक सामान्य पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। नल चरित्र, रामचरित्र के कर्ता ने रामचरित्र में अपना विशद परिचय दिया है। वे अर्गलपुर (स्यात् आगरा) के मधुरिया टोले में रहते थे। इनके पूर्वजों की परंपरा में परमानंद कपूरचंद, पुरुषोत्तम, प्रेमराज, पृथ्वीराज, दिनमणि हुए हैं। दिनमणि अच्छे ज्योतिषी थे। पिता–पुत्र का परिचय इस प्रकार मिलता है।

जासों कही जो बात तासां मिलहि तरतहि आय कै,
जिनकी बड़ाई प्रश्न की अब लगि रही है छाय कै।
तिनके सुतन में भयौ मुरलीधर कछ् गुनवान हैं,
कवि कोविद ने कृपा करिकै लई कविता मानि है।।
दिल्लीस मुहम्मदशाह सौं मिलि चाकरी हू करि लई।

रामचरित्र का कथानक वाल्मीकि तथा जैमिनि के अनुसार है। अध्यात्म रामायण के तीन करुण प्रसंग कवि ने छोड़ दिए है। इस संबंध में उसका वक्तव्य और सफाई पठनीय है–

रामायण अध्यात्म में लखि के तीन प्रसंग,
मैंने ह्यां बरने नहीं, केवल दुख कौ अंग।
अश्वमेध ही के समय सिय को भूमि प्रवेश,
रघुवर अपने अछत ही दीने पुत्रन देस।
चढ़ि विमान स्वर्गहि गए अवधपुरी लै संग,
ये समये मैं कहे नहिं केवल दुख प्रसंग।

यदि प्रश्न उठे सीताहरण पर राम–वियोग दुख वर्णन क्यों किया तो कवि समाधान करता है–

जहाँ आस है मिलन की, तहँ वियोग सिंगार,
जहूँ निरास ह्नँ जाय तहँ, करुनारस निरधार।

रस सिंगार में सुख महा, करुना रस दुख मूल,

इस ग्रंथ में सहजराम जैसी सर्वांगीण विशेषताएँ तो नहीं हैं परंतु यत्र–तत्र सुव्यवस्था है। वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा का पालन यहाँ देखिए–

क्षत्रिन के आग आप परसत पाक सब
न्यारे न्यारे व्यंजन ते आनि के धरत है।
वैसन की पाँत में परोसत फिरत विप्र,
मनो हार (?) काजें आपु आइके भरत हैं।
सूद्रन समीप सब सेवक परोसत हैं,
तौ हू आप आय नहिं काज बिसरत हैं,
देखौ दसरथ की बड़ाई ठकुराई पाइ,
सवक लों ठाड़े सेवा सबकी करत है।

सदय– परिणीता पुत्री के पिता का हृदय– पुस्तक के ये भाव पठनीय हैं–

भया कुसध्वज दास तिहारौ है,
कन्या दई इन सेवा के काजें।
काज करगी सबै घर कौ,
बनि आई कछू नहिं बातन लाजैं।।

मिथिला में स्त्रियों ने केशवदास की रामचंद्रिका की ही भाँति बड़ी चटकोली गाली गाई है। सीता जी विलाप करती हुई रावण को दुष्ट बताती हैं, 'लंकाधिनाथ' नहीं। मुरलीधर को रूपक बहुत प्रिय है। सीता के वियोग में रघुनाथ के नेत्रों ने जोग का नेम ले लिया है–

साधि मढ़ी–पलकै वरुनी–वन,
तीरथ आँसू अन्हान कियौ है।
ताप तपे विरहानल के,
जग हेरन भोजन छाँड़ि दियौ है।।
औधि मिलाप की माला गहै,
मरलीधर ध्यान ही जात जियौ है।
सीता वियोग भरे रघुनाथ के,
नैनन जोग कौ नेम लियौ है।

रीतियुग का कलाकार सीता और राम के शयन–कक्ष में प्रवेश कर वहाँ के चित्र चित्रित करता है। ये दृश्य वन से प्रत्यावर्तित होने के बाद के हैं। यह प्रबंधकाव्य महाकाव्य भले ही न हो परंतु काव्य के अनेक गुणों के कारण महान काव्य अवश्य है।

रामाश्वमेध

मधुसूदन कृत रामाश्वमेध बड़ी ही प्रशस्त रचना है। यह उत्कृष्ट कोटि का महाप्रबंध है, जो पदमपुराण पर आधारित है। दोहा चौपाई में मधु–सूदन ने लवकुश जैसे वरेण्य वीरों का यशगान करते हुए सीता और राम के पूर्व जन्म का वृत्तांत भी विस्तार पूर्वक किया है। सूरतसिंह[8] तथा हरसहायगिरि के रामाश्वमेध भी बड़े सुंदर बन पड़े हैं। हर–सहायगिरि मिर्जापुर जिले के मिरिजापुर ग्राम के निवासी संस्कृतज्ञ थे।

रामचंद्र विलास

रामचरितमानस से यह ग्रंथ आकार में बड़ा है। इस ग्रंथ के 33 खंडों में से कुछ मुझे श्री सवाई महेंद्र पुस्तकालय छतरपुर में देखने को मिले थे तथा कुछ हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में। प्रत्येक खंड में अनेक अध्याय हैं। इसके रचयिता श्री नवल सिंह प्रधान उपनाम रामानुजदासशरण झाँसी के निवासी थे। कवि स्वयं रामानुज संप्रदाय का अनुयायी होते हुए भी अपनी रचना में महती संप्रदाय की छाप छोड़ता है। यह ग्रंथ पुराण कोटि में आता है।

राम–वनवास के मूल में इंद्र का प्रकोप है। एक बार दशरथ की राज–सभा में विश्वावसु गंधर्व ने आकर अपने गान से सबको मुग्ध कर दिया–

मोही सभा सब भये तन्मय विश्ववसु के गान में।
पतिनीति जुत, अवधेस सिय रामादि सुत लव तान में।।

फलतः अयोध्या में गंधर्व को मनोरंजनार्थ रहने की आज्ञा मिली। विवशता प्रकट करने पर गंधर्व स्वामी इंद्र को कैकेयी ने दशरथ से बाण द्वारा पत्र भेजने को कहा। वशिष्ठ के मंत्र बल से बाण स्वयं पहुँच गया। इंद्र ने सोचा कि दशरथ के तेज बल से ही मैं निर्भीक शासन कर रहा हूँ। परंतु रानी मेरी और दशरथ की मैत्री से अपरिचित है अतः–

पुरुष वचन परिषद महँ भाषा।
रंचक मम गौरव नहिं राखा।।
राम राज के समय सुलेपा।
तिहि को फल में देहुँ विसेषा।।

राम को कृष्ण की भाँति रसिक दिखाना तो दूर रहा वे शठ नायक के रूप में कौशल खंड के पृष्ठ 82 पर चित्रित हैं। पढ़िए–

काम विवस हनँ राम, दसे अधर वर विंबवत।
दाड़िम दतिनि भाम, हँसी अपर तब अग तें।।

राम की इन शरारतों की शिकायत एक स्त्री सीता से इस प्रकार करती है–

ते सबके प्रिय इन बुधि हेटिनि।
जीति लए तुमरी लघु चेटिनि।।

यह ग्रंथ व स्तुवर्णना, रस नियोजना, अभिनव कल्पना आदि की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है।

राम रस–रत्नाकर

प्रसिद्ध सरदार कवि की उत्कृष्ट रचना है। यह ग्रंथ रामनगर पुस्तकालय में लेखक को मिला था। इस ग्रंथ पर आधुनिक युग की भी छाप है। सरदार दरबारी कवि थे, अतः हाजिर जवाबी के बड़े सुंदर चित्र पुस्तक में मिलते है। मिथिला में राम से जो मजाक हुआ है वह सीमा का अतिक्रमण भी कर गया है–

सखी

रघुवंसी सब मातवर रहे चहे सुषधाम।
तुम कत होत विभातवर ललनागन में राम?
भोजन में सुनियत सुधर, कौसल्या की रीत।
हर वर वेर न देखे परवर पर अति प्रीत।।

राम

परवर याही देस में घर–घर लखे षसाल।
सदा हमारे देस में, परी बरी की चाल।।

सखी

अवध निकट सरज् सरित बाढ़त वार बहार।
तरुनी बहिनी पर चढ़े, होत कौन विधि पार?

राम

तरुनी वहिनी पर चढ़त, निमिकुल जोग विचार।
रघुवंसी भुजबल करत, बुरी सरित सम पार।।

मंथरा की मंत्रणा पर कैकेयी की स्थिति का यह चित्र मेरी स्मृति–पटी से कलम की नोंक पर आ रहा है–

षाई हट क्यारी कपट, मान कूप जल–रोष।
पूरब सुचि भाजन वृषभ बड़ विस्वास सुघोष।।
बड़ विस्वासु सुघोष, मही बुधिरानि विचारी।
मालिन आप अनर्थ जान हल जोतनहारी।।
वर दोउ वृक्ष विचित्र लाइ रुचि सहित सिंचाई।
महा विपति वाटिका नास लग राच रचाई।।

इस रत्नाकर में भावों के अनेक रत्न भरे पड़े हैं। ध्वनि के मीन कभी ऊपर तैरते हैं तो कभी जल के तल में छिप जाते हैं यथास्थान ओज प्रसाद और माधुर्य गुण बराबर पाया जाता है। रत्नाकर के लुनाईपूर्ण माधुर्य का आस्वाद हिंदी जगत में अभी कम है।

मान कवि का 'लक्ष्मण शतक' प्राणनाथ का 'अंगदवादि' आदि राम–संबंधी खंड प्रबंध है। यों नाथूराम चतुर्वेदी व्रज ने सं. 1910 वि. में 'समर सागर' की रचना की थी। यदि रीतियुग को 1900 वि. तक ही मानने का दुराग्रह न किया जाए तो इस रचना को इस युग की सुंदर रचना मानना पड़ेगा। कविवर 'व्रज' जयसिंह नगर (सागर) में उत्पन्न हुए थे तथा 'ढुंढि–राज' के शिष्य थे। रावराजा अनंतराव के यहाँ इनका बड़ा मान था। पं. लोकनाथ द्विवेदी सिलाकरी ने इस ग्रंथ की प्रशस्ति में अपनी 'मध्य प्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास' की पांडुलिपि में यहाँ तक लिखा है–

हिंदी में तुलसी और केशव को छोड़ कर अन्य कवि रामचरित्र वर्णन में इस महाकवि से अच्छा नहीं।

निःसंदेह वीररस प्रधान यह महाकाव्य बड़ा सुंदर है किंतु ऊपर रामपरक अन्य काव्यों की चर्चा की गई है जो इससे उत्कृष्ट ठहरते हैं राम–रावण युद्ध की आधिकारिक कथा में अनुषंगतः अन्य प्रसंग जोड़े गए हैं। बुंदेलखंड़ी ब्रज और प्राकृत भाषा की छहरती छटा के बीच वीर रस की धारा अबाध गति से बही है। वीर रस और रौद्र रसों का परिपाक भी अच्छा है।

'उर्मिला' की उपेक्षा करने पर रवींद्र और महावीर प्रसाद द्विवेदी ने वाल्मीकि तुलसी आदि से कैफियत माँगी थी। काश ब्रज का 105 वर्ष पूर्व रचित यह छंद उनके सामने होता–

कनकाचल मंदिर सो सुंदर सिखर ओट,
मार खल निश्चर समूह व्यूह राखौना।

खचि हय डोर अंध सारथी निहोरौ 'व्रज'
रथ करि मंद गति वेग अभिलाषी ना।
गुरु इहि बंस के प्रसंस अवतंस देव,
आज थल के कजपुज कमल विकासो ना।
निसि–तप घोर, कर जोरें तिय प्राची ओर,
होय नहिं भोर हे प्रभाकर प्रकासो ना।

रीतिकाल में अन्य प्रवृत्तियों से संबद्ध अनेक प्रबंध काव्यों की रचना हुई। ऊपर जिन काव्यों का उल्लेख किया गया है वे प्रायः उपेक्षित ही हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि अवधी में रीतिकालीन राम काव्य परंपरा पर गर्व करने योग्य सामग्री उपलब्ध है। यही इतिहास है और उसका सच भी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रीतिकाव्य की भूमिका पृष्ठ 21– डॉ. नगेंद्र
2. संपादक और टीकाकार संत इंद्रसिंह चक्रवर्ती, पंजाबी विभाग, पटियाला। प्रकाशक साहित्य –रत्न माला कार्यालय, धर्मकूप, बनारस।
3. गोविंद रामायण, पृष्ठ–70
4. गोविंद रामायण, पृष्ठ–51
5. जीवन चरित्र, पृष्ठ–8–9
6. विनोद, पृष्ठ–1206
7. रघुवंशदीपक
8. संत सिंध अमृतसर के पुत्र सूरतसिंह ने भाषानुवाद किया है 1879 वि. में, पृष्ठ–206

– 56, अशोक नगर, अधारताल, जबलपुर, मध्य प्रदेश–482004

❑❑❑

राम तत्व की निर्मिति में अभिवादन का महत्व

डॉ. नृत्य गोपाल

'राम' भारतीय मानस का प्राण तत्व हैं। अभिवादन हैं। अभिनंदन हैं। राम प्रत्यक्ष हैं राम रहस्य हैं। सुबह हैं शाम हैं। आरंभ हैं और अंत हैं। 'राम' यदि शब्द है तो इस शब्द का अर्थ 'रामत्व' है? राम की विश्व मानव में अव्याख्येय स्वीकृति रामत्व की विराटता है। इस रामत्व की निमिर्ति के कारक कौन से हैं? निश्चित ही इसका कोई एक कारक नहीं हो सकता। अनेकानेक कारक मिलकर राम तत्व की निर्मिति करते हैं।

राम तत्व की निर्मिति में अभिवादनशीलता का बड़ा योगदान है। वे सर्वत्र विनम्र दिखाई पड़ते हैं पर सर्वत्र नमित नहीं हैं। जहाँ नतमस्तक होते हैं वहाँ से शुभाशीष के माध्यम से अतुल्य शक्ति प्राप्त करते हैं। यह शुभाशंसा राम को महान बनाती है। मनु स्मृति में अभिवादन का महत्व बताते हुए लिखा गया है–

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वद्र्धन्ति, आयुर्विद्यायशोबलम्।[1]

अर्थात् वृद्ध और बड़ों का सम्मान करने से व्यक्ति को आयु, विद्या, यश और बल की प्राप्ति होती है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में जिस राम का चरित्र चित्रण किया है उनके पास ये चारों तत्व विद्यमान हैं। इसका एक कारण राम के स्वभाव में अभिवादनशीलता है। गोस्वामी जी लिखते हैं–*प्रातःकाल उठिकैं रघुनाथा। मात पिता गुरु नावहिं माथा।।* [2]

महर्षि वाल्मीकि के राम शील और गुण संपन्न हैं, अभिवादनशील हैं पर, वे गोस्वामी जी के राम सरिस विनयी नहीं हैं। अभिवादन किसका और कब करना चाहिए इसकी परख उन्हें है। वे पात्र कुपात्र की गहरी परख रखते हैं। राज पुरुष हैं इसलिए उसकी गरिमा का ध्यान रखते हैं। राम लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्र के साथ यज्ञ रक्षा के लिए जाते हैं। जनकपुर में विवाहोपरांत महर्षि विश्वामित्र महाराज दशरथ को उनके दोनों पुत्रों को सौंप देते हैं। राम के इस पहले वन और परदेस प्रवास में श्रीराम को एक बार चरण स्पर्श करते हुए दिखाया है। बालकांड के 49वें अध्याय में राम और लक्ष्मण पति परित्यक्ता अहिल्या के कष्टों का निवारण कर वे उनके चरण स्पर्श करते हैं। महर्षि वाल्मीकि लिखते हैं–

राघवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा।
स्मरन्ती गौतमवचः प्रतिजग्राह सा हि तौ।।
पद्यमर्घ्यं तथाऽऽतिथ्यं चकार सुसमाहिता।
प्रतिजग्राह काकुत्स्थो विधिदृष्टेन कर्मणा।।[3]

''उस समय श्रीराम और लक्ष्मण ने बड़ी प्रसन्नता के साथ अहिल्या के दोनों चरणों का स्पर्श किया। महर्षि गौतम के वचनों का स्मरण करके अहिल्या ने बड़ी सावधानी के साथ उन दोनों भाइयों को आदरणीय अतिथि के रूप में अपनाया और पाद्य, अर्घ्य आदि अर्पित करके उनका आतिथ्य सत्कार किया। श्रीरामचंद्र जी ने शास्त्रीय विधि के अनुसार अहिल्या का वह आतिथ्य ग्रहण किया।'' इसके पश्चात् राम अयोध्या के राज भवन में पिता दशरथ के चरण स्पर्श करते हैं। वह भी उस समय जब पिता पुत्र एकांत में हैं।

प्रविशन्नेव च श्रीमान् राघवो भवनं पितुः।
ददर्श पितरं दूरात् प्रणिपत्य कृतांजलिः।।[4]

''पिता के भवन में प्रवेश करते ही श्रीमान रघुनाथ जी ने उन्हें देखा और दूर से ही हाथ जोड़कर वे उनके चरणों में पड़ गए।'' श्रीराम को अभिवादन स्वरूप आशीष में अमोघ शक्ति प्राप्त होती है। राम के वनगमन के अवसर पर माँ कौशल्या जो आशीर्वाद प्रसाद देती हैं वह विलक्षण है। महर्षि वाल्मीकि ने अयोध्या कांड के 25वें सर्ग में इसका वृहद् वर्णन किया है। राम की रक्षा का पूरा कवच कौशल्या तैयार करती हैं। कौशल्या निर्मित इस आशीष कवच में श्रीराम कहीं असुरक्षित दिखाई ही नहीं पड़ते। कौशल्या के इस आशीष में ममत्व का अद्भुत स्वरूप दिखाई पड़ता है।

राम भारतीय जन के अभिवादन हैं। महर्षि वाल्मीकि ने वाल्मीकि रामायण के बालकांड में 74वें सर्ग में 'राम राम' अभिवादन का प्रयोग किया है। राजा दशरथ राम विवाहोपरांत अयोध्या को प्रस्थान करने हेतु तैयार हैं। उसी समय परशुराम जी का आगमन होता है। परशुराम विकरालता का पर्याय दिखाई पड़ते हैं। उस समय मुनियों ने परशुराम से जो संवाद स्थापित किया उसका आरंभ 'राम राम' से होता है। यह विचारणीय है कि 'राम राम' अभिवादन यहाँ पहली बार हुआ है अथवा इस अभिवादन की परंपरा पूर्व से चली आ रही थी ?

एवमुक्त्वार्घ्यमादाय भार्गवं भीमदर्शनम्।
ऋषयो राम रामेति मधुरं वाक्यमब्रुवन्।।[5]

''ऐसा कहकर ऋषियों ने भयंकर दिखाई देनेवाले भृगुनंदन परशुराम को अर्घ्य लेकर दिया और 'राम! राम!' कहकर उनसे मधुर वाणी में बातचीत की।'' ध्यातव्य है कि जब छिहत्तरवें सर्ग में श्रीराम परशुराम जी से संवाद स्थापित करते हैं तो वे गोस्वामी जी के राम की भाँति *नाथ शंभु धनु भंजनि हारा। होइहि कोउ एक दास तुम्हारा।* की भाँति दासत्व का प्रदर्शन नहीं करते। वे तो कहते हैं कि–''भार्गव! मैं क्षत्रिय धर्म से युक्त हूँ तो भी आप मुझे पराक्रमहीन और असमर्थ सा मानकर मेरा तिरस्कार कर रहे हैं। अच्छा, अब मेरा तेज और पराक्रम देखिए।''[6] महर्षि के इस संकेत को भी समझना होगा कि भारतीयता के रक्षक राम आत्म–सम्मान से युक्त बलवान राम हैं। यही श्रीराम जब वन में ऋषियों और मुनियों के आश्रमों में जाते हैं तो अग्निहोत्रीय महर्षि भारद्वाज को प्रणाम निवेदित करते हैं। भारद्वाज ऋषि ही श्रीराम को उद्देश्य सिद्धि के सहयोगी पर्वत चित्रकूट पर निवास करने का मार्ग सुझाते हैं। यहीं से आगे के गहन वन की यात्रा में श्रीराम तेजस्वी महर्षि अगस्त्य के आश्रम में जाते हैं। श्रीराम ऋषि के दोनों चरणों को पकड़कर प्रणाम करते हैं तथा आशीर्वाद स्वरूप अनेकानेक दिव्यास्त्र प्राप्त करते हैं।

एवमुक्ता महाबाहुरगस्त्यं सूर्यवर्चसम्।
जग्राहापततस्तस्य पादौ च रघुनन्दनः।।[7]

वस्तुतः महर्षि वाल्मीकि के राम में महापुरुषत्व के गुण सर्वत्र विद्यमान हैं। यही कारण है कि उनके चरित्र में सदैव गंभीरता का औदात्य बना रहता है। एक और विशेष तत्व जो दिखाई देता है वह है कि महर्षि वाल्मीकि वात्सल्य, शुभकामनाएँ और आशीर्वाद आदि के मध्य सजग हैं। वाल्मीकि रामायण के ऋषि यों ही आशीर्वाद और अभिशाप का प्रयोग नहीं करते। उन्हें पता है कि दोनों ही स्थितियों में उनके तप बल का अंश रक्षित होता है। इसका संकेत विश्वामित्र के उस कथन में मिलता है जब वे राजा दशरथ को कहते हैं कि यज्ञ की रक्षा तो वे स्वयं भी कर सकते हैं पर वे श्रीराम को यशस्वी बनाना चाहते हैं। फिर, राम के वन आगमन से पूर्व भी ऋषिगण अपने आश्रमों की रक्षा कर ही रहे थे ! हाँ, मानव रक्षा हेतु वे अपनी संचित शक्ति किसी सुपात्र को समर्पित करना चाहते थे। राम वनवास की अवधि में अपनी संक्षिप्त साधना के बल पर ऋषियों को यह विश्वास दिलाने में सफल रहे कि वे तप बल से अर्जित दिव्य शक्ति को धारण करने की क्षमता से पूर्ण हैं। बिना दीर्घ तप किए अभिवादन के माध्यम से राम ने इन तपस्वियों की शक्ति को धारण किया।

गोस्वामी तुलसीदास के राम अतिविनम्र दिखाई पड़ते हैं। वे अपने शत्रु के प्रति भी सदाशयता का परिचय देते हैं। वे तो 'सब सन लही असीस' में विश्वास करने वाले हैं। गोस्वामी जी द्वारा प्रस्तुत

विनयशीलता में मध्यकालीन भारत की जन विवशता का तंतु भी निहित हो सकता है। पर, राम अपनी विनम्रता और अभिवादनशीलता के प्रभाव से भारतीय समाज को एकत्रित–संगठित करने में सफल हो जाते हैं। नदी, सरोवर, वृक्ष, लता–पता, पर्वत, गुफा–कंदरा, खग, मृग, मधुकर, यानी जलचर, नभचर और थलचर सभी के प्रति पूजा और सम्मान का भाव रखने के कारण ही वे सभी का सहयोग प्राप्त कर लेते हैं।

वनवास के समय श्रीराम चित्रकूट के आश्रम में हैं। "उस समय देवता, नाग, किन्नर और दिक्पाल चित्रकूट में आए और श्रीरामचंद्र जी ने सभी को प्रणाम किया। देवता नेत्रों का लाभ पाकर आनंदित हुए।" गोस्वामी जी लिखते हैं–

अमर नाग किन्नर दिसिपाला। चित्रकूट आए तेहि काला।।
राम प्रनामु कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू।।[8]

विनय श्रीराम का अस्त्र है। इसके अप्रभावी होने पर ही श्रीराम शस्त्र का मार्ग चुनते हैं। गोस्वामी जी के राम समुद्र से भी विनती करते हैं। विनती के अस्वीकार पर सक्रोध का रूप धारण करते हैं।

विनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति।।[9]

गोस्वामी जी के राम के स्वभाव की विनयशीलता के अद्भुत दर्शन तब दिखाई पड़ते हैं जब वे लंका विजय के पश्चात् अयोध्या आते हैं– *सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा।*[10] सभी का अभिवादन करना। यथायोग्य व्यवहार करना राम में रामत्व की वृद्धि करता है।

महर्षि वाल्मीकि और गोस्वामी तुलसीदास की अभिवादनशीलता में बाह्य भेद दिखाई पड़ सकता है पर इससे राम के रामत्व की निर्मिति और सुदृढ होती है। एक में गुरुत्व है तो दूसरे में गुरुत्वाकर्षण झलकता है। राम अभिवादनशील बनकर ही हमारे अभिवादन बने हैं। इसीलिए आगमन हो या विदाई हमारा अभिवादन एक ही रहेगा ''राम राम जी।''

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मनुस्मृति, 2/121
2. रामचरितमानस, बालकांड दोहा सं. 205, गोस्वामी तुलसीदास
3. श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे, बालकांडे एकोनपंचाशः सर्ग, श्लोक 17–18
4. श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे, अयोध्याकांड चतुर्थ सर्गः, श्लोक 10
5. श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे, बालकांडे, चतुः सप्ततितमः सर्गः, श्लोक 23
6. श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे, बालकांडे, षट्सप्ततितमः सर्गः, श्लोक 3
7. श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे, अरण्यकांडे, द्वादशः सर्गः, श्लोक 24
8. रामचरितमानस, अयोध्याकांड दोहा सं. 134, गोस्वामी तुलसीदास
9. रामचरितमानस, सुंदरकांड दोहा सं.57, गोस्वामी तुलसीदास
10. रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा सं.4, गोस्वामी तुलसीदास

– हिंदी विभाग, हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110007

❑❑❑

राम काव्य परंपरा और आधुनिक राम काव्य का स्वरूप

डॉ. दीनदयाल

भारतीय साहित्य और संस्कृति में राम और राम काव्य का महत्वपूर्ण आधार है। भारतीय समाज में एक ओर जहाँ राम दशरथ पुत्र के रूप में जाने जाते हैं, हिंदू धर्म के उपास्य कहलाए जाते हैं तो वहीं साहित्य में वह एक आदर्श चरित नायक के रूप में दिखाई देते हैं। राम के सगुण–निर्गुण, आध्यात्मिक–अलौकिक आदि चरित रूपों को लेकर चर्चा होती रही है। इस लेख में राम काव्य परंपरा को ध्यान में रखते हुए आधुनिक युग के राम काव्य में राम के स्वरूप का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

हम जानते हैं कि रामायण और महाभारत हमारे जीवन में दो बड़े उपजीव्य ग्रंथ माने जाते हैं। एक यथार्थ का काव्य है लेकिन दोनों ही प्रेरित करते रहे हैं। दोनों वस्तुतः भारतीय संस्कृति की आधारशिला हैं। रामायण के राम भारतीय जन–नायक राम हैं और महाभारत में कृष्ण। हिंदी ही नहीं भारतीय साहित्य में इन दोनों नायकों पर बहुत कुछ लिखा गया है। दोनों चाहे विष्णु का अवतार हैं लेकिन दोनों की प्रकृति, स्वरूप अलग–अलग है।

प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल सभी में इनके चरित्र की रचना हुई है। संस्कृत में रामायण पर आधारित 'रघुवंश', 'रावणवध', 'जानकीहरण', 'रामचरित', 'उदार राघव', 'जानकी परिणय' आदि महाकाव्य लिखे गए तो 'महावीर चरित', उत्तर रामचरित', कुंदमाला' 'अनर्घ राघव', 'बाल रामायण', 'हनुमन्नाटक', 'आश्चर्य चूड़ामणि', 'प्रसन्न राघव', 'मैथिली कल्याण', 'दूतांगद' आदि नाटक लिखे गए। इसके साथ–साथ अनेक श्लेषकाव्य, चित्रकाव्य और धार्मिक साहित्य भी सृजित हुए। राम काव्य संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश आदि सभी भाषाओं में प्रचुर मात्रा में लिखा गया। जैन साहित्य में राम काव्य प्रचुर है। 'पउम चरिउ' पहला और श्रेष्ठ काव्य है। इसके अतिरिक्त तमिल में 'कंब रामायण', तेलुगु में 'रंगनाथ रामायण', 'भास्कर रामायण', 'मूल रामायण', मलयालम में 'रामचरितं', गणेश रामायण', 'अध्यात्म रामायण', कन्नड में 'पंप रामायण', 'तोरय रामायण', मराठी में 'भावार्थ रामायण', ओड़िया में 'विलंका रामायण', बांग्ला में 'कृतिवास रामायण', असमिया में 'माधव कंदलि रामायण', गीति रामायण' और हिंदी में 'रामचरितमानस', रामचंद्रिका' आदि रचनाएँ दिखती हैं। आधुनिक काल में 'रामायण कल्पवृक्ष', 'रामायण दर्शन', 'मेघनाद वध', 'साकेत' जैसे महत्वपूर्ण महाकाव्य दिखाई देते हैं।

हिंदी साहित्य के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक रचनाएँ राम को आधार बनाकर लिखी गई हैं। जिसमें मिश्रबंधु की 'लवकुश चरित', मुकुटधर शर्मा पांडे रचित 'कैकयी का क्षदम', रामचरित उपाध्याय की 'रामचरित चंद्रिका' और 'रामचरित चिंतामणि', रामस्वरूप टंडन का 'सीता परित्याग', श्री विष्णु का 'सुलोचना सती', मैथिलीशरण गुप्त का 'लीला', 'पंचवटी', 'सीता परित्याग', श्री विष्णु का 'सुलोचना सती', मैथिलीशरण गुप्त का 'लीला'

'पंचवटी', 'साकेत', 'प्रदक्षिणा', हरिऔध का 'वैदेही बनवास', बलदेव प्रसाद मिश्र का 'कौशल किशोर' 'साकेत संत', 'रामराज्य', रामनाथ ज्योतिषी का 'राम चंद्रोदय', शिवरत्न शुक्ल का 'भरत भक्ति', बिहारी लाल विश्वकर्मा का 'श्री कौशलेंद्र कौतुक', निराला का 'पंचवटी प्रसंग', 'राम की शक्तिपूजा', पंत का 'अशोक वन', बालकृष्ण शर्मा नवीन का 'उर्मिला', राज नारायण त्रिपाठी कमलेश का 'रामराज्य', केदारनाथ मिश्र का 'कैकयी', राधेश्याम द्विवेदी का 'कल्याणी कैकयी', गोकुलचंद्र शर्मा का 'अशोक वन', हरिशंकर शर्मा का 'रामराज्य', हरदयाल सिंह का 'रावण महाकाव्य', पोद्दार रामावतार का 'विदेह', चंद्र प्रकाश वर्मा का 'सीता', हरिशंकर सिन्हा का 'मांडवी', प्रियदर्शी का 'उर्मिला', सरयू प्रसाद त्रिपाठी का 'सीता अन्वेषण', आचार्य श्रीतुलसी का 'अग्नि परीक्षा', गोविंद दास विनीत का 'प्रिया या प्रजा', गया प्रसाद द्विवेदी का 'नंदीग्राम' आदि अनेक रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

आदिकाल से लेकर मध्यकाल के अंत तक हिंदी साहित्य में जो राम काव्य का स्वरूप मिलता है, वह आधुनिक काल से पूरी तरह अलग है। पहले राम काव्य के केंद्र में राम आराध्य और भगवान रूप में स्थापित किए गए दिखाई देते हैं। जहाँ भक्ति का आधार मुख्य है लेकिन आधुनिक काल के साहित्य में जहाँ राष्ट्रीय और सांस्कृतिक पुनरुत्थान है, वहाँ जन–जीवन के प्रति चेतना का भाव है इसलिए आधुनिक काल के राम काव्य में केवल परंपरा की एक सामान्य अनुकृति दिखाई नहीं देती अपितु उस पर जीवन के बदले हुए, नवीन कलात्मक जीवन दृष्टिकोण का रूप भी दिखाई देता है। इस काव्य में प्रवृत्तिमूलक मानवतावादी, जीवन दर्शन का विनियोग हुआ है। आधुनिक काव्य में राम काव्य की आध्यात्मिक घटनाओं को स्वाभाविक रूप दिया गया है। अलौकिक महत्व ना देकर उन्हें मानवीय रूप में स्थापित किया गया है। चारित्रिक गुणों में अतिरंजना नहीं है। देवता हो, राक्षस हो या वानर सभी मानवीय स्तर के दिखाए गए हैं। आधुनिक राम काव्य में प्रेम–तत्व की प्रधानता है। राम की उपासना और मोक्ष की कामना से अधिक दांपत्य प्रेम, भ्रातृ प्रेम, वात्सल्य ने श्रद्धा, राष्ट्रप्रेम, विश्व–बंधुरव, मानव प्रेम आदि प्रधान है। जीवन में कर्म के प्रति अनुराग का आदर्श स्थापित हुआ है। समष्टि के लिए व्यष्टि का त्याग दिखाया गया है। सहृदयता, सहिष्णुता, सहानुभूति आदि भावों से राम कथा को उसके प्रसंगों को उसके पात्रों को सुशोभित किया गया है। निम्न वर्ग के व्यक्तियों के प्रति करुणा दिखाई गई है। मानवीय शोषण को एक नैतिक अपराध बताया गया है। सामाजिक– आर्थिक समानताओं के प्रति आदर व्यक्त करते हुए, सबसे ऊपर मानवतावाद अथवा वसुधैव कुटुंबकम की धारणा को प्रधानता दी गई है। भारतीय संस्कृति को जीवन के बदलते प्रतिमानों के रूप में वस्तुतः यहाँ देखा जा सकता है। वर्णाश्रम व्यवस्था में सामाजिक समानता, दार्शनिक अद्वैतवाद में मानवतावाद, पारिवारिक आदर्शों में प्रेम की, संस्था अर्थव्यवस्था में श्रम और त्याग का समन्वय, अंध विरोधियों के अनुसरण के स्थान पर भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों का चिंतन किया गया है। आधुनिक राम काव्य में राष्ट्रप्रेम का स्वर भी प्रमुख है। भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट आस्था, जन्मभूमि के सौंदर्य का वर्णन, विदेशी की निंदा आदि आधुनिक राम काव्य में दिखाया गया है। राष्ट्रीयता का भाव मानव मात्र के कल्याण के रूप में दिखाया गया है। यही नहीं राम काव्य में गांधीवाद के व्यावहारिक पक्ष का भी उल्लेख हुआ है। गांधीवाद में जिस सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह काम निग्रह, आदि बातों पर बल दिया है, वे सभी राम काव्य में घटित होते दिखाए हैं। शिकार आदि प्रसंगों में अहिंसा का समर्थन किया गया है। राम–रावण युद्ध में भी युद्ध की अपेक्षा अहिंसा पर बल दिया गया है। राम को साम नीति का प्रवर्तक दिखाया गया है। वन में राम और सीता चरखा कातने का और उसके प्रचार का कार्य करते हैं। वे खादी का महत्व समझाते हैं। निस्वार्थ श्रम पर बल देते हुए गांधीवादी सिद्धांतों का उल्लेख हुआ है। आधुनिक राम काव्य में धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक असमानताओं को दूर करके समाजवाद लाने का संदेश भी दिखाई देता है। शोषकों की निंदा, दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति इस काव्य में दिखाई

देती है या यूँ कहें प्रगतिवादी दृष्टिकोण राम काव्य में दिखाई देता है। आधुनिक काल में राम कथा को वर्ग–संघर्ष के प्रतीक रूप में रखा गया है। आधुनिक राम काव्य में भौतिकवाद की निंदा, भोग के रूप में की गई है। भौतिक प्रगति के लिए कर्म में प्रवृत्ति की शिक्षा दी गई है और भोग से निवृत्ति की बात की गई है। ऐसे अनेक कारण है जिससे आधुनिक राम काव्य मध्ययुगीन राम काव्य की परंपरा का अनुवर्तन करता नहीं दिखता है। उसमें नवीनता और मौलिकता दिखाई देती है। आधुनिक राम काव्य में न केवल विषय वस्तु की नवीनता है अपितु प्रसंगों में भी मौलिकता दिखाई देती है। कई उपेक्षित प्रसंगों को पुनर्जीवित किया गया है। चाहे वह शंबूक की हत्या का प्रसंग हो या कोई और प्रसंग। चरित्र की दृष्टि से भी आधुनिक राम काव्य में कुलीनता, वीरता, धीरोदात्त आदि नायक के गुणों की कसौटी नहीं रही अपितु नायक में सामान्य मानवीय गुणों की प्रधानता रखी गई है। व्यक्तिगत वीरता के स्थान पर समष्टि के लिए त्याग और संघर्ष से जूझने का उत्साह उनमें दिखाया गया है। नारी को विशेष महत्व देने के लिए राम के साथ–साथ सीता और उर्मिला आदि पात्रों को भी उठाया गया है। नारी, पुरुष, प्रकृति, भौतिक वस्तुओं आदि के वर्णन में सौंदर्य के साथ उनकी कुरूपता का भी चित्र मिलता है। बाह्य सौंदर्य के साथ–साथ आंतरिक सौंदर्य का भी उद्घाटन किया गया है। आदर्श के स्थान पर यथार्थ को प्रधानता दी गई है।

काव्य की विषय वस्तु ही नहीं भाषा और शिल्प पक्ष की दृष्टि से भी आधुनिक राम काव्य में एक क्रांतिकारी परिवर्तन दिखाई देता है। आधुनिक राम काव्य केवल महाकाव्य के रूप में हमारे सामने नहीं मिलता है अपितु उसमें मुक्तकों, गीतों, पद्य कथाओं आदि के रूप भी दिखाई देते हैं। अधिकतर आधुनिक राम काव्य खड़ी बोली में लिखे गए हैं, जिसमें लक्षणा, चमत्कार, चित्र–विधान, मानवीकरण, प्रतीक योजना, अप्रस्तुत विधान, नाटकीयता आदि अनेक शैलियों का रूप देखा जा सकता है। आधुनिक राम काव्य में परंपरागत छंदो से अलग नवीन और मौलिक प्रयोग दिखाई देते हैं। रचनाओं में मैथिली, सरस, शक्ति पूजा आदि नवीन छंदो की उद्भावनाएँ हैं। निराला ने तो परंपरागत छंद की परिपाटी को तोड़ते हुए मुक्तछंद में पंचवटी प्रसंग' लिखा है

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी साहित्य में राम काव्य की परंपरा आधुनिक काल में आकर एक नए रूप में, नई चाल में ढली दिखाई देती है। आधुनिक राम काव्य मौलिक और सर्जन की नई सीमाओं से लैस है। इस राम काव्य के मूल में भारतीय संस्कृति है। आधुनिक युग में छायावादी, प्रगतिवादी और प्रयोगवादी धाराएँ व्यक्तिगत और सामाजिक संघर्षो, मानसिक अंतद्‌र्वंद्‌व और कुंठाओं से संबंध है; इसलिए राम कथा इनका विषय नहीं बन सकी। आधुनिक राम काव्य की आधुनिकता राष्ट्रीय और सांस्कृतिक उत्थान से संबंधित है। उसमें आधुनिक जीवन की जटिल परिस्थितियों, नवीन सामाजिक धारणाओं को स्थान दिया गया है। प्रतीकात्कम और नवीन शैली से युक्त आधुनिक काल का राम काव्य अपनी अलग पहचान रखता है। प्रतीकात्मक और नवीन शैली से युक्त आधुनिक काल का राम काव्य अपनी अलग पहचान रखता है। आज भी राम कथा को नए दृष्टिकोण से जोड़कर देखने और काव्य सृजन करने की प्रक्रिया सक्रिय है।

– कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्टडीज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

रामचरितमानस में मानव मूल्यों का चित्रण एवं स्थापना

अखिलेश आर्येंदु

आर्यावर्त से इंडिया तक की यात्रा में आर्यावर्त के परम पूज्य पुण्यधाम के प्रतीक श्रीराम का स्मरण मात्र भी सुख देने वाला है। संत तुलसीदास कहते हैं कि राम नाम ही अपने आप में एक संपूर्ण विज्ञान और धर्म है। इस विज्ञान और धर्म का जो सामंजस्य बिठा लेता है वह राम का अनुचर बन जाता है और जो नहीं बिठा पाता वह अंधविश्वास और अंधश्रद्धा में डूबकर अपना अनमोल जीवन यूँ ही व्यर्थ गँवा बैठता है। मानसकार कहते हैं– *बंदउँ गुरु पद पदुम परागा, सुरुचि सुबास सरस अनुरागा। अमिअ मूरियम चूरन चारू, समन सकल भव रुज परिवारू।।*(मा.0–1–2)

संत तुलसीदास के जीवन में घटी घटनाएँ और उन घटनाओं से उन्होंने जो सीखा उससे उनका संपूर्ण जीवन ज्ञान–विज्ञान, मानव मूल्यों और अध्यात्म की रश्मिों से युक्त हो गया। अपनी पत्नी के प्रति अतिशय लगाव और उससे मिली पत्नी द्वारा सीख ने उन्हें रामबोला से संत तुलसीदास बना दिया। लोक प्रचलित ये पंक्तियाँ– *अस्थि धर्ममय देह मम, तामें ऐसी प्रीति, ऐसी जो श्रीराम में, होय न भव भय भीति।।* एक सांसारिक व्यक्ति परिवार में सीख लेकर कैसे संसार को सत्य, प्रेम और आनंद की राह दिखाने का कार्य करता है, संत तुलसीदास के जीवन–दर्शन में हम देख सकते हैं। ऐसे संत तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' में धर्म अर्थात् मानव मूल्यों की स्थापना किस हद तक हुई है, प्रस्तुत लेख में प्रमाणों के साथ देखने को मिलेगा।

भारतीय संस्कृति की ज्ञानमयी, विज्ञानमयी और ऋत्मयी अमृतधारा की संपृक्तता को विश्व मानस में जो प्रतिष्ठा प्राप्त है उसमें विश्व चेतना के सोमरस की स्थापना सनातन काल से होती आई है। इस सोमरस ने भारतभूमि को अतिप्रतिष्ठा दी है। यह सोमरस क्या है और इसका पान कौन करता है? इस प्रश्न को अतःकरण में समावेशित करने पर प्रकट होता है कि यह सोमरस और कुछ नहीं बल्कि वे मानव मूल्य हैं जो सच्चे अर्थों में मनुष्य को मानव बनाते हैं। जिनके पान करने से सारा जीवन देव तुल्य हो जाता है। कहना न होगा कि इन मूल्यों के सर्वप्रथम दिग्दर्शन विश्व के प्रथम ज्ञान–विज्ञानमयी ग्रंथ वेद में होते हैं। वेद से होते हुए ये मूल्य विश्व के अन्य सभी धर्म, ज्ञान–विज्ञान और चेतना के ग्रंथों में किसी न किसी रूप में प्रस्फुटित होते दिखलाई पड़ते हैं। 'रामचरितमानस' में ये मनुष्य को मानव बनाने वाले सोम अर्थात् मूल्य किस रूप में प्रस्फुटित हुए हैं इसे हम विविध रूपों में देख सकते हैं। रामचरितमानस ऐसा कालजयी अमृतधारा का महाकाव्य है जिसमें मानव जीवन की पूर्णता और विज्ञानधर्मिता का दिग्दर्शन जीवंत रूप में दृष्टव्य होता है। संत तुलसीदास ने भगवान राम और महर्षि वाल्मीकि ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के संपूर्ण जीवनचरित के माध्यम से मानव को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त कराने में सहायक मानव मूल्यों का वर्णन आदर्श ज्ञानमयी, भक्तिमयी और कर्ममयी धारा में किया है। राम का चरित मानवीय

मूल्यों और सुभाषितों से किस प्रकार परिपूर्ण है इसे हम रामचरितमानस के परिप्रेक्ष्य में विवेचित करेंगे।

जिस मर्यादा और संस्कार के कारण राम सर्वपूज्य हुए उस राम का जीवन वृत्तांत ही तो है रामचरितमानस में। लेकिन बात मात्र इतनी ही नहीं है। राम के जीवन वृत्तांत के द्वारा तुलसीदास ने समाज, संस्कृति, धर्म, अध्यात्म, साहित्य, ज्ञान–विज्ञान और पौराणिक दर्शन को भी बहुत ही सरस, सरल और विज्ञानमयी भाषा के माध्यम से समझाने का सफल प्रयास किया है। मर्यादा मानव की कैसी होनी चाहिए, इसे जो जानता समझता है वह राम बन जाता है और जो मर्यादा को न जानता और न मानता है वह रावण और कुम्भकरण बन जाता है। मानव को मर्यादावान होना ही चाहिए। यह मर्यादा ही मानव धर्म का आभूषण यानी मूल्य है। जैसे मूल्यविहीन कोई वस्तु किसी काम की नहीं होती उसी प्रकार से मूल्यविहीन मानव जीवन भी किसी भी अर्थ का नहीं होता। अर्थात् निरर्थक होता है। मानस की ये पंक्तियाँ– *नीति प्रीति यश–अयश गति, सब कहँ शुभ पहचान, बस्ती हस्ती हस्तिनी देत न पति रति–दान।* कहने का भाव यह है जिस भारत में हाथिनी हाथी को गाँव से बाहर जाकर रति दान देती है, वहाँ मानव को तो हरहाल में मर्यादा और संयम में रहकर ही जीवन व्यतीत करना चाहिए। मूल्यों की स्थापना का यह उत्कर्ष दृश्य है। और संयम, मर्यादा और धर्म का एक अन्य चित्रण देखिए–*संयम यह न विषय कै आसा।* यह प्रेरणा और उपदेश आज और भी अधिक उपयोगी और प्रासंगिक है– *पर धन कूँ मिट्टी गिनै, पर त्रिया मात समान। आगे ...जननी सम जानहिं पर नारी।* यह है राम के आराधक का मानव जीवनदर्शन की उत्कृष्टता का एक दृश्य।

जब मानव मूल्यों से युक्त होता है तब उसमें दया, करुणा, अहिंसा, प्रेम, सत्य, सदाशयता, सहिष्णुता, धैर्य, परोपकार, संयम, पवित्रता, अपरिग्रह, सुचिता, शांति, संतोष, अभय, सत्साहस और आत्मविश्वास का उदय होता है। परमात्मा की अनुकंपा प्राप्त करने के लिए वह जप, तप और व्रत जैसे साधनापरक कार्य में संलग्न रहता है। लेकिन जब उसमें मानव मूल्यों अर्थात् धर्म का सर्वदा और सर्वथा अभाव रहता है तो वह अनेक तरह के विकार, विषय और अज्ञानता से भर जाता है। गोस्वामी जी कहते हैं– *जप तप मख सम दम ब्रत दाना। बिरति बिबेक जोग बिग्याना। सब कर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ नहिं पावइ छेमा।।* (मानस–94ख/5–6) ज्ञान, ध्यान, विज्ञान, साधना और धर्म का सम्यक् पालन करना प्रत्येक मानव के लिए आवश्यक है। राम, भरत, हनुमान और अंगद के माध्यम से मानसकार ने बहुत ही उत्कृष्टता के साथ इसे मानस में वर्णित किया है। मानस की ये बहुप्रचलित पंक्तियाँ इस बात को बताती हैं–जप तप नियम जोग धर्मा। *श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा। ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन।। आगम–निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर प्रभु एका।। तब पद पंकज, प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर।।*(मा. 7–48/1 से 4)

भक्ति के वर्णन में तुलसी सगुण और निगुण शब्दों के माध्यम से भक्ति का निरूपण करते हैं। नवधा भक्ति पौराणिक जगत में अति प्रसिद्ध है। परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना का वैदिक स्वरूप मानस में भले ही न हो लेकिन जिस रूप में है, वह परंपरागत है। जैसे अंधविश्वास और विश्वास में बहुत सूक्ष्म अंतर है उसी तरह श्रद्धा और अंधश्रद्धा तथा भक्ति और अंधभक्ति में भी सूक्ष्म अंतर है। तुलसी इस बात को मानस में कई स्थलों पर समझाते हैं। जन्म–मरण के बंधन से छूटने के लिए ईश्वर की सच्ची भक्ति और सतकर्म आवश्यक है। साथ ही परोपकार, विद्या और धर्म का पालन भी आवश्यक है। मानसकार कहते हैं वेद पर विश्वास और प्रभु की भक्ति से स्वर्ग का पथ मिल सकता है। *सद्गुरु बैद वचन विस्वासा एवं बिनु विस्वास भगति नहिं।।*(मानस–7–90 क) मानव जीवन का परम लक्ष्य क्या है और इसे प्राप्त करने के लिए किस मार्ग को अपनाना चाहिए, इसका वर्णन मानस में अत्यंत जीवंतता के साथ किया गया है। *–अर्थ न धर्म न काम रुचि, पद न चहँउ निर्वान। जनम–जनम रति राम पद, यह*

वरदान न आन।। (मा.2–204) परमार्थ धर्म का आधार है। या कहें मानव मूल्यों की धारा परमार्थ के पथ से होकर निकलती है। तुलसी कहते हैं– *परमारथ स्वारथ सुख सारे, भरत न सपनेहुँ मनहिं निहारे। साधन सिद्धि राम पग नेहू, मोहि लखि परत भरत मत ऐहू।।*(मा.2–288/7–8)

राम विश्व संस्कृति के अप्रतिम महामानव हैं। वह उन सभी सुलक्षणों, सद्गुणों, शुभाचारों और धर्मों से युक्त हैं जो किसी महामानव में होने चाहिए। राजमहल में पैदा होकर भी सामान्य जीवन व्यतीत करने वाले श्रीराम का जीवन, निश्चय ही सब के लिए प्रेरणीय और अनुकरणीय है। राम का सारा जीवन ही संदेश है। राम के सभी कार्य विलक्षण और सत्य के पर्याय हैं।

मानव जीवन की उत्कृष्टता जिन मूल्यों और भावों से भाषित होती है उसे सर्व स्वीकारिता और सार्वदेशिकता के परिप्रेक्ष्य में देखना ही उत्तम है। राम का सारा जीवन मानव की सर्वोच्चता, शुभता और ज्ञान–भक्ति–प्रेम की अभिव्यंजना से परिपूर्ण है। तुलसी ने इसे अपने भावों के उद्वेग में देखा है। राम नाम को अंक के माध्यम से सजाने वाले तुलसी ने ज्योतिष की दृष्टि से मूल्यों को देखने का प्रयास किया है। *राम नाम कौ अंक है, सब साधन हैं सून* (दोहावली) राम वेद पढ़ने वाले थे। उनका सारा जीवन वेद के अनुकूल था। रामचरितमानस की ये पंक्तियाँ... 'वेद पढ़हिं जनु वटु समुदाई'। वेद पढ़ने वाला मनुष्य ज्ञानवान बनता है। उसे जीवन की सुभाषितों का सम्यक् ज्ञान होता है। वह ज्ञान–विज्ञान धर्मी बनकर मानवता के कल्याण के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने में स्वयं को गर्व का अनुभव करता है। राम का जीवन सुभाशितों से परिपूर्ण इसीलिए था क्योंकि वे वेद का स्वाध्याय करने वाले थे और वेद के पथ का ही अनुसरण करने वाले थे।

शुभ और अशुभ नामों का स्मरण संत तुलसी दास की दृष्टि में जानना आवश्यक है। जैसे राम नाम का स्मरण करना शुभ और रावण नाम का स्मरण अशुभ माना गया है। इसी प्रकार सीता और सती अनुसूया का स्मरण शुभ और मंदोदरी और सूर्पनखा का स्मरण अशुभ बताया है।

इसके पीछे मनोविज्ञान है जिसे समझने की आवश्यकता है। हम राम नाम का स्मरण करते ही यह धारणा बना लेते हैं कि राम नाम के जप मात्र से शुभ होता है। इसी तरह सीता नाम के स्मरण और जप से कल्याण होता है। किसका कितना कल्याण होता है, यह परीक्षण और शोध का विषय हो सकता है। हमारी संस्कृति में शुभ–लाभ जैसे प्रतीक शताब्दियों से प्रचलित रहे हैं। ये हमारे मूल्यों के साथ किसी न किसी रूप में जुड़े दिखाई पड़ते हैं। यहाँ तक कि यात्रा के समय निकलते हुए भी इन्हें स्मरण करना शुभ माना गया है। दोहावली में तुलसी कहते हैं– *तुलसी सहित सनेह नित सुमिरहु सीता राम। सगुन मंगल सुभ सदा आदि मध्य परिनाम।।*

मूल्यों को जीवन में अपनाना जीवन को सफल बनाने की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। धीरज, साहस, प्रेम, करुणा, दया, अहिंसा और सत्य जैसे अनेक सद्गुण हमारे जीवन को महत्वपूर्ण बनाते हैं। *धीर बीर रघुबीर प्रिय सुमिरि समीर कुमारु। अगम सुगम सब काज करु करतल सिद्धि विचारु।।* राम धीर, वीर, गम्भीर प्रकृति वाले हैं। आगम ग्रंथों में मानव के धर्म–अध्यात्म की चर्चा की गई है। राम वेद–वेदांग दोनों का स्वाध्याय किए हुए थे। वेद में सभी प्रकार के सद्गुणों का वर्णन किया गया है। इसी तरह अनेक प्रकार की मर्यादाओं, प्रेरणाओं और सुचिताओं का भी वर्णन किया गया है। राम ने वेद–वेदांग में से जो मूल्य, तत्व और ज्ञान–प्रेरणा ग्रहण किए वे उनके जीवन के अभिन्न अंग बन गए थे। राम इस दृष्टि से भी हमारे लिए प्रेरणीय और वंदनीय हैं। जिसका जीवन ही वेदमय हो, वह कैसा होगा इसे राम के जीवन को देखकर हम सुगमता से समझ सकते हैं।

सुख–दुख जीवन के वास्तविक पक्ष हैं। धरती पर ऐसा कोई मानव नहीं जिसे इन दोनों से कभी न कभी गुजरना न पड़ा हो। राम के जीवन में भी ये दोनों पक्ष बराबर दृष्टव्य होते हैं। लेकिन वे न तो सुख में इतराए ही और न दुख में घबराए ही। यानी वह दोनों स्थितियों में सम्यक् रूप से 'सम' बने रहे। मूल्यवान और ज्ञानवान मानव का जीवन इसी प्रकार का होता है। दूसरों के लिए जिसका

जीवन समर्पित होता है, उसका जीवन कभी व्यर्थ नहीं जा सकता है। मानसकार कहते हैं– *परहित लागि तजइ जो देहि, संतत संत प्रसंसहिं तेही।* (मानस 1–81–1) मानस में मूल्यपरक व्यंजना पग–पग पर है। ये व्यंजनाएँ जीवन को संपूर्ण और अर्थपूर्ण बनाती हैं। तुलसी कहते हैं– *परहित बस जिनके मन माँही, तिन कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।* (मानस 3–30–5) जिन मूल्यों, सद्‌गुणों, सद्‌भावों, विशिष्टताओं और आचरणों के कारण कोई मानव भगवान पद प्राप्त करता है वे मानव को उसकी सर्वोच्चता को प्राप्त कराते हैं। उदाहरण के रूप में भगवान पदवी प्राप्त करने वाले महामानव मर्यादा पुरुषोत्तम राम उन सभी सदगुणों, सद्‌भावों, विशिष्टताओं और आचरणों से ओतप्रोत हैं जिनसे वह अलौकिक और दिव्यात्मा बनते हैं। यह श्लोक ...ऐश्वर्यस्य समग्रस्य शौर्यस्य यशसः श्रियः।। ज्ञानवैराग्य योश्चैव शश्णं भग इतीरणा।। यानी संपूर्ण ऐश्वर्य, शौर्य, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य–ये छह गुण 'भग' के कहे गए हैं। इसी 'भग' से 'भगवान्' शब्द बना हुआ है।

संत तुलसी ने व्यक्ति, परिवार, समाज, देश और विश्व स्तर पर मानव मूल्यों की महत्ता का वर्णन राम के माध्यम से किया है। एक संपूर्ण मानव राम, एक आदर्श मित्र राम, एक आदर्श पुत्र राम, एक आदर्श भाई राम, एक आदर्श पति राम, एक आदर्श शिष्य राम, एक पिता राम, एक आदर्श राजा राम और एक आदर्श साधक राम के रूप में तुलसी ने राम के गुणों का जो वर्णन किया है, वह प्रत्येक दृष्टि से सर्वोत्तम है।

सत्य मानव जीवन का आधार है। मानस में सत्य का प्रतिपादन पदे–पदे किया गया है। राम सत्य के अनुचर और सत्य के प्रतीक हैं। मानसकार कहते हैं– *धर्म न दूसर धर्म समाना, आगमनिगम पुरान बखाना।* (मानस 2–94–3) धर्म सभी सद्‌गुणों का मूल है। और धर्म का पालन बिना श्रद्धा के नहीं किया जा सकता। तुलसी कहते हैं– *श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई।* (मानस–7–89ख/2) तुलसी के मानव मूल्यों के वर्णन में धर्म को व्याख्यायित किया गया है। धर्म सब का आधार है। अयोध्याकांड में गुरु वशिष्ठ ने धर्म को सूत्र रूप में भरत को समझाने का प्रयास किया है– *सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना, तज निज धरमु बिषय लयलीना।।*

तुलसीदास ने राजा, पति, अतिथि, मित्र और नारी के धर्म सूत्र को भी समझाने का प्रयास विविध प्रकार से किया है। ....*सोचिअ नृपति जो नीति न जाना, जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना। सोचिअ बयसु कृपन धनवानु, जो न अतिथि सिव भगति सुजानू।* मानसकार आगे कहते हैं– *सोचिअ पति बंचक नारी, कुटिल कलहप्रिय इच्छाधारी।*

जिस धर्म(मानव मूल्य) की बात तुलसी मानस में करते हैं वह धर्म व्यक्ति, परिवार, समाज, देश और संपूर्ण मानव समाज का पालक है। रामचरितमानस में इसका अत्यंत व्यावहारिक वर्णन किया गया है–.... *सब विधि सोचिअ पर अपकारी, निज तनु पोषक निरदय भारी। सोचनीय सबही बिधि सोई, जो न छाड़ि छलु हरि जन होई।* (मानस 2–171–3 से 172, 4 तक) जिन मूल्यों की स्थापना के लिए संत तुलसी ने रामचरितमानस की रचना की वे मूल्य आज भी प्रासंगिक और उपयोगी हैं। ये मूल्य परिवार, समाज, देश–जाति में निभाए जाने वाले धर्म हैं। एक उदाहरण स्त्री का धर्म राम की दृष्टि में क्या है, मानस की निम्न पंक्तियों में.... *एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा, सादर सास–ससुर पद पूजा।* (मानस–2–60/3) इसी प्रकार राजनीति के मूल्य यानी राजधर्म का वर्णन मानस में इस प्रकार किया गया है– *राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा*।(मानस 3–20–8) राजनीति बिना धर्म के पंगु और लूली है। वह बिना धर्म के गूँगी और अंधी है। धर्म अर्थात् मूल्य सभी वर्गों के लिए अनिवार्य है। महाभारत में वेदव्यास कहते हैं– *धारणाद् धर्म मित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः।* धर्म को जो धारण करता है धर्म उसे धारण करता है। कहने का भाव यह है कि जिसका जीवन धर्म से संपृक्त है उसका जीवन सफल हो जाता है। मानसकार कहते हैं– *राज कि रहइ नीति बिनु जानें।* यह है राजनीति में मूल्यों के महत्व की सार्थकता। तुलसी कहते हैं– जीवन मूल्य, समाज मूल्य और मानव मूल्य की स्थापना के बिना एक आदर्श, सर्वोत्तम और सुखी समाज की स्थापना नहीं की जा सकती। जिस मानव की चेतना

जागृत रहती है वह कभी पतित नहीं हो सकता। मानस में इसका पग–पग पर वर्णन किया गया है। राम के प्रति अनन्य प्रेम रखने वाला मानव कभी युग–धर्म से प्रभावित नहीं होता है। क्योंकि राम का जीवन चरित युग–धर्म की द्वंद्वात्मक विशृंख्लताओं से पूरी तरह रहित है। *काल धर्म नाहिं व्यापहिं ताही, रघुपति चरन प्रीति अति जाही।* (मानस–7–103/4) मानस में युगानुरूप धर्म के चार चरणों का वर्णन किया गया है। वे हैं,–सत्य, दया, तप और दान। इन चार चरणों की व्याख्या मानस मर्मज्ञ अपनी सुविधानुसार करते हैं। लेकिन मेरा चिंतन कहता है कि ये मानव को संपूर्णता दिलाने वाले मूल्य हैं जिसकी आवश्यकता प्रत्येक युग में प्रत्येक मानव को होती है। रामराज में इन चारों चरणों की विद्यमानता थी। इसलिए रामराज को स्वर्ग का राज कहा जाता है जहाँ निवास करने के लिए देवता भी आतुर रहते हैं। मानस की ये पंक्तियाँ.. *प्रकट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान। जेन केन बिधि दीन्हे, दान करइ कल्यान।* (मानस–7–103ख)

मानव मूल्यों की स्थापना करने के लिए प्रत्येक युग में राम जैसे युगपुरुष जन्म लेते हैं। वह चाहे राम हों, कृष्ण हों या दयानंद हों। *जब जब होइ धरम कै हानी, बाढ़हि असुर अधम अभिमानी। तब–तब प्रभु धरि विविध शरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।* (मानस–1–120घ/3–4) धर्म की स्थापना मानव मात्र के कल्याण के लिए होती है। इसे मूल्य दर्शन में हम इस प्रकार कह सकते हैं– मूल्य मानव जीवन के आधार हैं। जिस प्रकार से बिना नींव के कोई भवन निर्मित नहीं हो सकता। उसी प्रकार से बिना मानव मूल्य के मानव–रूपी भवन का निर्माण भी नहीं हो सकता है। धर्म के पालन यानी मूल्यों के ग्रहण करने से मानव के सभी तरह के दुख, विसंगति, शोक, प्रमाद, क्रोध, हिंसा करने की प्रवृति, अज्ञानता, विशाद और अति काम की प्रवृति का नाश हो जाता है। मानसकार कहते हैं– *धरम तें बिरति जोग तें ज्ञाना, ज्ञान मोच्छप्रद वेद बखाना* (मानस–3–15/1) धर्म का पालन करने वाले लाखों में कोई एक होता है इसी प्रकार मूल्यों को जीवन का आधार बनाने वाला भी कोई एक होता है। राम उन लाखों मानवों में से एक हैं जिन्होंने धर्म का सम्यक् पालन किया। जिनका सारा जीवन ही धर्ममय है। मूल्य जिनके जीवन के आभूषण हैं। मानसकार कहते हैं– *नर सहस्त्र में सुनहु पुरारी, कोउ एक होइ धर्म व्रत धारी।* (मानस–7–53/1) मानव मन के आदर्श, मर्यादा, नियम, संयम और मूल्य मानस की विशेषताएँ हैं। रामचरितमानस में जिस राम को अवतारी बताने के लिए तुलसी ने अपनी ओर से अनेक अलंकारों, व्यंजनाओं, रूपकों, मिथकों और प्रतीकों का सहारा लिया वे कहीं न कहीं मानव मूल्य से जुड़ते हैं। 'रामचरितमानस' का स्वाध्याय करते हुए हमारी चेतना यदि खुली हुई है तो हम निश्चित ही राम को ईश्वर नहीं अपितु एक आदर्श मानव समाज का युगीन चेतना का सर्वोच्च मानव के रूप में देख सकेंगे।

मानव के विभिन्न व्यवहारों, संबंधों, भावों और मर्यादाओं में धर्म अर्थात् मूल्य का स्थान सर्वोपरि है। मूल्यों से रहित कोई भी व्यवहार, संबंध, भाव और मर्यादा निर्मित नहीं हो सकते हैं। उदाहरण के रूप में मैत्री तभी निभाई जा सकती है जब मित्रता के मूल्य यानी धर्म को सत्यता के साथ निभाया जा सके। ...*जे न मित्र दुख होहि दुखारी, तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी।*

विपत्ति काल में जो निष्ठा के साथ मित्रता का निर्वहन करे वही सच्चा मित्र है। राम ने सुग्रीव, हनुमान, विभीषण, अंगद आदि के साथ इस मित्रता का सम्यक् निर्वहन किया था। ....*बिपत्ति काल कर सतगुन नेहा, श्रुति कह संत मित्र गुन ऐहा।।* (मानस–4–6/1–3) धर्म सगे– संबंधों, मर्यादाओं और व्यवहारों को ही नहीं व्याख्यायित करता अपितु जीवन की समग्रता को भी व्याख्यायित करता है। पुत्र धर्म का जैसा निर्वाह मानस में वर्णित है वैसा विश्व के अन्य किसी ग्रंथ में नहीं है। तुलसी कहते हैं पितु–आज्ञा सभी धर्मों में सर्वोच्च है। राम ने माता–पिता की आज्ञा का निर्वाह जिस प्रकार किया वह अन्य कहीं नहीं मिलता। *पितु आयसु सब धरमक टीका* (मानस–2–54/4) मानस की यह प्रसिद्ध पंक्ति..*जो पितु मातु कहेउ बन जाना, तो कानन सत अवध समाना*। (2–55/1) अपने

अग्रजों के साथ यथायोग्य व्यवहार जैसा राम के जीवन में दिखलाई पड़ता है वैसा अन्य किसी भी के जीवन में नहीं दिखाई पड़ता। यह मानव मूल्यों के प्रति आदर के कारण है। इसी को स्वधर्म पालन करना भी कहा जाता है। तुलसी कहते हैं राम धर्म के अवतार हैं। उनका जीवन धर्म की रक्षा के लिए ही हुआ है। धर्म जीवन का हेतु है। इसलिए अधर्म का नाश करना धर्म के पालन के लिए अति आवश्यक है। *–मातु पिता गुरु स्वामि निदेसू, सकल धरम धरनी धर सेसू।* (मानस–2–305/1) भ्रातृधर्म का निर्वाह मानस में राम को लेकर ही नहीं दिखलाया गया है अपितु भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और अन्य अनेक भाइयों के व्यवहारों में मिलता है। हम मानस में मानव मूल्य की व्याख्याओं को धर्म के रूप में देखते हैं। यहाँ शब्दों का मात्र परिवर्तन भर है। मानस में मानव मूल्यों को प्रत्येक स्थान पर 'धर्म' शब्द से अविहित किया गया है। गुरु वशिष्ठ ने मानस में धर्म विषयक अग्रलिखित तीन बातों का उल्लेख किया है– 1–धर्म को समझना, 2–समझने के पश्चात् वाणी के द्वारा उसके विषय में कुछ कहना, 3–जो समझा और कहा, उसे अपने जीवन में उतारना। राम के अतिरिक्त ये तीनों बातें भरत में भी दृष्टव्य होती हैं– *समुझब, कहब, करब तुम सोई, धरम सार जग होइहि सोई।* (मानस–2–3–22/1) एक अन्य स्थान पर धर्म और भरत को पर्याय बताते हुए तुलसी कहते हैं– *जो न होइ जग जनम भरत को, सकल धर्म धुरि धरनि जगत को।*

(मानस– 2–232/1)

प्रभु की अनुकंपा जिसके ऊपर हो जाती है उसका इहलौकिक और पारलौकिक दोनों का सुधार हो जाता है। यदि मानव मन, वचन और कर्म से छल छोड़कर सच्चाई का मार्ग अपना ले तो उसे प्रभु का आशीर्वाद मिल जाता है। फिर उसे सांसारिक उपचार करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। *–करम बचन मन छाड़ि छल, जब लगि जनु न तुम्हार। तब लगि सुख सपनेहुँ नहीं, किए कोटि उपचार।।* (मा. 2–107) प्रभु के प्रेम में पागल होकर जो मानव आनंद में रत हो जाता है, और मन, वचन व कर्म से जो आनंद के लिए प्यासा हो जाता है उसके लिए सामान्य दिनचर्या में किसी प्रकार की कलह और शोक का कोई स्थान नहीं होता है।

जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव को मिले संस्कारों के अनुसार जो जीवन व्यतीत करता है वह सब के लिए आदर्श बन जाता है। मानस में राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चारों भाइयों को मिले संस्कारों और उनके प्रभावों के संबंध में तुलसीदास बहुत भावपूर्ण शब्दों में वर्णन करते हैं। राम को राम और भरत को भरत बनाने वाले उनके संस्कारों ने उन्हें धरती पर हमेशा के लिए अमर बना दिया। जो मरणधर्मा मानव अपने कर्मों और जाति के कारण इस संसार में मृत्यु के भवपाश से नहीं बच पाता वे कर्म और जाति ही उसे कैसे 'अमरता' दिला सकते हैं? इसे राम, भरत सहित अनेक अमरणधर्मा मानवों को देखकर हम समझ सकते हैं। संस्कारों के कारण ही जल की एक बूँद सीप के संपर्क में आकर मोती बनती है और धूल के संपर्क में आकर कीचड़ में बदल जाती है। कहने का भाव यह है कि मानव को सच्चे अर्थों में मानव बनाने वाले संस्कार ही होते हैं। वेद पढ़ने वाला 'ब्राह्मण' बन जाता है और विद्या से हीन व्यक्ति शूद्र कोटि में गिना जाता है। संत तुलसीदास कहते हैं– *गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा/कीचहिं मिलइ नीच जलसंगा। साधु असाधु सदन सुक सारीं/सुमिरहिं राम देहि गनिगारीं।*

संगति, विद्या, शिक्षा, अनुभव और चिंतन मानव को जहाँ सद्चरित्र मानव बनाते हैं वहीं पर उसे मोक्ष का अधिकारी भी बनाते हैं। श्रीराम का जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक परम पावन रहा। काम, क्रोध, मद, लोभ और मत्सर उन्हें कभी सताए ही नहीं। ऐसे विलक्षण महामानव में मानव के सभी मूल्यों का होना निश्चित ही उन्हें वंदनीय और अभिनंदनीय बनाता है। मानसकार कहते हैं– *संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ। कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ।* (मा. उत्तरकांड 33) परमानंद की अनुकंपा से मानव अपनी उत्कृष्टता और परम लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होता है। लेकिन प्रभु कृपा मिले कैसे यह एक बड़ा प्रश्न है? मेरा चिंतन कहता है जिस प्रकार से सूर्य की

रश्मियों का लाभ लेने के लिए हमें घर से बाहर निकलना होता है और मनोवेग से सूर्यदेव की अनुकंपा से हम तृप्त हो जाते हैं उसी प्रकार से परमानंद की अनुकंपा प्राप्त करने के लिए हमें अपनी छुद्र ऐषणाओं और वासनाओं से बाहर निकलकर उसको प्राप्त करने के लिए निरंतर साधना करनी चाहिए। मन में पवित्रता, शुभता, सत्यता, करुणा, अत्यंत जिज्ञासा और छटपटाहट जैसी स्थिति बन जाए तो समझो बेड़ा पार हो गया। हम धन, पुत्र, माता–पिता, सहोदर और अन्य स्वार्थ से बँधे संबंधियों के लिए तो रोते–गाते हैं लेकिन क्या कभी पवित्र भावना से अत्यंत छटपटाहट के साथ ईश्वर को प्राप्त करने के लिए रोते–गाते हैं? जिस दिन हममें ऐसी स्थिति आ जाएगी उस दिन हम ईश्वर के हो जाएँगे और ईश्वर हमारा हो जाएगा। तुलसीदास मानस में कहते हैं– *परमानंद कृपायतन न परिपूरन काम। प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम।।* (मा. उत्तरकांड 34) यह है मूल्यों का प्रभाव। जिसे हम पढ़–लिखकर भी आजीवन नहीं समझ पाते।

आज के भौतिकवादी युग में जहाँ सब कुछ धन बल और पद बल से तय होता है। जहाँ सारे संबंध बाजार से तय होने लगे हैं ऐसे में 'रामचरितमानस' का मूल्यवाद नई आशा की किरण लेकर आता है। मानस का मूल्यवाद यानी मानव मूल्यों की स्थापना का कार्य समाज, धर्म, संस्कृति, अध्यात्म, देश और मानव जाति के लिए अत्यंत लाभकारी है। लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि हमारी दृष्टि, विचार और कार्य पवित्र और परमार्थ से भरे हों। तुलसी कहते हैं– *पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद। ते नर पाँवर पापमय देह धरे मनुजाद।।* (मा. उत्तरकांड 39) मानसकार एक ओर मानव को सावधान करते जाते हैं तो दूसरी ओर राम के उज्ज्वल और सर्वश्रेष्ठ चरित्र को दिखलाते जाते हैं। यानी बुराई से सावधान करते हुए अच्छाई की ओर निरंतर आगे बढ़ते जाने के लिए हमें प्रेरित करते हैं। मानसकार की ये प्रेरक पंक्तियाँ –*सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक। गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक।।* (मा. उत्तरकांड 49)

मानस में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की विवेचना जिस भाव और प्रेरणा के साथ हुई है वह प्रत्येक मानस–प्रेमी को उसका दीवाना बना देती है। मूल्यों की स्थापना इन चारों पुरुषार्थों के साथ ही हुई है। आज वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के युग में जहाँ बाजार जीवन, परिवार, समाज और संस्कृति की प्रत्येक धड़कन में व्याप्त हो चुका है ऐसे में 'रामचरितमानस' का मानव मूल्यों की स्थापना का कार्य विश्व कल्याण के लिए एक वरदान के समान है। आइए, हम जीवन को मूल्यों से संपृक्त कर लें और गिरती मानवता को संभालकर उसे नया जीवनदान देने में स्वयं को समर्पित करने के लिए संकल्पित हो जाएँ।

– ए–11, त्यागी विहार, नांगलोई, दिल्ली–110041

❑❑❑

रहीम के राम

हरींद्र कुमार

भारतीय गंगा–जमुनी संस्कृति के उन्नायक मुस्लिम कवियों में रहीम का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। हिंदी के अतिरिक्त रहीम तुर्की, फ़ारसी, अरबी और संस्कृत के भी जानकार थे। उनकी गणना भाषा विषयक जानकारी के कारण सर्वोच्च स्थान पर की जाती है। रहीम ने कुछ श्लोक संस्कृत में भी लिखे हैं। वह प्रामाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता कि जो श्लोक रहीम के नाम से प्रसिद्ध हैं वे रहीम रचित ही हैं, किंतु जनश्रुति ने उन्हें अब रहीम–रचित बना दिया है। डॉ. विमल चौधरी की 'कंट्रीब्यूशन ऑफ मुस्लिम्स टू संस्कृत लर्निंग' पुस्तक में रहीम का संस्कृत ज्ञान और उनकी वैष्णव भावना को द्योतित करने वाले केवल एक श्लोक को उद्धरित किया जा रहा है। यह श्लोक भक्तिभाव से परिपूर्ण है–

रत्नाकरोऽस्ति सदनं गृहिणीच पदमा किं
देयमस्ति भवते जग्गदीशरण।
राधागृहित मनसे मनसेचतुभ्यं दत्तंमया
निजमनस्तदिदंगृहण।।[1]

अर्थात् हे विष्णु भगवान, आपका निवास स्थान तो रत्नों का आकार रत्नाकर है, आपकी पत्नी एक लक्ष्मी हैं, मैं अंकिचन आपको क्या भेंट करूँ? हाँ, एक ही वस्तु आपके पास नहीं है, आपका मन। आपका मन तो राधा ने हरण कर लिया है, अतः मैं अपना हृदय आपको समर्पित करता हूँ, कृपापूर्वक इसे स्वीकार कीजिए।

रहीम के भक्ति विषयक दोहों ने प्रचुर मात्रा में 'गागर में सागर' भर दिया है। उनके दोहों से स्पष्ट होता है कि उन्होंने भारतीय संस्कृति के आधार ग्रंथों का गहन और गंभीर अध्ययन किया है। उन्होंने भारतीय देवी–देवताओं में अगाध आस्था अपने काव्य–संसार में प्रकट की है–

अच्युत चरन तरंगिणी, शिव सिर मालति माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो दंइव भाल।।[2]

अर्थात् हे माँ गंगा! आप श्री हरि विष्णु के चरणों को पखारती हैं और शिवजी के मस्तक पर मालती के फूलों की तरह सुशोभित रहती हैं। जब आप मेरी मुक्ति करें तो देवलोक में मुझे हरि मत बनाना, जिससे कि मैं आपको अपने सिर पर धारण कर सकूँ।

रहीम राम की शरण लेने में विश्वास करते हैं। राम ही भवसागर की नाव हैं, जो माया–मोह के क्षणिक भौतिक संसार से छुटकारा दिला सकती है। इसके अतिरिक्त मुक्ति का कोई और उपाय नहीं–

गहि सरनागत राम की, भवसागर की नाव।
रहीमन जगत उधार कर, और न कछु उपाव।।[3]

रहीम कर्मवादी भी है और नियतिवादी भी। भगवान राम के प्रसंग में उन्होंने 'नियति' के संदर्भ का उल्लेख किया कि अगर भविष्य पढ़ना भगवान राम के हाथ में होता तो वे न माया मृग के पीछे जाते, न सीता का हरण होता अर्थात् 'होनी' को कोई नहीं टाल सकता–

जो रहीम भावी कतहुँ, होति अपने हाथ।
राम न जाते हरिन संग, सीय न रावण साथ।।[4]

राम की भक्ति 'राममय' विश्वास में उनकी गहन आस्था थी। उनका कहना था दीन–हीन लोग कुछ पाने की चाह में सबकी ओर देखते हैं, लेकिन उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देता। जो दीन–दुखियों के दुःख दूर करता है, उनकी सहायता करता है, वह साक्षात रघुवीर अर्थात् प्रभु हैं–

दुःख नर सुनि हाँसी करैं, धरत रहीम न धीर।
कही सुनै सुनि सुनि करै, ऐसे वे रघुवीर।।[5]

रहीम ने पौराणिक कथाओं को अपने काव्य में बारीकी से पिरोया है–

बड़े दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती, कहुँ रहीम पहिचानि।।[6]

अर्थात् बड़े लोग दीन–दुखियों के दुःख देखकर करुणा से भर जाते हैं और तुरंत उनकी सहायता हेतु तत्पर हो जाते हैं। मगरमच्छ की जकड़ में फँसे हाथी से भगवान विष्णु की कौन–सी जान पहचान थी, लेकिन उसकी पुकार सुनते ही वे सहायता के लिए दौड़े चले आए। बड़ों की यही विशेषता है। वे प्राणिमात्र के दुख में द्रवित हो जाते हैं। इस दोहे में रहीम का विश्वास है कि यदि कुछ माँगना हैं तो रघुनाथ से माँगो। उनका कहना है कि माँगने पर किसने.... नहीं किया, किसने साथ नहीं छोड़ा? अर्थात् सबने इनकार किया और साथ छोड़ दिया। लेकिन एकमात्र भगवान राम ही हैं, जो याचक को देखकर प्रसन्न होते हैं और उनकी सभी कामनाएँ पूरी कर देते हैं–

माँगे मुकरि न को गयो, केहि न त्यागियों साथ।
माँगत आगे सुख लह्यो, ते रहीम रघुनाथ।।[7]

रहीम ने दैन्य भाव से राम की स्तुति की। उन्होंने राम को एकमात्र उद्धार करने वाला बताया। राम का स्मरण करते हुए रहीम कहते हैं– हे प्रभु राम! आपने गौतम मुनि की पाषाण–पत्नी अहिल्या का उद्धार किया, आपने पशु स्वभाव वानर सेना और निषाद राज निम्नजाति का गुहय कल्याण किया, जो जन्म से चांडाल था। मुझमें ये तीनों अवगुण बसे हैं। मेरा हृदय पत्थर सदृश है, भजन –पूजन मुझे आता नहीं है, इसलिए पशु स्वभावी और कर्मों से चांडाल हूँ। अतः एकमात्र आप ही हैं जो मेरा उद्धार कर सकते हैं–

मुनि नारी पाषान ही, कपि पसु गुह मातंग।
तीनों तारे राम जू, तीनों मेरे अंग।।[8]

रहीम ने इन पौराणिक संदर्भों के माध्यम से राम के स्वभाव की सामाजिक समरसता का उल्लेख किया है।

रहीम ने 'राम' को भवसागर से पार पाने का अचूक अस्त्र माना है। उनके अनुसार यदि भूल से भी कोई राम नाम का सुमिरन कर लेता है तो उसका कल्याण हो जाता है, फिर चाहे वह काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों से ही ग्रस्त क्यों न हो–

रहीमन धोखे भाव से, मुख से निकले राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक कौ धाम।।[9]

रहीम सच्ची भावना से राम–नाम के चिंतन, स्मरण, भजन और मनन पर विश्वास करते हैं। उनका मानना है कि जो झूठी पदवी धारणा कर लोगों को त्रास देता आया हो, समझो उसने जीवन व्यर्थ गँवा दिया। सच्चा भगवद–स्मरण भवसागर से पार कर देता है–

राम नाम जान्यौ नहीं, जान्यो सदा उपाधि।
कहि रहिम तिहि आपनी, जनम गँवायो बादि।। [10]

रहीम ने राम की भक्ति भाव भरी रचनाएँ की तथा तत्कालिक अन्य कवियों को दान देकर, सुरक्षा सहायता प्रदान कर भक्ति काव्य की रचनाएँ कराई। रहीम और तुलसी में मित्रता थी। रहीम ने लोक प्रचलित बरवै छंद में रचनाएँ की और वे गोस्वामी तुलसीदास जी के पास भेजी। तुलसी ने उनसे प्रभावित होकर 'बरवै रामायण' की रचना की थी[11]–

कवि रहीम बिरवै रचे भेजे मुनिवर पास।
लखि तेहि सुंदर छंद में रचना कीन प्रकास।।

गोस्वामी तुलसीदास की 'रामचरितमानस' के पहले प्रशंसक कवि रहीम ही हैं– उन्होंने 'रामचरितमानस' को पढ़ा और भावपूर्ण शब्दों में कहा–

रामचरितमानस विमल संतनुजीवनप्रान।
हिंदुआन कहं वेद समयवनहि प्रकट कुरान।।

रहीम ने हिंदू धर्म की अनेक आस्थाओं, अंतकथाओं को आत्मसात् करके अत्यंत प्रभावी

रूप से अपने काव्य में प्रकट किया है। अतः इस्लाम धर्म के गूढ़ रहस्य के वेत्ता होने के साथ वे हिंदू धर्म के भी पूरे जानकार थे। हिंदू देवी देवताओं स्वरूप–बोध के साथ उनके प्रभाव और पूजा–पद्धति से परिचित थे। इसी कारण रामायण और महाभारत के साथ पौराणिक मिथकीय संदर्भों का उन्होंने घटना सहित अपने काव्य में उपयोग किया है। यह उनकी वैयक्तिक जीवन दृष्टि है, किसी का अंधानुकरण नहीं।[12]

रहीम ने एकता और भ्रातृत्व भावना का प्रसार किया। ईर्ष्या–द्वेष, फूट–अलगाव, वैर–विरोध की भावनाओं से प्रताड़ित वर्तमान भारत के लिए कवि रहीम के 'राममय' विचार सार्थक हैं। रहीम का यह प्रेम हिंदू–मुसलमान को जोड़ता है, तोड़ता नहीं। कविता की एक सांस्कृतिक विचार प्रक्रिया इसी अर्थ में है कि वह सभ्यता–संस्कृति में उच्चतर भावों की महत्ता प्रतिष्ठित करती है। रहीम का काव्य–सृजन आज भी भारतीय परंपरा की मूल्यवान धरोहर है। रहीम के रामायण चित्र का यह गंगा संस्कार उजली भारतीयता है जिसमें छलावा और दिखावा नहीं अपितु गहन निरीक्षण और पर्यवेक्षण है। यही सर्जनात्मकता ही दिशा–दृष्टि बनकर निरपेक्ष को सापेक्ष बना सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रहीम, विजयेंद्र स्नातक
2. वही, पृष्ठ 54
3. रहीम, विजयेंद्र स्नातक, पृष्ठ 54
4. रहीम, विजयेंद्र स्नातक, पृष्ठ 56
5. रहीम दोहावली, संपा. वाग्देव, पृष्ठ 59
6. रहीम, विजयेंद्र स्नातक, पृष्ठ 58
7. रहीम दोहावली, संपा. वाग्देव, पृष्ठ 71
8. रहीम, विजयेंद्र स्नातक, पृष्ठ 58
9. रहीम दोहावली – संपा. वाग्देव, पृष्ठ 83
10. वही, पृष्ठ 91
11. रहीम, विजयेंद्र स्नातक, पृष्ठ 30
12. रहीम, विजयेंद्र स्नातक, पृष्ठ 75

– एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

राम काव्य परंपरा का परम महाकाव्य
रघुवंश शिरोमणि श्रीराम

डॉ. नरेश मिश्र

भारतीय संस्कृति के उपासक और मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के आराधक प्रवासी महाकवि प्रो. हरिशंकर 'आदेश' की लगभग 350 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें 8 महाकाव्य, 10 सप्तशतियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। श्रीराम साहित्य से संबंधित 'ललित गीत रामायण', 'गीत रामायण' और 'रघुवंश शिरोमणि श्रीराम' तीन महाकाव्य के साथ 'श्रीराम बोलिए' और 'श्रीराम के गीत' आदि काव्य–संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'निषाद कुमार', अशोक वाटिका' और 'शबरी' नाटक हिंदी और अंग्रेजी में प्रकाशित होकर त्रिनिदाद, कनाडा और अमरीका के रंगमंच पर कई बार प्रस्तुत हो चुके हैं।

संगीताचार्य प्रो. आदेश ने अपने आराध्य श्रीराम का अनुध्यान करने के लिए रामचरितमानस के सभी कांडों पर 'श्रीराम बोलिए', 'श्रीराम जयराम', 'हे राम त्राहिमाम', 'राम नाम अति प्यारा', 'नित राम नाम गाओ' और 'यह तन एक अयोध्या नगरी' आदि के संगीतात्मक प्रवचन के वीडियो और ऑडिओ वैदेशिक परिवेश में विशेष लोकप्रिय हैं।

साहित्यकार के सृजन में उसके संस्कार और चिंतन की विशेष भूमिका होती है। सरस्वती के उपासक प्रो. आदेश ने 'रघुवंश शिरोमणि श्रीराम' की रचना के लिए विभिन्न भाषाओं के पौराणिक और आधुनिक रामकाव्यों का गहन अध्ययन किया। उन्होंने पुस्तक के पुरोवाक् में स्वयं लिखा है–

"श्रुति साहित्य के विस्तृत प्रांगण में विचरण कर उपनिषदों का गहन अध्ययन करने के साथ पुराणों की प्रायः विरोधाभाषी संकरी पगडंडियों पर चलते हुए कभी–कभी विवेक तथा तर्क शक्ति लहूलुहान हुई।.... अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत के वाद–विवादों में उलझा। इस प्रकार समय तथा अवस्था के साथ भारतीय तथा अन्य दर्शनों की दीर्घ एवं संकीर्ण बीथियों में द्रुत, मध्यम एवं विलंबित लय में चलते हुए मेरी मति ईश्वर, जीव तथा प्रकृति की शाश्वतत्रयी पर जाकर स्थिर हो गई।"

— रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 25

इस परम महाकाव्य की रचना की परम प्रेरणा अयोध्या के पावन और मधुर परिवेश में मिली। व्यास जी द्वारा अयोध्या में आयोजित प्रथम अंतरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन में सहृदय महाकवि प्रो. आदेश पधारे थे। 27 नवंबर, 1984 को सम्मेलन की समाप्ति पर लगभग सभी प्रतिनिधि निकल चुके थे। आगे का अनुप्रेरक संदर्भ उन्होंने स्वयं लिखा है–

"मैं उतरने के लिए सीढ़ियों के समीप पहुँचा ही था। ...... एक सुगठित और बलिष्ठ शरीरवाले 'लंबे–तगड़े' गौर विप्र महोदय मेरी ओर देखकर मुस्कुरा रहे थे। मेरी लंबाई छह फुट है। वे मुझसे कम से कम एक फुट अधिक लंबे थे। मुझे शीश उठाकर उन्हें देखना पड़ा था। गौर वर्ण था, तिलक जनेऊ आदि द्रष्टव्य था। ...... मेरे प्रथम नाम केवल 'हरिशंकर' कहकर संबोधित किया। उन्होंने कहा 'तुम्हें वेस्टइंडीज, अमेरिकीय देशों में सरकार (श्रीराम) ने किसी विशेष उद्देश्य से भेजा है। तुम कवि हो, श्रीराम जी के परम भक्त हो, संगीतकार हो, तुम

श्रीराम जी की गाथा लिखो! मेरा आशीर्वाद है।" जब मैंने उस तपस्वी को दक्षिणा देने के लिए जेब में हाथ डाला और उनकी ओर देखा, वे गायब हो चुके थे। मैंने इस घटना को व्यास जी से और वाल्मीकि भवन के महंत नृत्यगोपालदास को बताया, तो हनुमान जी के दर्शन देने की बात पक्की कर दी। 'रघुवंश शिरोमणि श्रीराम' श्री हनुमान जी ही ने लिखवाया है। रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पुरोवाक्, पृ. 29

प्रो. आदेश की सृजनशीलता, संघर्षशीलता से स्पष्ट होता है कि उन पर आराध्य श्रीराम की कृपा और हनुमान का वरदहस्त उनमें साहस और शक्ति का संचार करता रहा है, अन्यथा ऐसे महाकाव्य की रचना के तेरह वर्षों में दो बार डॉक्टरों ने कुछ घंटों के मेहमान होने की घोषणा कर दी थी। दिसंबर, 2012 में फ्लोरिडा हास्पिटल आर्लैंडो, अमरीका में दीर्घ मूर्छा के बाद मृत घोषित कर दिया था। इस अवस्था में उनके पुत्र श्री विवेक अपने घर ले गए थे। परिजनों की सेवा से उन्हें पुनर्जीवन मिला है। उनका सृजन धर्म पुनः गतिशील हुआ। त्रिनिदाद में मार्च, 2018 में उनकी तबीयत पुनः बिगड़ गई। सदर्न मेडिकल नर्सिंग होम में भर्ती किया गया। दुर्भाग्य यहाँ भी उन्हें कुछ घंटों का मेहमान घोषित कर दिया गया। महाकाव्य की संपन्नता के प्रयास में उन्होंने लिखा है—

"तब पुनः गुरु रूपी हनुमान जी की कृपा, पुत्र विवेक एवं परिवार के कारण अभी जीवित हूँ। हाँ, दूसरी बात है कि मुझे गृह पर ही इंसेंटिव केयर यूनिट (आई.सी.यू.) बनाकर विशेष कक्ष में रखा गया है।"

— रघुवंश शिरोमणि श्रीराम पुरोवाक्, पृ. 33

इस प्रकार प्रो. आदेश अपने भारतीय विद्या संस्थान के एक कक्ष (गहन चिकित्सा कक्ष) में डॉक्टरों की देख—रेख में महाकाव्य को पूरा करते रहे हैं। जहाँ पहुँचकर लोग साँस चलती रहे, भगवान से प्रर्थना करते हैं, वहाँ परम महाकाव्य का सृजन हुआ है। 15 अक्तूबर, 2018 को इस महाकाव्य का त्रिनिदाद के विशाल सभागार में भव्य लोकार्पण हुआ। उस समय मैं वहीं उनके पास था। लोकार्पण के पूर्व उनकी तबीयत बिगड़ गई। लोकार्पण एक घंटे विलंब से प्रारंभ हुआ, जब उनके स्वास्थ्य में सुधार हुआ, तो व्हील चेयर पर बैठे लिफ्ट से सभागार में पहुँचे थे। अभिनंदनीय थी उनकी जिजीविषा, वहाँ वे पौन घंटा धारा—प्रवाह बोले। श्रोताओं में खुशी की लहर दौड़ रही थी। सभागार रह—रहकर तालियों से गूँज उठता था। गैस की नली नाक में लगी होने पर भी लगता ही नहीं था वे बीमार हैं। यही श्रीराम के भक्त के सृजनधर्म की पहचान है।

प्रवासी महाकवि प्रो. आदेश ने जीवन में पल—पल संघर्ष करते अकल्पनीय 18 सर्गों, 1800 पृष्ठों के 1800 छंदों में परम महाकाव्य 'रघुवंश शिरोमणि श्रीराम' की रचना की है। इसमें दिव्य पौराणिक संदर्भ को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का अनुप्रेरक प्रयास किया गया है। महाकाव्य की संरचना के अनुसार सरस्वती की वंदना से मंगलाचरण प्रारंभ किया गया है—

देवि! लेखनी नव ऊर्जा से भर दो!
माँ सरस्वती! वर दो! वर दो! वर दो!
+ \+ \+
अघ का हो विनाश, जड़ता का क्षय हो,
युग संचित पुण्यों का पूर्ण उदय हो,
दे चेतना दान, निष्क्रियता हर लो। (गीत)

— रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 63

इसके पश्चात् महाकवि ने गणपति, गुरुदेव, शिव आदि की अर्चना करने के बाद धर्म—स्थल, मूर्ति—भवन निर्माता को नमन किया—

जो धर्म स्थलों का करे सृजन
उस शिल्पकार को है प्रणाम,
जो गढ़े मूर्तियाँ अदृश्य की
उस मूर्तिकार को है प्रणाम। (प्रगति छंद)

— रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 70

भक्ति भाव में डूबे सहृदय कवि के मन में आराध्य की छाया उन्हें सतत आनंदित करती रही है। यही कारण है कि उन्हें प्रत्येक नारी—नर में सीता और राम के रूप दिखाई देते थे —

हर नारी में सीता देखी,
हर नर में राम रूप देखा।
अवनि अंबर, अवनि तल में,
जो भी देखा अनूप देखा।। (प्रगति छंद)

– रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 67

भारत बहुभाषी देश है। भाषा भावाभिव्यक्ति का साधन है। वे मधुर भाषा प्रयोग के अभिलाषी हैं। उन्होंने समस्त भारतीय भाषाओं को नमन करते हुए रामकाव्य रचना की आधार भाषाओं का विनयावनत भाव से अभिवादन किया है। उनका दृढ़ विश्वास है कि राम गाथा जन मन के लिए दिग्दर्शक और आनंददायक होती है–

संस्कृत हिंदी सिंधी उर्दू
बंगला तमलादिक को प्रणाम।
जिसमें भी राम कथा अंकित
उस पावन भाषा को प्रणाम।। (प्रगति छंद)

– रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 70

महाकाव्य में समाज की महत्वपूर्ण इकाई परिवार का मन भावन चित्रांकन किया गया है। श्रीराम– सीता, लक्ष्मण–उर्मिला, भरत–मांडवी और शत्रुघ्न–श्रुतिकीर्ति के साथ चारों के दो–दो संततियों से अयोध्या का परिवेश मधुऋतु के पुष्पों से सुरभित दिखाई देता है। यहाँ स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है कि सहजता और विनम्रता विषम से विषम और जटिल से जटिल समस्या को सरल कर देने में समर्थ होती है। सीता स्वयंवर में श्रीराम के द्वारा धनु–भंग करने से परशुराम क्रोध में अंगारे उगलने लगे हैं–

देख के कोदंड शिव का खंड–खंड पड़ा,
आया रोष–पारावार में अपार ज्वार था।
+ + +
करूँ मैं शिरोच्छेदन परसु से इसी क्षण,
काल आ गया है आज उसके संहार का।।
(मनहरण कवित्त)

– रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 220

श्रीराम विनम्रता और मर्यादित स्वभाव से अपने को ऋषि परशुराम का दास सिद्ध कर उनकी क्षमता का गुणगान कर सामान्य ही नहीं करते हैं, वरन् प्रसन्न कर देते हैं। विनम्रता और सहजता से वस्तु स्थिति को स्पष्ट करना जीवन की सफलता का प्रेरक मार्ग है। यही संदर्भ सामने है–

क्रोध मत कीजिए प्रभु! ध्यान में बाधक होगा,
आपकी साधना में यह न सहायक होगा।
+ + +
आप हैं विप्र, क्षमा करना कर्त्तव्य है सदा.
दास पर रोष दिखाना, निरर्थक होगा।।
(हिंदी गजल)

– रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 220

महाकाव्य में कैकेयी को राग–द्वेष और मोह आदि के आरोपों से मुक्त करते हुए उन्हें विदुषी, युद्ध कला प्रवीण समादृत रूप में प्रस्तुत किया गया है। बचपन में सहेलियों के साथ खेलते–खेलते मूर्तिवत बैठे दुर्वाशा ऋषि के मुख पर कालिख लगा दिया था, जिसके परिणाम स्वरूप ऋषि ने उन्हें शाप दिया था कि अकारण अपमानित होना पड़ेगा। विधि का विधान ही था कि श्रीराम को वन जाना पड़ा, दुष्ट–दलन से मानव जाति का उपकार करना था।

महाकवि ने मातृशक्ति को विशेष आदर दिया है। जब श्रीराम के गुरु विश्वामित्र उन्हें क्रूर–कठोर ताड़का के वध का आदेश देते हैं, तो उनके मन का नारी–आदर भाव आंदोलित हो उठता है। वे गुरुवर के समक्ष ऐसा कर पाने की असमर्थता व्यक्त करते हैं–

वीर सत्पुरुष कभी न करते,
हैं नारी पर रंच प्रहार।
नारी तो सम्मान पात्र है,
करूँ किस तरह सर संधान। (वीर छंद)

– रधुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 177

ऋषिवर ने जब श्रीराम को ताड़का के वध के लिए नहीं, उसके उद्धार के लिए आदेश दिया, तो उन्होंने उसे पावन कृत्य समझकर उनके आदेश का पालन किया–

उचित तथा अनुचित मत सोचो,
करो शिष्य सम तुम व्यवहार।
शिरोधार्य कर मेरी आज्ञा,
करो ताड़का का उद्धार।। (वीर छंद)

– रधुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 177–178

'रघुवंश शिरोमणि श्रीराम' में ऐसे पावन अनुप्रेरक संदर्भ आद्योपांत मिलते हैं। काव्यात्मक रूप में ऐसी प्रस्तुति मानव मन को गतिशील रखने की बलवती प्रेरणा का स्रोत सिद्ध होती है। गौतम ऋषि के शाप से अहिल्या पाहन बन गई थी। जब ऋषि विश्वामित्र ने श्रीराम को पद–प्रहार के लिए

आदेश दिया, तो उन्होंने नत– मस्तक होकर अपनी असमर्थता व्यक्त की थी–

गुरुदेव! बताएँ किस प्रकार,
नारी पर पाद–प्रहार करूँ।
नारी बात दूर की नर के,
संग न यह व्यवहार करूँ।
हर नारी मातृ समान लगे,
कैसे उसका अपकार करूँ।। (त्रिभंगी छंद)

– रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ.191

ऋषि विश्वामित्र के आदेश से जैसे ही श्रीराम के चरण कमल का शिला से स्पर्श होता है वैसे ही अभिनंदन करती हुई अहिल्या सामने प्रस्तुत हो जाती हैं–

अक्षय अनूप ललाम
हे राम तुम्हें प्रणाम
+ + +
चरणों में करुणा धाम,
है कोटि–कोटि प्रणाम। (तोमर छंद)

– रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 191–92

श्रीराम के वन गमन के कुछ दिनों बाद भरत माता कैकेयी और अयोध्यावासियों को साथ लेकर उन्हें वापस अयोध्या लाने के लिए वन पहुँच जाते हैं। कैकेयी ने श्रीराम से कहा कि वह उनको देखे बिना जीवित नहीं रह सकेंगी। यह स्नेहिल पारिवारिक परिवेश भारतीय संस्कृति का आदर्श रूप बनकर सामने आया है। काव्यात्मक और लयात्मक रूप आनंद सागर की लहरों में गोते लगवा देता है। विधि के विधान से आई स्थिति से कैकेयी व्यथित है–

हे राम! मुझे ले संग चलो।
निज प्राणप्रिया माँ को न तजो।।
सब ही करते हैं घृणा मुझ से।
मुझको भी घृणा हुई निज से।।

(तोटक छंद)

– रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 364

श्रीराम माता कैकेयी के सम्मुख मन–भावन संकल्प लेकर उनको मानसिक तुष्टि देने का प्रयास करते हैं। माँ संतुष्ट होकर स्वयं भी राम के वनवास काल तक फलाहार पर रहने का संकल्प लेती है–

जब तक रहो विपिन में तुम सुत,
मैं भी अंतार्वास करूँगी।
नहीं करूँगी ग्रहण सन्न,
कर फलाहार उपवास करुँगी।।

(पादाकुलक छंद)

– रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 365

महाकाव्य का प्रत्येक पात्र हृदय से पावन और सहज दिखाई देता है। असुर वर्ग का बलशाली कुंभकर्ण जब विभीषण को श्रीराम के शिविर की ओर जाता देखता है, तो विह्वल होने पर भी राम की दिव्यता का अनुभव कर उसे भाग्यशाली समझता है–

धन्य, धन्य तुम धन्य विभीषण,
राम प्रेम तुमने है पाया।
माता–पिता जेष्ठ भ्राता ने,
तुमको श्रेष्ठ मार्ग बतलाया।।

(पादाकुलक छंद)

– रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 650

मंदोदरी के हृदय की पूत भाव– लहरें सहज जीवन जीने की अभिलाषी हैं। वह अपने लिए ही नहीं सर्वजन हिताय भाव की पुजारी है। वह रावण को राम से युद्ध करने से रोकने के प्रयास में अपने भाव ही नहीं तर्कना शक्ति का भरपूर प्रयोग करती है–

कहती हूँ अब भी प्रियतम सीता को लौटा दो,
अपना हठ छोड़ो सुहाग को मेरे नाथ बचा लो।
मैंने कभी न कुछ भी माँगा, आज माँगती हूँ मैं,
करो राम से संधि, न अनुचित इसे मानती हूँ। (ललित छंद)

–रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 667

महाकाव्य में कई–कई संदर्भों में गुरु–शिष्य संबंधों की महत्ता की चर्चा की गई है। रावण महाप्रयाण के निकट था। उस समय श्रीराम रावण को महापंडित बताते हुए लक्ष्मण को उससे शिक्षा लेने के लिए कहते हैं। लक्ष्मण रावण को कुटिल, कपटी, कठोर अभिमानी और अविनीत कहते हुए क्रोधित हो जाते हैं। ऐसे में श्रीराम ज्ञानार्जन के

पथ में गुरु के महत्व को सूत्रात्मक रूप से समझाते हुए कहते हैं–

भाषा छंद निघंटु व्याकरण ज्योतिष का है ज्ञान,
वेद–शास्त्रों का है रावण, विश्व विदित विद्वान
(सरसी छंद)

+ \+ \+

बिना भक्ति के ज्ञान न मिलता,
जग में कहीं कदापि न लक्ष्मण।

+ \+ \+

मित्र शत्रु कोई कैसा हो,
गुरु तो केवल गुरु होता है। (यमुना छंद)

– रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 673–74

गुरु से ज्ञान–ग्रहण के सूत्र को समझकर लक्ष्मण रावण के पास पहुँच जाते हैं। रावण को लग रहा था कि लक्ष्मण के साथ राम की छाया भी विद्यमान है। लेटे हुए रावण पैरों की ओर खड़े विनम्र लक्ष्मण को देख उनकी इच्छानुसार जीवन के सूत्र बताने लगते हैं–

क्षणभंगुर है सारी संसृति
अविनाशी तन–प्राण नहीं
अहंकार शासित प्राणी का
होता है त्राण नहीं।
वेदों से बढ़कर ज्ञान नहीं,
आत्मा से बढ़ विज्ञान नहीं।।(मरहट्ठा छंद)

– रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 676

महाकाव्य के अष्टादश सर्ग 'श्रीराम का राज्याभिषेक' में श्रीराम के राज्याभिषेक से अयोध्या का परिवेश वसंतोत्सव की तरह सौरभीला हो जाता है। 'गुरु बिन होत न ज्ञान' आदर्श वाक्य के आधार पर गुरु के सान्निध्य में आशातीत ऊर्जा और गति मिलती है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने सर्वप्रथम बौद्धिक विकास के लिए सद्गुरु शरण की अनिवार्यता का संकेत किया है–

सद्गुरु बिन आत्मोत्थान नहीं होता है,
सद्गुरु से बढ़ भगवान नहीं होता है।
कितना भी यत्न करे कोई जन्मों तक,
सद्गुरु बिना सच्चा ज्ञान नहीं होता है।।
(रोला छंद)

– रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 709

श्रीराम की घोषणा में राष्ट्रीयता और मानवतावाद का अनुप्रेरक राजद्वार खुलता दिखाई देता है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि मानवतावादी चिंतन से ही राष्ट्र की प्रगति और उन्नति संभव है। उन्होंने कहा राष्ट्र–प्रगति के लिए सद्कर्म करते रहने का व्रत लेता हूँ और मैं प्राणों से अधिक प्यारे राष्ट्र का सेवक और प्रहरी हूँ–

सतगुरु चरणों की शपथ आज लेता हूँ,
करके सद्कर्म साक्षी व्रत लेता हूँ।
करता हूँ आज प्रतिज्ञा सबके सम्मुख,
दायित्व अयोध्या–शासन का लेता हूँ।।
हे राष्ट्र देवता, मैं एक आराधक हूँ,
मैं राष्ट्र–हितों का साधक संरक्षक हूँ।
निज राष्ट्र मुझे प्राणों से बढकर होगा,
मैं एक राष्ट्र प्रहरी हूँ, एक सेवक हूँ।।
(रोला छंद)

– रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 709–10

आदर्श चिंतन कर्म में उन्होंने देश को ऊँच–नीच, जाति–पाँती आदि के भेद–भाव से मुक्त कराकर शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, कृषि और प्रशासन को आदर्श बनाने का उद्घोष किया है। देश को प्रगति–पथ पर ले जाने वाले अनुशासन और राष्ट्र–सम्मान का दृढ़ता से पालन का निश्चय आशा को विश्वास में बदल रहा है–

जो राष्ट्र–केतु का मान न रख पाएगा,
जो राष्ट्र–गान का गान न कर पाएगा।
जो शत्रु देश की प्रशस्तियाँ गाएगा
उसको कठोर से कठोर दंड मिलेगा।।
(रोला छंद)

– रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 710

उद्बोधन के कर्म में साहित्य, संगीत और दर्शन के जीवनोपयोगी स्वरूप की विस्तार से चर्चा की गई है। इनसे मन में भावात्मक विकास होता है, जिससे जीवन में गतिशील रहने की ऊर्जा और शक्ति का संचार होता है। 'सहितस्य भावं साहित्यम्' का उद्घोष किया है–

जो न जगत को दे प्रकाश,
आदित्य नहीं होता है।
जिसमें हित की बात न हो
साहित्य नहीं होता है।। (ललित छंद)

— रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 715

वर्तमान समय की चकाचौंध और आपाधापी में मानव मोह–माया ही नहीं मादक द्रव्यों का ग्रहण कर भ्रमित और संज्ञाविहीन हो रहा है। श्रीराम की घोषणा के माध्यम से महाकाव्य में विविध सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए शिक्षा की निःशुल्क सुविधा और अनिवार्यता का संकेत किया गया है। गुरु सान्निध्य में मिली शिक्षा से नैतिक पथ प्रशस्त होता है। देश में एतदर्थ संवैधानिक व्यवस्था का भी संकेत किया गया है —

मादक द्रव्यों का प्रयोग निषिद्‌ध होगा,
वृक्षों का भंजन विधि के विरुद्‌ध होगा।
शिक्षा होगी अनिवार्य निःशुल्क सभी को,
चारित्रिकता नैतिकता सर्वोपरि होगी।।
(रोला छंद)

— रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 710

मनुष्य की मूल आवश्यकता भोजन है। जिससे जीवन में गतिशील रहने के लिए शारीरिक और चिंतन शक्ति मिलती है। इसे ही दृष्टि में रखकर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम ने देश में कृषि और किसान को सर्वोपरि स्थान मिलने का आश्वासन दिया है—

कृषि को सदैव सर्वोपरि स्थान मिलेगा,
हर संभव सहायता अनुदान मिलेगा।।
(रोला छंद)

— रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 711

आदर्श राजनीति के स्वरूप की चर्चा करते हुए राजा और प्रजा, शासक और शासित में सहज समन्वय की ओर संकेत किया गया है। राष्ट्रीय चेतना का उद्‌घोष करनेवाले मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम ने शासन में नृप के उत्तरदायित्त्व को सर्वोपरि रखा है। उनके अनुसार नृप ही जन–मन की संतुष्टि और राष्ट्र–उन्नयन के आधार होते हैं—

जनतंत्र में नृप उत्तरदायी होता है,
सदा राष्ट्र उन्नति का अनुयायी होता है।
अतः समन्वय राजतंत्र और प्रजातंत्र का,
कष्ट निवारक रक्षक, सुखदायी होता है।।
(प्रगति छंद)

— रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 716–17

युगीन आँधी, भौतिकता के आकर्षण, अधिकार और शासन के अहं में नृप के ही नहीं अधिकारियों के मन से सामान्य जन अर्थात् प्रजा का स्थान ही गायब हो जाता है। स्वार्थ और अहंकार में डूबा अधिकारी समाज और राष्ट्र के लिए अभिशाप बन जाता है। परिवर्तन की अपेक्षा में दिग्दर्शक भाव सामने है—

प्रभुता पाकर मन मतवाला हो जाता,
जन–कल्याण भाव मन से है कूच कर जाता।।
(प्रगति छंद)

— रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 717

भारत देश में हिंदी को सर्वाधिक लोग समझते हैं और प्रयोग करते हैं, किंतु अब तक उसे राष्ट्रभाषा का पद नहीं मिल सका है। राष्ट्रीयता के उपासक महाकवि सभी भाषाओं का आदर करते हैं, क्योंकि सभी भाषाएँ भावाभिव्यक्ति की आधार हैं। उन्हें देश में राष्ट्रभाषा की उपेक्षा के स्थान पर सम्मान की अपेक्षा है—

भाषा का प्रदूषण कभी न होने पाए,
संस्कृति का कल कानन खिन उजाड़ न होवे।
देशी तथा विदेशी भाषा हो न अनादृत,
किंतु राष्ट्रभाषा के संग खिलवाड़ न होवे।
(रोला छंद)

— रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 714

महाकाव्य के अंतिमांश में मानवतावाद से जुड़ा वैश्विक संदर्भ सामने आता है। इस मानवतावादी चिंतन में आधुनिक युग की समस्त सामाजिक, व्यावसायिक, राजनीतिक और वैज्ञानिक आदि गतिविधियों के कुशल संचालन का निर्देश भी वैश्विक गतिशीलता का मार्ग प्रशस्त करने वाला है—

चले सुचारु रूप से राज्य न्यायिक सेवाएँ,
कूटनीति संबंध न कभी न विकृत होने पाएँ।
व्यापारिक संबंध न कभी शिथिल हो पाएँ,
सामाजिक अंबंध सदैव निखरते जाएँ।।
(रोला छंद)

— रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 731

कनाडा की 'हिंदी चेतना' पत्रिका के संपादक श्री श्याम त्रिपाठी ने परम महाकाव्य के मंगलाचरण में गोस्वानी तुलसीदास और महाकवि प्रसाद के

अभिनंदन से लेकर राम के राज्याभिषेक तक उनके वक्तव्य का उल्लेख करते हुए लिखा है–

'रघुवंश शिरोमणि श्रीराम' महाकाव्य एक कालजयी कृति है। इसकी तुलना तुलसीदास के रामचरितमानस से करना उपयुक्त नहीं होगा, क्योंकि आदेश जी ने गोस्वामी तुलसीदास और जयशंकर प्रसाद को अपना अभीष्ट और पथ–प्रदर्शक कवि मानते हैं। अतः उनकी वंदना की है। ..... आदेश जी आदर्शवादी और मर्यादावादी कवि हैं। राज्याभिषेक के पश्चात् श्रीराम ऐसे बोल रहे हैं कि मानो संसार के लोकप्रिय नेता अथवा भारत के कोई लोकप्रिय प्रधानमंत्री जी ही बोल रहे हैं। –

– रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 14

अमरीका की डॉ. शिखा रानी शर्मा ने इस महाकाव्य को जन मानस के लिए अनुप्रेरक महाग्रंथ बताते हुए लिखा है–

आदेश जी रचित 'रघुवंश शिरोमणि श्रीराम' धर्म ग्रंथ या प्रणय ग्रंथ नहीं है। उन्होंने केवल एक जीवन ग्रंथ की रचना की है। जिसका अनुशरण करके प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति अपना अपेक्षित ध्येय प्राप्त कर सकता है। इस महाकाव्य में आज युग बोलता है। आज की ज्वलंत समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करनेवाला महाकाव्य 'रघुवंश शिरोमणि श्रीराम' अमर और चिरंतन महाकाव्य है।

– रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 19

डॉ. सावित्री मिश्रा ने महाकाव्य में प्रस्तुत व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और भारतीय संस्कृति के आदर्श की अनुप्रेरक प्रस्तुति को दृष्टिगत कर अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है–

"इस महाकाव्य में व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र को भारतीय संस्कृति और आदर्श को अपना, ऊर्जस्वित हो, सन्मार्ग पर चलने के साथ वैश्विक धरातल पर मानवतावादी स्नेहिल परिवेश बनाने की अनूठी प्रेरणा मिलती है। इस प्रकार स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि 'रघुवंश शिरोमणि श्रीराम' आधुनिक युग के जनमानस को प्रेरित करनेवाली श्रेष्ठतम, कालजयी महाकाव्यात्मक परम कृति है।"

– रघुवंश शिरोमणि श्रीराम, पृ. 23

इस प्रकार विशद चिंतन से सुस्पष्ट होता है कि प्रवासी महाकवि प्रो. हरिशंकर 'आदेश' कृत 'रघुवंश शिरोमणि श्रीराम' महाकाव्य राम काव्य परंपरा की अप्रतिम कृति है। आदिकाल के आदिकवि महर्षि वाल्मीकि के 'रामायण', भक्तिकाल के संत तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के भव्य प्रणयन के साथ आधुनिक काल में दिव्य पौराणिक संदर्भ को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किए जानेवाला प्रो. आदेश का 'रघुवंश शिरोमणि श्रीराम' महाकाव्य जन–मन की दिग्दर्शक कालजयी रचना है।

– 960, सेक्टर–1, रोहतक, हरियाणा

❑❑❑

'अपने–अपने राम' के राम

डॉ. शालिनी राजवंशी

'अपने–अपने राम' के नाम से कुमार विश्वास ने राम कथा कही है। उनकी राम कथा को सुनने के बाद जो आनंद आया और जो रस मिला, उसके बाद जैसे उनके द्वारा वर्णित राम को एक नई दृष्टि से देखा। उनकी कथा से हम राम को जी लेते हैं। उनके एक श्रोता का कहना है कि राम को पढ़ा तो था लेकिन इतना सुंदर सुना कभी नहीं था। कुमार विश्वास राम कथा को तर्क की कसौटी पर कस कर आज के वैज्ञानिक युग में उसकी महत्ता सिद्ध करते हैं और वर्तमान पीढ़ी में उसे स्वीकार्यता दिलवाते हैं।

राम कथा सभी ने कहीं न कहीं सुनी होगी और नहीं तो प्रत्येक भारतीय ने किसी न किसी रूप में पढ़ी अवश्य है। हम जानते हैं राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। आज्ञाकारी हैं, पिता की आज्ञा मारकर वन को गए। कितने ही राक्षसों को मारकर ऋषि मुनियो को सुरक्षा दी। अंत में रावण को मारकर सीता को वापस लाए। ये सिर्फ पंक्तियाँ हैं। लेकिन एक–एक पंक्ति का निहितार्थ कुमार विश्वास जी के 'अपने–अपने राम' नामक कथा को सुनकर ही ज्ञात हुआ। वे अपने शब्दों द्वारा वास्तविक राम के दर्शन करवाते हैं। उनकी कथा से हम राम को जी लेते हैं। वे कहते हैं सबमें ईश्वर है अतः राम आपके भीतर हैं बस उन्हें बाहर निकालने की जरूरत है। सर्वज्ञ होने का भ्रम ईश्वर को चुनौती देने जैसा है। उनके राम सर्वज्ञ होने का दावा नहीं करते वह सब कुछ सीखते हुए आगे बढ़ते चलते हैं– यही मर्यादा है।

राम ने जिस दिन अयोध्या की सीमा छोड़ी उस दिन अपनी निजता की सीमा भी छोड़ दी। वो भूल गए कि मैं इक्ष्वाकू वंश का राजकुमार हूँ इसलिए उन्हें निषाद राज और सुग्रीव को गले लगाने में कोई दिक्कत नहीं हुई। पशु–पक्षियों से रो कर पूछते हैं तुमने मेरी सीता को देखा है।

हे खग हे मृग
तुम देखी सीता मृगनयनी

राम जो विष्णु की 8 कलाओं से युक्त होकर पृथ्वी पर आए थे वे राम मनुष्य जीवन के अभिनय को जीने के लिए इतने आत्मीय हो जाते हैं कि पशु–पक्षियों से रोकर पूछते हैं मेरी पत्नी कहाँ है, मैं उन्हें कहाँ ढूँढूँ।

इस संसार को उत्पीड़न, भय, त्रास, से मुक्त कराने के लिए ही राम आए थे।

राम की विजय उनकी निजता का उत्सव नहीं है। वह सभी पीड़ितों, का दलितों का, सताए हुए मनुष्यों के उद्धार का उत्सव है। अयोध्या से जाते समय और अयोध्या लौटते समय राम ने जो सबसे महान काम किया वो था 'एकात्मकता' का। उन्होंने हर वो काम किया जो इस विशाल देश को एक सूत्र में बाँध सकता था।

वे अपनी सभा को उपनिषद कहते हैं जहाँ श्रोता बैठ कर सुन रहे हैं और उस श्रवण द्वारा कुछ न कुछ ज्ञान अर्जित करके ले जाते हैं और उस ज्ञान को आगे बाँटते हैं। बाबा तुलसी कहते हैं–

स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा

इसी प्रकार उनकी राम कथा स्वयं को सुख देने वाली है। आप जिस समय दूसरे में ईश्वर देखना शुरू कर देते हैं तब आप का 'आप' तिरोहित हो जाता है और मनुष्यता की खुली आँख के सबसे बड़े सपने राम बन जाते हैं जिह्वा वाणी अर्थवती होकर राम नाम जपने लगती है। सूरदास के रसिक शिरोमणि राम हैं। मीरा बाई के नटवर नागर राम हैं। वाल्मीकि, तुलसी, कंबन के अपने–अपने राम हैं। उनके राम प्रकृति का नियामन करने आए हैं, मर्यादा स्थापित करने आए हैं अतः मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। राम को वनवास होने के बाद जब लक्ष्मण कहते हैं आप अयोध्या पर कब्जा क्यों नहीं कर लेते तक राम कहते हैं जिस बाप ने रक्त दिया उसके खिलाफ जाऊँ यह पातक है। जिस माँ ने पाला उसके खिलाफ जाऊँ यह भी पातक है और पाप जिसकी सोच की सीमाओं के बाहर खड़े होकर सोचता है उस पराजित भाव से खड़े भाई भरत के खिलाफ जाऊँ यह भी एक पातक है। लक्ष्मण तुम ही बताओ किस पाप को करूँ। ऐसे राम पहले सामाजिक व्यक्ति हैं जो समाज को साथ लेकर चलते हैं। राम ने विप्र, धेनू, देवताओं और संतो के हित हेतु अवतार लिया है।

राम का राज्याभिषेक नहीं हुआ लेकिन सिंहासन पर बैठने से ही कोई राजा नहीं बनता। पौरुष, विक्रम से अर्जित क्षमता से राम भृगेंद्र बने हैं। राम का जीवन प्रकाश नहीं दर्शन है।

राम ने परिवार से, समाज से बाहर आकर कार्य किया। राम ने सिंहासन को छोड़कर वन को चुना। अगर वे सिंहासन पर बैठते तो मात्र राम बन कर रहे जाते। जंगल गए तो मर्यादा पुरुषोत्तम बन कर लौटे। राम जंगल जाएँ या न जाएँ इस विषय पर राजा दशरथ के साथ 'विश्वामित्र' और 'वशिष्ठ' चर्चा कर रहे थे तब राम वहाँ आ गए। पिता ने कहा तुम्हारा यहाँ कुछ काम नहीं है तुम जाओ। राम ने कहा मेरे बारे में चर्चा है इसलिए मैं बैठूँगा और वन को जाऊँगा। पिता ने कहा अच्छा ठीक है तुम सेना ले जाओ। तब राम ने कहा यदि जंगल के लोगों की रक्षा सेना से ही हो सकती थी फिर मेरी वहाँ जाने की क्या जरूरत थी। पिता ने कहा अंगरक्षक साथ ले जाओ। राम कहते हैं अगर मुझे अपने अंगो की ही रक्षा करनी पड़ जाए तो मैं उन लोगों की रक्षा क्या करूँगा। रास्ते में विश्वामित्र के पूछने पर कि बिना सेना के तुम राक्षसों से कैसे लड़ोगे? राम कहते हैं जंगली लोगों के साथ। मैं भीलों से औजार, भाले आदि बनवाऊँगा, अश्वों का प्रशिक्षण करवाऊँगा, धनुष बाण बनवाऊँगा। विश्वामित्र कहते हैं तुम उन्हें अपनी सेना में शामिल करोगे। उनके पास तो अपना काम है। राम कहते हैं सेना नहीं, मैं उन्हें आत्मरक्षा सिखाऊँगा। पूरे देश को आततायी सोच के खिलाफ खड़ा करने का काम करने वाले पहले कमांडर का नाम राम है। मित्र के साथ हों, भाई के साथ हों, पत्नी के साथ हों, आदर्श जीवन सिखाने वाले राम ही हैं। राज्याभिषेक के समय उनकी कैकेयी से एक ही शिकायत थी कि हम चारों भाई एक साथ बड़े हुए फिर मुझे अकेले को ही राज्याभिषेक क्यों? हम चारों का ही होना चाहिए। यह उनकी अकेली शर्त थी। समाजवाद का पहला उदाहरण राम हैं। राम अपने मित्र को दुखी नहीं देख सकते। उनके लिए ये सबसे बड़ा पाप था।

जिन मित्र दुख होंय दुखारी
तिनही विलोकत पातक भारी

चाहे केवट हों, सुग्रीव हों, विभीषण हों राम उनके प्रति बहुत विनम्र थे। उन्हें दुखी नहीं देख सकते थे।

जंगल में जब तीनों माँ मिलने आईं तो उन्होंने सबसे पहले कैकेयी के पैर छुए क्योंकि उन्हें मालूम था उनके मन में अपराध बोध है। यदि वे पहले कौशल्या के पैर छू लेते तो कैकेयी और अपराध से ग्रस्त हो जातीं और समाज में उनका अपराध मानद हो जाता। अतः उन्हे अपराध मुक्त करने के लिए वे पहले कैकेयी के पैर छूते हैं। भरत से कहते हैं, 'बोलो भाई भरत क्या चाहते हो।' जिस भरत पर इतने आरोप लग रहे थे वे उससे ही पूछते हैं। भरत ने कहा, 'क्या मुझे अभी भी कुछ चाहिए'। तुम जंगल में पड़े हो और मुझे अकंटक सिंहासन मिल गया। उसकी आँखों में आँसू हैं। राम की कथा त्याग की ऐसी कथा है जहाँ एक सिंहासन चौदह वर्ष तक खाली रहा और

गेंद की मानिंद दोनों भाईयों के बीच उछलता रहा। राम क्षत्रिय हैं लेकिन मस्तिष्क तपस्वियों जैसा है वे शांत स्वभाव के हैं। वन जाने की आज्ञा मिलने पर कौशल्या राम से पूछती हैं, 'बेटा क्या हुआ? दुखी हो?' राम उल्लास से कहते हैं, 'माँ पिता ने मुझे जंगल का राज दे दिया' जहाँ बहुत बड़े–बड़े काम मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

पिता दिही मोही कानन राजु,
जहाँ सब भाँति मोर बड़ काजु।

राम वन को गए तो राम बन गए। राम शांत रहते हैं, शील हैं, इसी स्वभाव के कारण वे अंगद को विषाद से बाहर ला पाए। उन्होंने अंगद में वाक् कला विकसित की। वे राम थे जिन्हें विश्वास था कि अंगद रावण को मना लेंगे। रावण से पहले बातचीत जरूरी थी। उन्होंने अंगद में नेतृत्व कला विकसित की। राम द्वारा विकसित वाक् कला में पारंगत अंगद रावण से कहते हैं–

सिंधु तरयो उनको बनरा
तुम पे धनु रेख गई न तरी
बानर बाँधत सो न बँधो
उन बारिधि बाँध के बाट करी
अजहु रघुनाथ प्रताप की बात
तुम्हें दशकंठ न जाय परी
तेलनी–तूलनी पूँछ जरी न जरी
गढ़ लंक जलाय जरी

अंगद रावण का दंभ तोड़ते हुए कहते हैं कि श्रीराम का तो बानर भी सागर पार कर लंका पहुँच गया और तुझ पर तो धनुष की रेखा भी न लाँघी गई। और तो और तूने तो एक बानर की पूँछ जलाने के चक्कर में अपनी पूरी लंका जलवा ली।

कहाँ अंगद विषाद ग्रस्त थे और कहाँ श्रीराम का साथ पाकर एक कुशल राजदूत की भाँति रावण का घमंड तोड़ आए और रावण को हतोत्साहित कर आए। पतन की राह और उत्थान की राह के लिए एक कदम उठाने भर की देरी होती है। सीता हरण के लिए कदम उठाने के साथ ही रावण का पतन आरंभ हो गया जबकि राम के साथ होते ही अंगद और सुग्रीव का उत्थान हो गया।

जो हमारे पास प्राप्त है यदि उसे हम पर्याप्त मान लें तो जीवन संघर्ष खत्म हो जाएगा। माँ सीता ने सदैव राम का साथ निभाया। लेकिन फिर भी राम ने सीता का परित्याग क्यों किया ये प्रत्येक मनुष्य के मन में हमेशा रहता है। जो श्रद्धा तर्क से परे है वह मिट्टी के ढेले के समान है। श्रद्धा सिद्ध भी होनी चाहिए। जो श्रद्धा तर्क के बल पर आएगी वो चिरस्थायी होगी। राम सभी संस्कृतियों को एक साथ लेकर चलते थे। नारी का बहुत सम्मान करते थे। उन्होंने विभीषण का विवाह मंदोदरी से करवाया तथा सुग्रीव का विवाह बाली की पत्नी से करवाया।

राम के रूप में ईश्वर अपनी सर्वश्रेष्ठ संभावनाओं के साथ पृथ्वी पर उतरा। सोलह वर्ष की आयु में राम विश्वामित्र के साथ जंगल को चले गए। विश्वामित्र ने वहाँ उन्हें सारी विद्याएँ सिखाईं। जो लोग गुरु के साथ रहेंगे, उनका सम्मान करेंगे वे सर्व विद्या युक्त होंगे। ये राम की कहानी हमें बताती है। वे अल्प आयु में ही सर्वविद्या युक्त हो गए।

राम का शासन भी परोपकारी राज्य का सर्वोत्तम उदाहरण है। वे भरत को सलाह देते हैं कि राजा को सूर्य की भाँति होना चाहिए। जैसे वह पृथ्वी से जल इकट्ठा करके, बादल बना कर वहाँ बरसता है जहाँ पानी की जरूरत होती है। उसी प्रकार राजा को मणि, माणिक आदि पर शुल्क लगाना चाहिए और प्रजा के लिए जरूरी सामान जैसे तृण (पशुओं का चारा), जल और अन्न शुल्क रहित होने चाहिए।

राम ने गंगा पार करने के लिए केवट से बिनती की। पार उतरने पर उनके पास केवट को देने को कुछ नहीं था। जिसकी कृपा कटाक्ष से सृष्टि लय हो जाती हो उनके पास देने को कुछ नहीं था। सीता राम की लाचारी समझती है। वह अपनी विवाह की अंगूठी उतार कर उसे दे देती है। *मुदित मगन मणि मुंदरी उतारी* ये हिंदुस्तान की नारी है जो अपने पति का सिर नहीं झुकने देती।

जो सीता खेल–खेल में धनुष उठा लिया करती थीं क्या वह लंका के कारागार को तोड़ नहीं सकती थीं। तोड़ सकती थीं लेकिन वहाँ रहना सीता का नैतिक सत्याग्रह है। वह एक आततायी के खिलाफ खड़ी थीं।

सीता के चरणों में काँटा लगने पर राम रो पड़ते हैं। क्या ऐसे राम सीता का परित्याग कर सकते हैं। वन छोड़ स्वर्ग भी तेरे बिना जाए संभव नहीं है ऐसा कहने वाले राम सीता का त्याग नहीं कर सकते। यह प्रसंग राम की प्रतिष्ठा धूमिल करने के लिए बाद में जोड़ा गया। यह झूठ है, प्रमाद है जो फैलाया गया है। उत्तर रामायण की कथा बाद में जोड़ी गई है।

एक प्रसंग में 'कुमार विश्वास' बताते हैं कि पृथ्वी से जाने से पहले राम अपने पुत्रों, भतीजों में राज्य बाँट कर गए थे। यहाँ तक कि हनुमान के और से पुत्र 'मकरध्वज' को भी पाताल का राज्य दे कर गए थे। अमरीका के पास एक देश है 'होंडूरास' वहाँ के लोग उसे कंट्री ऑफ मंकी मैन कहते हैं। कहते हैं कि लाखों वर्ष पहले यह देश किसी बंदर ने बसाया था। वहाँ जगह–जगह बंदर की मूर्तियाँ हैं और दीवारों पर भी बंदर के चित्र उकेरे हुए हैं। यदि हम लोग भी भारत की ओर से नीचे की ओर सीधा छेदें तो वह सुई होंडूरास पर जाकर निकलती है।

राम की कहानी मनुष्यता के लिए जीवनपर्द्धक immunity booster है। वैराग्य में डूबे मनुष्य को भक्तिकाल में इसी राम नामी प्राणदायिनी शक्ति ने जीवन दिया। इन दिनों धर्म और आध्यात्मिकता में फर्क करना बहुत जरूरी है। कुमार विश्वास आधुनिक युग के तुलसी हैं। वे नए रूप में राम से हमारा परिचय करवाते हैं। वे केवल पढ़े–लिखे ही नहीं, ज्ञानी हैं। उनका ज्ञान मात्र पुस्तकों को पढ़ने से नहीं आया है। यह अनुभूत ज्ञान है। यह अनुभव की मिट्टी में तपा हुआ ज्ञान है। भाषा पर ऐसी पकड़ कि आप एक त्रुटि भी नहीं निकाल सकते। राम कथा कहने का इतना रोचक तरीका कि सभी मंत्रमुग्ध से सुनते रह जाते हैं। उन्हें मेरा साधुवाद।

– सहायक निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम, नई दिल्ली–110066

❑❑❑

रामचरितमानस में निर्गुण–सगुण–तत्व–समन्वय

डॉ. शुकंतला कालरा

तुलसी के काव्य में भक्ति और दर्शन का अद्‌भुत समन्वय है जो उनके काव्य को शाश्वत महत्व और स्थायित्व प्रदान करता है। दर्शन और काव्य का अभिन्न योग तुलसीदास के कवि–कर्म की महत्ती विशेषता है। उनके आध्यात्मिक विचार 'नानापुराणानिगमागमसम्मतं' है। उन्होंने सभी दार्शनिक मान्यताओं को युग–धर्म की विशेषताओं के साथ समन्वित करके उपस्थित किया है। काव्य, दर्शन और भक्ति तीनों क्षेत्रों में उनकी समन्वयात्मक दृष्टि दिखाई देती है। उनका युग सगुण–निर्गुण के विवाद का युग था–

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।

सुगम अगम नाना चरित सुनि–मुनि भ्रम होइ।

रा.च.मा. 7/73ख दोहा

निर्गुण रूप अत्यंत सुलभ है। पर सगुण को कोई नहीं जानता। ईश्वर का सुगम–अगम परस्पर विरोधी चरित्र मुनियों को भी भ्रमित कर देता है। उनका वास्तविक स्वरूप क्या है? निर्गुण अथवा सगुण? तुलसीदास ने निर्गुण और सगुण ब्रह्म में समन्वय स्थापित करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। पार्वती भगवान शंकर से प्रश्न पूछती है–

प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी।। –रा.च.मा,1/110/2

पार्वती के मन में संदेह उठता है, क्या व्यापक और अजन्मा ब्रह्म ही नर रूप धारण किए हैं? शंकर द्वारा इसके समाधान में जिस उत्कृष्ट कोटि के समन्वय और अभेदत्व का परिचय दिया गया, वह निश्चय ही तुलसीदास की महत्ती समन्वयात्मक प्रवृत्ति को दर्शाता है। संत कवि रैदास जी ने भी 'अगुन सगुन दौ समकरि जान्यौ' कहकर निर्गुण और सगुण की अभेदता पर बल दिया है–

अगुन सगुन दौ समकरि जान्यौ, चहुं दिस दरसन तोरा।

–संतगुरु रविदास–बाणी, पद 73

यही एकत्व का भाव अद्‌वैतवादी संत पलटू साहिब को भी मान्य है। वह ब्रह्म को मूलतः निर्गुण कहते हैं किंतु माया के संपर्क में आने पर वह सगुण हो जाता है। वस्तुतः निर्गुण–सगुण में द्‌वैत नहीं है–

फूल महे ज्यों वास काठ में आग छिपानी

दूध महे घिव रहे नीर घुट माँही लुकानी

जो निर्गुन से सर्गुन और न दूजा कोई।

पलटू साहब की बानी, भाग 1, पृ. 69

गोस्वामी जी ने मानस के आरंभ में ब्रह्म के दो रूपों का उल्लेख किया है। वेद पुराण मुनि एवं विद्‌वान सभी यही स्वीकार करते हैं कि जो अरूप है, अजन्मा है वही भक्तों के प्रेम के कारण सगुण–साकार रूप धारण करता है। पार्वती की शंका है– 'निर्गुन ब्रह्म सगुण बपु धारी' और शंकर विस्तार से निराकार–साकार की स्थिति पर प्रकाश डालते हैं–

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।।

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुण सो होई।। –रा.च.मा, 1/116/1

यह निराकार ही भक्तों के प्रेम में साकार हो उठता है। तुलसीदास ब्रह्म के वेद तथा शास्त्र–सम्मत रूप को स्वीकार करते हुए निर्गुण, निर्विकार, सर्वव्यापी, अव्यक्त और अगोचर ब्रह्म का पृथ्वी पर नाना रूप धारण कर अवतरित होना मानते हैं, जो अपने भक्तों को आह्लादित करते हैं।–

ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप।।
रा.च.मा, 1/205

कहों वे माता कौशल्या को मातृ–सुख देते हैं। –

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौशल्या कें गोद।।
रा.च.मा. 1/198

गीता से प्रभावित कहीं–कहीं वे सामाजिक कल्याण के लिए निराकार का साकार रूप में अवतरित होना मानते हैं। –

जब–जब होई धरम की हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।....
तब–तब प्रभु धरि बिबिधा सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।
रा.च.मा., 1/121/3–4

वास्तव में तुलसीदास निराकार–साकार के प्रश्न को सांप्रदायिक ढंग से उलझाना नहीं चाहते थे। इसी कारण उन्होंने दोनों के अभेदत्व को स्वीकार किया। जामवंत के मुख से उन्होंने सबको यह विश्वास दिलाया है कि निर्गुण–निराकार ब्रह्म ही राम के रूप में हम सबको प्राप्त हुआ है और यह हमारा सौभाग्य है कि हमारा सगुण ब्रह्म में विश्वास है और हम उसकी लीलाओं में सहयोगी हैं।

तुलसीदास ब्रह्म के निर्गुण–सगुण दोनों रूपों को न केवल सत्य मानते हैं, वरन् एक ही मानते हैं।–

अगुन–सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा। – रा.च.मा., 1/23/1

वे जल और ओले के रूप में इसकी अभेदता वर्णित करते हैं।–

जो गुन रहित सगुन सोई कैसें जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे
– रा.च.मा., 1/116/2

दोहावली में उन्होंने अंक और अक्षर के समान दोनों को एक और सत्य माना है। साथ ही वे इसे एक दूसरे का पूरक मानते हैं–

1. अंक अगुन आखर सगुन समुझिय उभय प्रकार
खोएँ राखें आपु भल तुलसी चारु बिचार।
दोहावली, दोहा 252

2. ग्यान कहै अग्यान बिनु तम बिनु कहै प्रकास।
निरगुन कहै जो सगुन बिनु, सो गुरु तुलसीदास।। दोहावली दोहा, 251

ब्रह्म के दोनों रूपों में एकता स्थापित करना ही तुलसीदास का मूल उद्देश्य है। अपने प्रभु राम के सगुण तथा निर्गुण दोनों रूपों को तुलसीदास ने स्वीकार किया है। निर्गुण ब्रह्म जब सगुण रूप धारण करता है तो वह सुंदर हो उठता है जैसे रूप रहित जल कमलों से सुशोभित हो उठता है–

फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुण ब्रह्म सगुन भाए जैसा।
– रा.च.मा. 4/17/1

विनयपत्रिका में भी साकार–निराकार के समन्वित रूप का सर्वोत्तम प्रकाशन हुआ हैं। तुलसीदास ने इस समन्वय के द्वारा मध्यकालीन निर्गुण–सगुण के विवाद के प्रश्न का समाधान किया है। उनके अनुसार राम विष्णु के अवतार हैं, सर्वदेवाधिदेव हैं। ब्रह्म की शक्ति उनमें नियोजित है। शंकर उनके भक्त हैं और लगभग सभी देवता उनकी स्तुति करते हैं। तुलसी ने राम को अनेक रूपों में चित्रित कर उनमें ब्रह्मत्व की है और कहा

है कि वह साकार रूप होकर भी अपना निराकारी ब्रह्मत्व सुरक्षित रखते हैं। रामचरितमानस में राम की लालाओं का चित्रण करते हुए उनके ब्रह्मत्व को भी निरूपित किया है।

पूँछेहु माहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहुँ तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ। —रा.च.मा., 2/127 दोहा
जहँ न होहुँ तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ। —रा.च.मा, 2/127 दोहा

राम स्वयं भी अपने इस विराट रूप का बोध माता कौशल्या को कराते हैं।

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम राम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड।।
—रा.च.मा, 1/201 दोहा

'विनयपत्रिका' में जिस आराध्य के प्रति तुलसीदास समर्पित हैं वह परमेश्वर है, पर नरवत् लीलाएँ करता है। रामचरितमानस में वह उन्हें एक सार्थक व्यक्तित्व, नेतृत्व प्रदान कर नायकत्व का वह आसन प्रदान करते हैं– जिनके कर्म–भरे जीवन में संघर्ष भी है और उतार–चढ़ाव भी। बार–बार ब्रह्मत्व का संकेत देते हुए भी उन्हें नर की भूमि पर रखते हैं।

सीता वियोग में उनकी पीड़ा का प्रसंग, लक्ष्मण मूर्च्छा के समय राम का प्रलाप आदि प्रसंग।

क्रमशः रा.च.मा. 3/30/1–9 कवितावली, लंकाकांड, छंद 52

वे रघुवंशियों में श्रेष्ठ और राजाओं के मुकुटमणि हैं–

वंदेऽहं करुणाकंरं रघुवरं भूपाल चूणामणिम्
– रा.च.मा. 5/1 श्लोक

वे भक्तवत्सल हैं, कृपालु हैं, शीलवान एवं कोमल स्वभाव वाले हैं।

अतः कहा जा सकता है कि तुलसी के राम निर्गुण भी हैं और अप्रमेय गुणसंपन्न भी। वह शक्तिशाली, शीलवान एवं कोटि मनोज लजावनहारे हैं। ऐसे प्रभु राम की तुलसीदास नित जय–जयकार करते हैं।

जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही। रा.च.मा., 3/32/छंद 1

ध्यातव्य है कि तुलसीदास ने श्रीराम के निर्गुण रूप को मानते हुए भी उपासना के लिए उसके सगुण रूप को ही स्वीकार किया है। क्योंकि बिना सगुण रूप के कोई भी निर्गुण रूप को नहीं जान सकता। राम मूल रूप में निर्गुण ही है। उनके निर्गुण रूप का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने उन्हें अविगत, अलख, अनादि, अनुपम, निर्विकार और भेद–रहित कहा है। वेद भी 'नेति–नेति' कहकर ही संतोष कर लेते हैं। वह साक्षात् ब्रह्म, सर्वव्यापी हैं– इसी कारण समस्त जगत को राममय मानकर उस जगदीश्वर को वे प्रणाम करते हैं–

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।[132] 132. रा.च.मा, 1/8/1

विनयपत्रिका में राम के स्वरूप की चर्चा करते हुए तुलसीदास ने उन्हें सत्य, नित्य, अनादि एक और अखंड कहा है। उनके राम अद्वैत, निर्मम, निर्गुण, नाम, रूप रहित, समस्त उपाधियों से रहित अव्यक्त, अविकारी, निराकार, त्रिगुणातीत, निरीह और अविनाशी ब्रह्म हैं।

1. नित्य, निर्मोह, निर्गुण, निरंजन, निजानन्द, निर्वाण, निर्वाणदाता।।
निर्भरानंद, निःकम्प, निःसीम, निर्मुक्त, निरुपाधि, निर्मम, विधाता।। विनयपत्रिका 56/5
2. अनघ, अद्वैत, अनवद्य, अव्यक्त, अज, अमित, अविकार, आनंदसिंधो।।
अचल, अनिकेत, अविरल, अनामय, अनारंभ, अम्भोदनादहनबंधो।। विनयपत्रिका 56/8

मानस में भी उनके इसी रूप का चित्रण है–

ब्यापक ब्याप्य खंड अनंता। अखिल अमोघसक्ति भगवंता
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता।
निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा।–
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी। —रा.च.मा. 7/72/2–4

राम के तटस्थ लक्षणों का वर्णन करते हुए उसे नट का रूप दिया है। जैसे एक नट तरह–तरह के वेश धारण करता है, किंतु उसके मूल रूप में कोई परिवर्तन नहीं आता उसी प्रकार 'भगत हेतु' राम भी विविध रूप धारण करते हैं।–

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप।।
जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ।।
–रा.च.मा. 7/72 दोहा क और ख

राम मूल रूप में निर्गुण ही हैं। तुलसीदास के निर्गुण राम का यह स्वरूप आचार्य शंकर के निर्गुण ब्रह्म से मिलता है उनका ब्रह्म भी अद्‌वितीय, आदि–अंत रहित, मायिक भेदों से रहित, अरूप, अव्यक्त, अखंड, मन–वाणी से परे है। –विवेकचूड़ामणि, ब्रह्म निरूपण–श्लोक 239–242 वस्तुतः तुलसी के परमतत्व राम वेदांत के निर्गुण एवं सगुण रूप हैं। वेदांत के अनुसार ब्रह्म के विरोधी धर्मों का वर्णन तुलसीदास ने भी किया है। उनका निराकार राम 'ज्ञान गिरा गोतीत' होते हुए भी ज्ञानगम्य तथा वेदांतवेद्‌य है।–

सुख संदोह मोहपर ग्यान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम बस कर सिसुचरित पुनीत।
रा.च.मा. 1/199

उसके परस्पर विरोधी गुणों का वर्णन करते हुए उसे बिना वाणी का वक्ता, बिना मुख सभी रसों का आस्वादन लेने वाला कहा है। वह बिना नेत्रों के सबको देखता है। उसकी हर करनी अद्‌भुत और अलौकिक है–

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।
– रा.च.मा. 1/118/3–4

वह सबको जानता है, पर उसे कोई नहीं जानता। वह निर्गुण ब्रह्म केवल आत्म–अनुभवी ज्ञानियों के लिए ही सुलभ हो सकता है, सबके लिए सरल नहीं है। कृपाण की धार की भाँति कठिन एवं कष्ट–साध्य है। यही कारण है कि तुलसीदास ने अगुन, अरूप, अलख एवं अज ब्रह्म को सगुण रूप में चित्रित किया है। युगधर्म की आवश्यकता को समझते हुए उन्होंने निर्गुण–सगुण में अभेद स्थापित करके प्रेमतत्व का निरूपण किया और ब्रह्म राम की सगुणोपासना का प्रतिपादन किया। प्रेममय भक्ति–मार्ग सर्वग्राह्य, सर्वसुलभ एवं सुगम था। भक्तों के प्रेम के वशीभूत औपनिषदिक निर्गुण–निर्विकार ब्रह्म सगुण राम हो गए।

(क) अगुन अलेप अमान एकरस रामु सगुन भए भगत प्रेम बस। –रा.च.मा. 2/219/3
(ख) अगुन अरूप अलख अज होई भगत प्रेम बस सगुन हो होई।। –रा.च.मा. 1/116/1

अवधपति राम ही चराचर के स्वामी, जगत्‌ के प्रकाशक एवं सर्वव्यापक हैं।

चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन। गगन जाइ बरषहु पट भूषन।।
नभ पर जाइ बिभीषन तबही। बरषि दिए मनि अंबर सबही।।
जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीं। मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं।।
हँसे रामु श्री अनुज समेता। परम कौतुकी कृपा निकेता।। –रा.च.मा. 1/117/3–4

मनसा–वाचा अगोचर ब्रह्म ही सगुण साकार रूप धारण करके दशरथ जी के प्रांगण में विचरण करता है। –*मन क्रम बचन अगोचर जोई। दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई।* –रा.च.मा. 1/203/3

तत्वतः निर्गुण–सगुण में कोई अंतर नहीं है। अव्यक्त रूप वाला परब्रह्म ही व्यक्त हो जाने पर सगुण कहलाता है–

हियं निर्गुन नयनन्हि सगुन, रसनां राम सुनाम।
मनहुँ पुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम।। –दोहावली, दोहा 7

स्थान–स्थान पर निर्गुण एवं सगुण का समन्वय दिखाते हुए तुलसीदास ने अपने सगुण राम का निर्गुण ब्रह्मत्व प्रतिपादित किया है–

तुम्ह समरूप ब्रह्म अबिनासी। सदा एकरस सहज उदासी।।

अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघसक्ति करुनामय।।

मीन कमठ सूकर नरहरी। बामप परसुराम बपु धरी।।

जब–जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो। नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो।।

– रा.च.मा., 6/110/3–4

तुलसीदास ने निर्गुण शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया हैं। कहीं–कहीं नेति कहकर अनिर्वचनीय अर्थ में, कहीं निराकार रूप में तथा प्राकृत गुणों से परे त्रिगुणातीत अर्थ में, कहीं–कहीं उसे अभावात्मक गुणों से युक्त कहा है।

राम के सगुण रूप का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने 'मंगल सगुन–सुगम सब ताकें' कहकर यह स्थापित किया है कि ब्रह्म का सगुण रूप सबके लिए सुगम है। यद्यपि कुछ लोग ब्रह्म के निर्गुण रूप का ध्यान करते हैं, किंतु मुझे तो श्रीराम रूप में उनका सगुण स्वरूप ही अच्छा लगता है–

कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। अव्यक्त जेहि श्रुति गाव।।

मोहि भाव कोसल भूप। श्रीराम सगुन सरूप।

वही 6/113, छंद वह लीला–हेतु सगुण–साकार रूप में अवतरित हुए हैं–

जयति सच्चिदव्यापकानन्द परब्रह्म–पर विग्रह व्यक्त–लीलावतारी।

बिकल ब्रह्मादि, सुर, सिद्ध संकोचवश, बिमल गुण–गह नर देह–धारी। विनयपत्रिका 43/1

राम के सगुण रूप को भी तुलसीदास जी ने तीन विशेष रूपों में चित्रित किया है–

1. साकार ईश्वर के रूप में 2. नरलीला करने वाले अवतारी के रूप में तथा 3. गुणों के समूह के रूप में।

सगुण भक्ति में रूप–उपासना का बड़ा महत्व है। सभी भक्तों की इस रूपासक्ति वृत्ति का परिचय भगवान के सगुण–साकार रूप के ध्यान और चिंतन में मिलता है। अपने राम के सगुण–साकार रूप की चर्चा तुलसीदास ने सर्वाधिक की है, किंतु साथ ही उनके निर्गुण रूप की भी चर्चा की है। तुलसीदास के अनुसार राम निराकार रूप में सर्वव्यापक होते हुए भी भक्त के हेतु अवतारी रूप में सगुण हो जाते हैं और देशकाल विशेष में प्रकट होते हैं।

गुणों के समूह रूप में राम का वर्णन करते हुए तुलसी ने उन्हें करुणानिधान, दीनदयालु अनाथों के नाथ, भक्तवत्सल, कृपानिधान कहा है–

नाथ दीनदयाल रघुराई। बाघउ सनमुख गएँ न साई।। –रा.च.मा. 6/7/1

भगत बछल प्रभु कृपानिधानी।

– रा.च.मा. 1/146/4

मानस के सभी पात्र राम का गुणगान करते नहीं अघाते। सगुण रूप में राम के गुणों का वर्णन करते हुए ब्रह्म राम के नाम, रूप, लीला, धाम आदि अन्य तत्वों का भी विस्तार से वर्णन किया है। नाममहिमा का वर्णन करते हुए उन्होंने नाम को राम से अधिक महत्व दिया है। स्वयं राम को नाम का गुणगान करने में असमर्थ बताया है।

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं राम गुन गाई।।

–रा.च.मा. 1/26/4

राम–नाम के प्रति तुलसीदास की अनन्य भक्ति है। भक्ति को अंकुरित एवं विकसित बनाए रखने के लिए इष्टदेव के सौंदर्य– वर्णन का महत्व है। तुलसीदास भगवान के सगुण रूप का वर्णन करते हुए ऐसा कोई स्थल नहीं छोड़ते जहाँ राम का सौंदर्य अंकन न हो सके। उन्होंने उनका रूप–चित्रण अनेक प्रकार से किया है। उनके चतुर्भुज रूप का अनेक स्थलों पर वर्णन है। कौशल्या के सम्मुख अपने चतुर्भुज रूप में प्रकट होकर उन्हें आनंद प्रदान करते हैं।

इष्टदेव के सौंदर्य के प्रति सहजाकर्षण भक्त की स्वाभाविक वृत्ति है। उनका नखशिख–वर्णन तुलसीदास ने अपनी अनेक रचनाओं में किया है। 'कवितावली' में बालक राम की सुदर झाँकी प्रस्तुत की गई है।

वर दंत की पंक्ति कुंदकली अधराधर पल्लव खोलन की,
चपला चमकै घन बीच जगै छवि मोतिन माल अमोलन की। कवितावली, बालकांड

रामचरितमानस में राम की मनोहर छवि द्रष्टव्य हैं–

सरद बिमल बिधु सुहावन। नयन नवल राजीवन लजावन।
सकल अलौकिक सुंदरताई। कहि न जाइ मनहीं मन भाई। –रा.च.मा. 1/316/2

राम सौंदर्य के आगार हैं, परिणामतः जो जहाँ भी उन्हें देखता है, आत्मविभोर हो उठता है। सीता की सखियाँ उन्हें देखकर पुलकित हो उठती हैं। अन्य नर–नारियों पर भी उनके सौंदर्य का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। उनके सौंदर्य के प्रभाव से वनवासी ऋषि–मुनि ही मंत्र–मुग्ध नहीं होते, वहाँ की अशिष्ट तथा जंगली जातियों पर भी उनका अमोघ प्रभाव पड़ता है। निशाचर तक उनके सौंदर्य पर मुग्ध होकर रह जाते हैं–

हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखि नहिं असि सुदंरताई।। –रा.च.मा., 3/19/2

रूप की भाँति भगवान राम की मनोहारी लीलाओं का चित्रण भी तुलसीदास ने बड़ी तन्मयता के साथ किया है, जिनका स्मरण करते ही शरीर पुलकित हो उठता है।

उनकी सगुण–लीलाओं में सम्मिलित होना भक्त का परम सौभाग्य है।

मानस में ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनमें मर्यादा–पुरुषोत्तम अपने को सहज मानकर निज भक्तजनों के साथ उन्मुक्त कौतूहल, मनोविनोद का रसास्वादन करते हैं और अवतार लेने की स्वयं की अभिलाषा को पूर्ण करते हैं, यही सच्चे अर्थों में भगवत्‌लीला है। हरि अपने अवतार–काल में वात्सल्य, शृंगार, सख्य आदि भावों से अपने भक्तों को विविध लीलाओं का रसास्वादन कराते हैं।

जब–जब राम मनुज तनु धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं। –रा.च.मा., 7/75/1

यहाँ ध्यातव्य है कि तुलसी के राम लीलाएँ करते हुए भी व्यक्तिगत रूप से तटस्थ हैं। लीला की भाँति धाम का भी सगुणकाव्य में महत्वपूर्ण स्थान है। जो परमात्मा संपूर्ण सृष्टि में आच्छादित है। प्राणी के हृदय में निवास कर रहा है उसके विशेष निवास से अभिप्राय है उसका लीलास्थल। भक्तों ने धाम का वर्णन उसी अर्थ में किया है। राम की जन्मस्थली एवं लीलास्थली अयोध्या की तुलसीदास ने वंदना की है। वह रामधाम को देने वाली है। स्वयं राम भी उसे प्रणाम करते हैं। राम ने इसे बैकुण्ठ से भी अधिक प्रिय कहा है।–

जद्‌यपि सब बैकुण्ड बखाना। बेद पुरान विदित जगु जाना।
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ। –रा.च.मा., 7/4/2

इस प्रकार सगुण भक्ति को विकसित करने वाले तत्वों नाम, रूप, गुण, लीला, धाम का तुलसी–काव्य में विस्तार से वर्णन हुआ है।

भगवान के सगुण और निर्गुण रूप के इस विवेचन के बाद यही कहा जा सकता है कि तुलसी की दृष्टि में शुद्‌ध सत्ता नाम एवं गुण रहित है किंतु अभिव्यक्ति के समय विविध उपाधियों से युक्त होकर नामगुणधारी बन जाती हैं। निर्गुण–निराकार ब्रह्म ने ही नाम और रूप की उपाधि से सगुण–साकार रूप धारण किया है। सगुण की चर्चा के साथ–साथ उनका निर्गुण की व्याख्या करना भी इस बात का प्रमाण है। ज्ञानाश्रित निर्गुण ब्रह्म ही भक्ति के माध्यम से सगुण ब्रह्म हो जाता है और अनेक लीलाएँ करता हैं। सगुण और निर्गुण रूप की अभेदता स्थापित करते हुए तुलसीदास ने अपने आराध्य राम में ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को अंतर्गुम्फित किया है। ज्ञान की दृष्टि से जहाँ वह निर्गुण का प्रतिपादन करते हैं वहाँ वे शंकराचार्य के अद्‌वैतवाद के निकट दिखाई देते हैं तथा जहाँ भक्ति की दृष्टि

से सगुण का प्रतिपादन करते हैं, वहाँ हम उन्हें रामानुज और वल्लभ जैसे वैष्णवाचार्यों के निकट पाते हैं। परमार्थतः वह ब्रह्म के दोनों स्वरूपों को सत्य मानते हैं। शंकर की भाँति केवल निर्गुण अथवा रामानुज की भाँति केवल सगुण रूप को नहीं। उनके राम दोनों का समन्वित रूप हैं। युग–धर्म को समझते हुए उन्होंने समस्त प्राचीन मान्यताओं को आत्मसात् किया है। उनके राम परमब्रह्म के साकार रूप हैं। जिनमें सगुण और निर्गुण, साकार और निराकार का सुंदर सामंजस्य है। तुलसी किसी दार्शनिक विवाद में नहीं पड़ते। शंकर, रामानुज, वल्लभ, रामानंद आदि के दार्शनिक विचारों को बड़ी उदारता के साथ ग्रहण करके सगुण और निर्गुण की एकरूपता का निरूपण उन्होंने अपनी रचनाओं में अनेक स्थानों पर किया है। तुलसीदास की चिंतनधारा वेदों, उपनिषदों, शैव–शाक्त–वैष्णव, तंत्रों, निगम– आगम और पुराणों का समन्वित रूप है। शिव–पार्वती, याज्ञवल्क्य–भारद्वाज और काकभुशुण्डि–गरुड के संवाद यही प्रमाणित करने के लिए हैं। समन्वयवादी तुलसी के ब्रह्म राम के स्वरूप–विश्लेषण का निचोड़ है–

हरि ब्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रकट
होहिं मैं जाना। –रा.च.मा., 1/185/3

अर्थात् निर्गुण–निराकार एवं अदृश्य रूप में सर्वत्र व्याप्त ब्रह्म भक्ति एवं प्रेम के वशीभूत सगुण साकार रूप में प्रकट होता है।

– एन.डी.–57, पीतमपुरा, दिल्ली–110034

❑❑❑

राम कवन प्रभु पूछऊँ तोही

वीरेश कुमार

ऊपर–ऊपर से सरल सा दिखाई देनेवाला यह प्रश्न वास्तव में कितना गहन और गूढ़ है इसका थोड़ा–बहुत आभास मानस के पारायणकर्ता और अध्येताओं को ही होता है।

राम कवन प्रभु पूछऊँ तोही। कहिय बुझाइ कृपानिधि मोही।।[1]

यह प्रश्न महर्षि भारद्वाज ने याज्ञवल्क्य जी से पूछा था। इस प्रकार के प्रश्न राम कथा में कई जिज्ञासुओं ने पूछे हैं जिनके विशद उत्तर संबंधित वक्ताओं ने दिए हैं और राम कथा की पतितपावनी गंगा का प्रवाह वहीं से हुआ है। इसे राम तत्व मीमांसा और राम–रहस्य भी कहा गया है। देवी पार्वती ने तो अपने सप्त–प्रश्न प्रकरण में इसी शब्द का प्रयोग किया है–

औरउ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल–बिबेका।।[2]

इससे पहले उमा ने पूछा है–

पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बखानी। जेहिं विज्ञान मगन मुनि ज्ञानि।।[3]

अर्थात् राम तत्व की महिमा कोई साधारण ज्ञान नहीं बल्कि विशेष ज्ञान या विज्ञान है और बड़े–बड़े सत्संगी तथा ज्ञानी स्त्री–पुरुष भी भगवान भुवनमोहिनी माया के वशीभूत होकर इस तत्वज्ञान से अनभिज्ञ रह जाते हैं जब तक कोई शंकर, कोई याज्ञवल्क्य और कोई काकभुसुंडि उन्हें इस रहस्य का बोध न करा दे।

भारद्वाज से बड़ा ज्ञानी कौन होगा जो तीर्थराज प्रयाग में निवास करते हैं और ज्ञान चर्चा में लीन रहते हैं। इनके बारे में गोस्वामी जी लिखते हैं–

भारद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हिहिं रामपद काति अनुरागा।
तापस सम दम दया निधान। परमारथ पथ परम सुजाना।।
दोहा– *ब्रह्मनिरूपण धरमविधि, बरनहिं तत्व बिभाग।*
कहहिं भगति भगवंत के संयुत ज्ञान बिरागा।।

ऐसे भक्त, ज्ञानी और वैरागी को भी मोह हुआ–भगवान श्रीराम के सच्चे स्वरूप के संबंध में और उन्होंने याज्ञवल्क्य जी से पूछा–

राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुराण उपनिषद गावा।।
संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ज्ञान गुन रासी।।
राम कवन प्रभु पूछऊँ तोही। कहिय बुझाइ कृपानिधि मोही।।
एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित विदित संसारा।।
नारि विरह दुख लहेऊ अपारा।। भयउ रोषु रन राबनु मारा।
दोहा–प्रभु सोइ राम कि अपर कोऊ, जाहि जपत त्रिपुरारि।

सत्य धाम सर्वज्ञ तुम कहहु बिबेक बिचारि।।[4]

ये राम अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र राम हैं या कोई और हैं? यह प्रश्न भारतीय ज्ञान मीमांसा में बड़ा पुराना है। इसका अपने ढंग से समाधान करते हुए कबीर ने भी कहा–

दशरथ सुत तिहु लोक बखाना। राम–नाम
का मरमु है आना।।

लेकिन यह 'आना–मरम' है, इसका खुलासा कबीर साहब ने यहाँ पर नहीं किया है। हालाँकि कबीरदास जी की गुरुपंरपरा में ही उनसे बीस पीढ़ी ऊपर श्री शठकोपाचार्य जी हुए जिन्होंने अपनी 'सहस्रगीति' नामक कृति में स्पष्ट घोषणा की है– "दशरथस्य सुतं तं बिना अन्य शरणवान्नास्मि" –अर्थात् दशरथ के पुत्र राम के सिवा अन्य किसी की शरण में नहीं हूँ।[5]

इसी प्रकार का मोह सती महारानी को हुआ जो राम कथा के प्रथम रचयिता भगवान शंकर की अर्द्धांगिनी हैं और सदा उनके साथ रही हैं। सीता हरण के पश्चात् दंडकारण्य में नरलीला करते हुए भगवान को देखकर वे सोचने लगीं–

दोहा– *ब्रह्म जो व्यापक विरज अज अकल*
अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होहिं नर जाहि न जानत
वेद।।
चौपाई– *अस संसय मन भयउ अपारा। होइ*
न हृदय प्रबोध प्रचारा।।[6]

ऐसा ही व्यामोह गरुड़ जी को हुआ जो सदा ही हरि के साथ वाहन के रूप में रहते हैं जब उन्होंने लंका की युद्ध भूमि में भगवान को मेघनाद के चलाए नागपाश में बँधे हुए देखा–

चौपाई– *प्रभु बंधन समुझत बहुभांती। करत*
विचार उरग आराती।।
व्यापक ब्रह्म बिरज बगीसा। माया मोह पार
परमीसा।।
सो अवतार सुनेऊँ जग माहीं। देखेउँ सो
प्रभाव कछु नाहीं।।
दोहा– *भव बंधन ते छूटहीं नर जपि जाकर*
नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेऊ नाग पास सोई राम।।

भारद्वाज और गरुड़ जी का मोह तो शायद अपने गुरुओं क्रमशः याज्ञवल्क्य और काकभुसुंडि जी के उपदेशों से मिट गया लेकिन सती महारानी का मोह तो इतना गहरा निकला कि अगले जन्म में पार्वती के रूप में भी बना रहा जिसे वे स्पष्ट शब्दों में स्वीकार भी करती हैं–

मैं बन दीखि राम प्रभुताई। अति भय विकल
न तुमहिं सुनाई।।
तदपि मलिन मन बोधु न आवा। सो फलु
भली–भाँति हम पावा।।[7]

इससे पहले वे भगवान शिव से पूछ चुकी हैं–

प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं राम कहुँ
ब्रह्म अनादी।।
सेस सारदा वेद पुराना। सकल करहिं रघुपति
गुन गाना।।
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु
अनंग आराती।
रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज
अगुन अलख गति कोई।।
दोहा– *जो नृप तनय त ब्रह्म किमि नारी*
बिरह मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति
मोरि।।[8]

इस प्रकार हम देखते हैं कि राम–रहस्य की चर्चा में कुल मिलाकर ये ही प्रश्न सामने आते हैं कि राम दशरथ नामक राजा के पुत्र थे या भगवान विष्णु के सातवें अवतार थे? यदि वे अवतार थे तो उन्होंने ऐसे–ऐसे चरित्र क्यों किए जिसे कोई अवतारी पुरुष तो क्या साधारण मनुष्य भी सामान्यतया नहीं करता। जैसे– पत्नी के अपहृत हो जाने पर बाबला होकर पशु–पक्षियों और वृक्षों तथा लताओं के गले लगकर प्रलाप करना। युद्ध क्षेत्र में भाई के मूर्च्छित हो जाने पर बिलख–बिलख कर विलाप करना आदि।

इसका सामान्य उत्तर तो यह है कि यद्यपि राम भगवान के अवतार हैं किंतु इस समय वे नरलीला कर रहे हैं। जैसा कि उन्होंने सीताजी से स्वयं कहा है– (उनके हरण से तुरंत पहले)

दोहा– *लछिमन गए बनहिं जब, लेन मूल*
फल कंद।

जनकसुता सन बोले, बिहसि कृपा सुख वृंद।।
चौपाई– *सुनहु प्रिया ब्रत रूचिर सुसीला।*
मैं कछु करबि ललित नरलीला।।
तुम्ह पालक सहुँ करहुं निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा।
लछिमन हूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना।।[9]

और यह लीला चरित इतना गूढ़ है कि दिन–रात साथ रहनेवाले सेवक और भ्राता लक्ष्मण भी इसका मर्म नहीं जान पाते, अन्य लोगों का तो कहना ही क्या है?

हालाँकि यह प्रकरण भी प्रवादों से परे नहीं है। इस संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं–

"विद्वानों का अनुमान है कि मूल काव्य (वाल्मीकि रामायण) में राम विष्णु के अवतार नहीं कहे गए हैं, बाद में चलकर मूल ग्रंथ में इस प्रकार की बातें प्रक्षेप की गई होंगी। बालकांड और उत्तरकांड निश्चित रूप से परवर्ती रचनाएँ हैं। इन्हीं दोनों में राम को विष्णु का अवतार माना गया है और दूसरे से छठे कांड तक रामचंद्र लौकिक नायक की भाँति अंकित किए गए हैं।"[10]

यद्यपि किसी रचना या उसके नायक के बारे में विद्वान क्या सोचते हैं– यह महत्वपूर्ण अवश्य है किंतु इसका अधिकतर अकादमिक महत्व ही है। इस बारे में आम लोग क्या सोचते हैं– व्यावहारिक तौर पर यह ज्यादा महत्वपूर्ण है। तो "लोकजीवन पर इस ग्रंथ का जबरदस्त प्रभाव है"[11] यह तो द्विवेदी जी भी मानते हैं। और इस लोकमानस की प्रत्यक्ष अनुभूति हमें तुलसी के यहाँ होती है। तुलसी के राम विष्णु के अवतार मात्र नहीं हैं। वे तो 'सच्चिदानंद परधाम' हैं। भगवान शंकर ने उनके इसी मूल स्वरूप की अभ्यर्थना 'जय सच्चिदानंद जग पावन' आदि कहकर की है।"[12]

वे 'ब्रह्म' जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद'[13] हैं जिनके भेद को वेद भी ठीक तरह से नहीं जानते हैं और 'नेति–नेति' कहकर जिनके स्वरूप के वर्णन की असफल चेष्टा करते हैं।

भगवान शंकर कहते हैं–

छंद– *मुनी धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं।*
केहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं।।
सोई रामु व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुल मनी।।

भगवान श्रीराम के इस व्यापक ब्रह्म रूप के दर्शन कई पात्रों को हुए और विभिन्न कारणों से हुए। सर्वप्रथम मनु और शतरूपा जी को भगवान के इस तत्व रूप के दर्शन तपस्या और प्रेम के कारण हुए। उनकी यह दृढ़ मनोकामना थी–

चौपाई– *जो सरूप बस सिव मन मांही। जेहि कारण मुनि जतन कराहीं।।*
जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा।।
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन।।
दंपति बचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे।।
भगत बछल प्रभु कृपा निधाना। विस्ववास प्रगेट भगवाना।।

× × × × × ×

बाम भाग सोहति अनुकूला। आदि शक्ति छविनिधि नवमूला।।
जासु अंस उपजहिं गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।।[14]

यह अंतिम अर्धाली ध्यान देने योग्य है। इन विश्ववास (जिनके भीतर समस्त विश्व निवास करता है) भगवान की जो आदि शक्ति हैं वे लक्ष्मी नहीं हैं। ये तो वह जगमूला छविनिधि हैं जिनके अंश मात्र से अनगिनत लक्ष्मियों, उमाओं और ब्रह्मानियों का जन्म होता है। इससे यह स्पष्ट है कि तुलसी के ये राम त्रिदेव की परिभाषा की सीमा में भी परे हैं।

अपनी मूढ़ता और अज्ञान के कारण ही सही, विश्ववास भगवान के इसी रूप के दर्शन सती

माता को भी हुए जब वे दंडकारण्य में लीला रत भगवान की परीक्षा लेने गई थीं। इस संबंध में तुलसी लिखते हैं–

सतीं दीख कौतुक मग जाता। आगें रामु सहित श्री भ्राता।।
फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर वेषा।।
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना।।
देखे सिव बिधि बिष्णु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका।।
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिविध वेष देखे सब देवा।।
दोहा– *सती बिधात्री इंदिरा देखीं अमित अनूप।*
जेहिं–जेहिं वेष अजादि सुर तेहि तेहि तनु अनुरूप।[15]

यही वह 'राम–रहस्य' है जिसको जानने की अभिलाषा माता पार्वती ने भगवान शंकर से की थी और यही याचना महर्षि भारद्वाज ने याज्ञवल्क्य जी से तथा पक्षिराज गरुड़ ने काकभुसुंडी जी से की थी। यही राम तत्व की माया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बालकांड, पृ. 63
2. बालकांड, गुटका पृ. 99
3. बालकांड, गुटका पृ. 99
4. बालकांड गुटका पृ. 63
5. रामचंद्र शुक्ल, 1940, हिंदी साहित्य का इतिहास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. 118

(कबीर से एक पीढ़ी ऊपर गुरु रामानंद, उनसे चौदह पीढ़ी ऊपर स्वामी रामानुजाचार्य जी और उनसे पाँच पीढ़ी ऊपर शठकोपाचार्य जी)

6. बालकांड, गुटका पृ. 65
7. बालकांड, गुटका पृ. 98
8. वही पृ. 97
9. वही, पृ. 423
10. हिंदी साहित्य की भूमिका, 1969, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पटना, पृ. 165
11. वही, पृ. उपरोक्त
12. उपरोक्त
13. मानस, गुटका, पृ. 65
14. मानस, गुटका पृ. 117
15. उपरोक्त, पृ. 65

– राष्ट्रीय परीक्षण सेवा, भा.भा.सं., मैसूर, भारत

❑❑❑

मैं न जिऊँ बिन राम

नीरजा माधव

पूजन की संपूर्णता परिक्रमा से होती है। अर्थात् पूजा करने में यदि कोई अभाव रह जाता है तो उसे परिक्रमा कर लेने से पूर्ण मान लेते हैं। "यानि कानि पापानि..... नश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे।" पूज्य श्री आदि शंकराचार्य के परावतार स्वामी स्वरूपानंद सरस्वतीजी महाराज ने नवंबर, 2006 में राम जन्मभूमि की परिक्रमा करने की उद्घोषणा की तो पूरे राष्ट्र में एक खलबली सी मची। किसी ने उसे किसी राजनीतिक पार्टी की नई चाल समझा तो किसी ने राजनीति से उकताए और धर्म की लगातार अवमानना से क्षुब्ध संत समाज का शांत आक्रोश बताया। किसी और मंदिर की परिक्रमा करने की बात होती तो शायद बात इतनी तेजी से न फैलती, लेकिन राम जन्मभूमि के मुद्दे पर यह समाचार खर–पतवार में लगी आग की तरह तेजी से यहाँ से वहाँ तक फैलती चली गई। मेरे मन में सोए राम ने भी अँगड़ाई लेते हुए आँखें खोल दीं। मैंने मन से पूछा– आखिर यह राम कौन है, जो इतना विवादित भी है और निर्विवादित सत्य की पहचान भी। कोई रोम–रोम से झटककर अलग करने पर तुला हुआ है, तो किसी की साँस उसी के नाम पर उठती–गिरती है। क्रौंच वध से उद्वेलित वाल्मीकि को देववाणी हुई कि राम कथा लिखो, तो दूसरी ओर सनातन मान्यता के अनुसार एक पूरा युग राम के नाम हो गया। उस युग में ब्रह्मस्वरूप राम ने नर–लीला की। तरह–तरह के संघर्ष किए, राक्षसों का वध और सुराज्य की स्थापना की। अग्निपरीक्षा और सीता–निष्कासन को लेकर अपने युग से आज तक आरोपों–प्रत्यारोपों में घिरे राम, फिर भी उनकी लीला अनवरत चल रही है। गली–मुहल्लों से लेकर गाँव, शहर, सिनेमा और अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों तक। स्थूल से लेकर सूक्ष्म तक, जीवन से लेकर मरण तक। न जाने कैसा है यह राम तत्व, जो इतने विवादों, अस्वीकारों के बाद भी और गहराई से जड़ें जमाता जाता है, इतनी गहरी कि विरोधियों को भी उसे उखाड़ने के प्रयास में झुकना ही पड़ जा रहा है। वैसे भी किसी वस्तु को समूल उखाड़ने के लिए पहले उसके सामने झुकना ही पड़ता है और यह राम तत्व जहाँ उच्छेद के लिए झुकते ही न जाने कौन सा जादू होता है कि आदमी बिछ जाता है राम के चरणों में। स्थूलकाया नतमस्तक हो, न हो, लेकिन अंतरात्मा नतमस्तक हो जाती है। पृथ्वी की तरह एक गुरुत्वाकर्षण अपनी ओर खींच ही लेता है। हर युग की प्रजा के साथ राजाओं–महाराजाओं तक को अपनी ओर खींचा इस राम तत्व ने।

तुलसी बाबा लाख विसंगतियों के बीच भी राम के दास बने फिरते रहे और चित्रकूट के घाट पर उन्हीं के द्वारा घिसे चंदन का तिलक लगाकर रघुवीर ने उन्हें संतों और विद्वानों के तारामंडल में चंद्रमा की तरह सजाकर रख दिया। आज उस चंद्रमा को पद्दलित करने और रौंदने का प्रयास भले ही चल रहा हो, लेकिन किसी के अस्तित्व

को मिटाने का व्यापार ही उसके स्वीकार का प्रमाण है। फक्कड़ कवि कबीर आए। सभी को एक स्वर से ललकारा। हिंदुओं को उनके पाखंड के लिए तो मुसलमानों को उनकी कट्टरता के लिए। किसी ने बुरा नहीं माना। बल्कि उनकी मृत्यु के बाद उनके पार्थिव शरीर को लेकर दोनों वर्गों के शिष्यों में झगड़ा–टंटा अवश्य हुआ। लेकिन उस निर्गुनिया कबीर को भी पिय के रूप में राम ही भा गए। राम की बहुरिया बन पूर्णता प्राप्त की उन्होंने। फूटा कुंभ, जल–जल ही समाना के द्वारा आत्मा–परमात्मा, जीव और ब्रह्म का अद्वैत स्थापित किया। *कस्तूरी कुंडलि बसे, मृग ढूँढ़े वन माँहि, ऐसे घट–घट राम हैं, दुनिया देखे नाहिं।* वस्तुतः कबीर के लिए राम परब्रह्म के पर्याय हैं। इसे पौराणिक काल का प्रभाव कहा जा सकता है, क्योंकि पुराणों में परब्रह्म के अवतार के रूप में राम की प्रतिष्ठा हुई है। 'अध्यात्म रामायण' के अनुसार जिसमें सभी देवता रमण करें, यानी परमशक्ति, वही राम है।

ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी द्वारा संवत् 2020 (वसंत पंचमी) में प्रकाशित हिंदी साहित्य कोश में राम और राम कथा साहित्य के विकास की एक विस्तृत व्याख्या मिलती है। उसके अनुसार वैदिककाल के पश्चात् संभवतः छठीं शताब्दी ई. पू. में इक्ष्वाकु वंश के सूत्रों द्वारा ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर राम कथा विषयक गाथाओं की सृष्टि होने लगी थी। आदिकवि वाल्मीकि ने इन आख्यानों के आधार पर एक विस्तृत प्रबंध–काव्य की रचना की। अवतारवाद की भावना सर्वप्रथम 'शतपथब्राह्मण' में दिखाई पड़ती है।

आगे चलकर राम कथा की लोकप्रियता को ध्यान में रखकर बौद्धों और जैनियों ने भी राम को अपने–अपने धर्म में एक महत्वपूर्ण स्थान दिया। बौद् धर्म में 'दशरथ जातक', 'अनामकं जातकम्' तथा 'दशरथ कथानकम्' जैसे जातक साहित्य में राम को बोधिसत्व मानकर राम कथा को स्थापित किया गया। जैन धर्म में बौद्ध धर्म की अपेक्षा अधिक समय तक राम कथा की लोकप्रियता परिलक्षित होती है। विमल सूरी ने सर्वप्रथम ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी में प्राकृत भाषा में 'पउम चरिउ' लिखा। बाद में इसका संस्कृत रूपांतरण 'पद्मचरित' नाम से विख्यात हुआ। हेमचंद्र कृत 'जैन रामायण' जिनदास कृत 'राम पुराण', कन्नड भाषा में नागचंद कृत 'पम्प रामायण', देवप्प कृत 'राम विजय चरित' आदि साहित्य प्रतिष्ठित हुए। रामचरित को लेकर संस्कृत, प्राकृत तथा कन्नड में अनेक ग्रंथों की रचना हुई। उत्तर से लेकर दक्षिण तक, पूरब से लेकर पश्चिम तक अनेक भाषाओं में राम कथा विषयक प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य उपलब्ध होता है।

विदेशों में राम कथा का प्रसार बौद्धों द्वारा भी हुआ। 'अनामकं जातकम्' तथा 'दशरथ कथानकम्' का चीनी भाषा में अनुवाद हुआ। उसके बाद संभवतः आठवीं शताब्दी ई. में 'तिब्बती रामायण' की रचना हुई। 'खोतानी रामायण' का काल निर्धारण लगभग नवीं शताब्दी का है और यह पूर्वी तुर्किस्तान से संबद्ध है। कंबोडिया में 'रामकेति' (16वीं शताब्दी ई.) तथा ब्रह्मदेश में यू तो ने 'राम यागन' की रचना की, जो उस देश का एक महत्वपूर्ण काव्यग्रंथ माना जाता है। स्पष्ट है कि विश्व साहित्य के इतिहास में ऐसा अन्य कोई चरित्र नहीं दिखाई पड़ता तो वैश्विक स्तर पर जनमानस से लेकर साहित्य तक को आच्छादित कर सके। साहित्य से लेकर लोकमानस तक राम और उनका उत्कर्ष आज तक वैसे ही अक्षुण्ण है।

राम के इस विराट् रूप को पूर्णतः देख सकने मे असमर्थ आँखें झिप जाती हैं। झिपतीं हैं तो पुनः अपने आस–पास देखने का व्यापार शुरू हो जाता है। चालीस वर्ष पहले के अपने बचपन की स्मृति में रामलीला शुरू हो जाती है। शाम से ही खाना जल्दी बनाकर ताईजी की छत से रामलीला देखने की माँ की हड़बड़ी और हमारा उल्लास आज के चाकचिक्य वाले एक डिब्बेनुमा यंत्र में कहीं हेरा गया है, लेकिन उस डिब्बे का भी काम रामलीला के बिना नहीं चलता। माँ ताईजी की छत पर अपनी समवरियों के साथ बैठ जातीं और हम बच्चे रामलीला मंच के आगे भूमि पर आस–पास पड़ी ईंट को पीढ़ा बनाकर। एकटक मुँह खोले उत्सुकता से फुलवारी, धनुष–यज्ञ, स्वयंवर, दशरथ–विलाप, वनवास से लेकर रावण–वध और अयोध्या

तक लौटने का प्रसंग प्रतिदिन किसी नेमी–धर्मी गंगा–स्नानार्थी की तरह देखा करते। हममें से ही राम–सीता बने बच्चे कुछ विशेष हो उठते। चमकीली या गेरुआ पोशाकें, सिर पर नकली ही सकी, चमकता मुकुट, चेहरे का साज–सँवार हमें लुभाता। राम बनकर सबका दिल जीत लेने की इच्छा मन में अँगड़ाई लेती। लेकिन राम तो कोई एक ही बन सकता है। समूचे गाँव, कस्बे या मोहल्ले के बच्चे तो राम बनकर मंच पर नहीं उतर सकते। मन मसोसकर रह जाता। वह मसोस आज तक जारी है। हम राम बनना चाहते हैं, लेकिन कहाँ से लाएँ वह विराट् स्वरूप। हृदय की वह विशालता और उदारता? राम को अंतर में उतार ही लें तो काम सध जाए, लेकिन भीतर के अँधेरे में वह श्यामलता फिसल–फिसल जाती है। राम की तरह राज–पाट छोड़ने के नाम पर अकिंचन हो हम बिसूरने लगते हैं। क्या है हमारे पास? एक मैं तो छूटता नहीं, धन जन की बात क्या। उसी 'मैं' का साम्राज्य लिए जीवन भर भटकता मन अंत में राम की शरण में आता है। राम स्वयं न स्वीकारें उस 'मैं' के साम्राज्य को तो अपनी चरण रज ही दे दें। उससे भी यह साम्राज्य नियंत्रित हो लेगा।

कभी–कभी सोचती हूँ तो आश्चर्य होता है। साम्राज्य हथियाने के नाम पर नाना प्रकार के कपट, छल, छूरा घोंपने का इतिहास और वर्तमान सामने है। ऐसे में किसी कालखंड के साम्राज्य में एक जोड़ी खड़ाऊँ ने चौहद वर्षों तक शासन किया हो और प्रजा में कहीं से असंतोष या छल–छद्म की एक चिनगारी भी न फूटी हो, यह विस्मित करने वाली घटना है। यह बात पृथक् है कि परवर्ती और आधुनिक युग में उसी सुशासन के नाम पर, उसकी सत्यता और उस सत्य को भेदने के चक्कर में कई–कई ज्वालामुखी फोड़ने का प्रयास किया जाता रहा है, लेकिन वह अपनी ही हवा में चकरघिन्नी की तरह उड़कर शीतल लावा बन बह जाता है। सत्ता के गलियारों और धर्मनेताओं के नारों से परे केवल लेखक वर्ग के बीच ऐसे ही न जाने कितने तथाकथित ज्वालामुखियों से वास्ता पड़ता रहता है। नासा के वैज्ञानिकों ने श्रीराम सेतु का अंतरिक्षयान से चित्र लिया और अपनी परख के बाद उसे लगभग साढ़े सत्रह लाख वर्ष पुराना घोषित किया। एक वक्री–पथिक लेखक ने तुरंत अपनी नई दृष्टि प्रस्तुत करने का भौगोलिक संरचना का परिणाम है। मानो पीढ़ियों से राम के खानदान के पट्‌टीदार रहे हैं और आज उनके अस्तित्व को खरिज करने का सुनहरा मौका हाथ लग गया है।

वाम–पंथ का झोला ढोने वाले एक ऐसे ही देवतुल्य देवनाम मेरे घर आए। छिड़ते–छिड़ते चर्चा राम पर आकर टिकनी थी, सो टिक गई। आर.एस.एस. के राम और विहिप के राम का निंदा–पुराण शुरू हुआ। मैंने विनम्रतापूर्वक दोनों ही संगठनों के हाथों से राम–नाम की गठरी छीनकर उनके हाथों में थमाने के कोशिश की। 'छोड़िए देवता, लीजिए ये रहे केवल आपके राम। अब तो मानेंगे?' उन्हें अपने हाथों में थमे आधुनिक हल्के झोले की चिंता हुई। इसे छोड़ राम–नाम की इतनी भारी गठरी कैसे सँभालें? फिर आगे–आगे चलने वाले उनके झंडाबरदार। कितनी लानत–मलामत भेजेंगे उनके नाम। तपाक से उनका बचकाना तर्क गूँजा, 'क्या प्रमाण है कि इसी अयोध्या में राम का जन्म हुआ था?' मैं उनके भी जन्म पर सशंकित होते हुए बस इतना ही कह सकी कि विश्व में कहीं भी सरयू के किनारे अयोध्या का भूगोल आपने पढ़ा हो तो चलिए वहीं के लिए राम जन्मभूमि का दावा ठोंक दें। निरुत्तर से कुछ देर वे इधर–उधर देखते रहे और बड़ी उपेक्षा से अपने शास्त्रीय ज्ञान की अल्पज्ञता प्रकट की। मुझे आश्चर्य हुआ कि जिन्हें ग्रंथों से इतनी अरुचि है, वे खंडन–मंडन के शास्त्रार्थ में दिलचस्पी क्यों लेते हैं? राम को ही खारिज करने की इतनी उठा–पटक क्यों? दूसरे धर्म–प्रवर्तकों की क्यों नहीं? फिर एक बार खारिज कर दिया तो कर दिया। बार–बार उस पर हाय तोबा, चीखना–चिल्लाना जारी रखने का क्या मतलब? एक चिर नवीन स्मृति की तरह राम बार–बार क्यों कौंध उठते हैं? एक दुखद घटना के उदाहरण से ही संपुष्टि कर देती हूँ। एक वरिष्ठ जनवादी आलोचक के युवा पुत्र का असमय निधन हो गया। अर्थी उठाकर लोग चलने लगे तो दुख के कारण किसी के कोई बोल नहीं फूटे। एकाएक बिलखते हुए

पिता ने कंधा देते दूसरे लोगों से कहा, 'अरे, राम–नाम सत्य है, बोलो।' और स्वयं फूट–फूट कर रोने लगे।

हर ऐसी घटना के बाद मन में वही प्रश्नाकुलता होती है– आखिर यह राम कौन हैं? क्यों इसके बिना किसी भी काल या क्षण में जीवन–जीवन नहीं होता, मरण अनंत यात्रा का द्वार नहीं बन पाता? उसके अस्तित्व को खारिज करने की तमाम कोशिशें स्वयमेव खारिज हो जाती हैं?

अभी हाल में एक समाचार पढ़ने को मिला। जौनपुर जिले में कुछ लोगों को बहला–फुसलाकर धर्मांतरित किया गया और अनुष्ठान के अंग के रूप में राम, विष्णु आदि के चित्र कुएँ में डलवाए गए। राम के चित्र के साथ उनके अस्तित्व को भी कुएँ में डूबाने की बचकानी कोशिश पर हँसी आई। पत्थर को अपने स्पर्श से तार देने वाले राम, समुद्र में अपने प्रताप से बड़ी–बड़ी शिलाओं को तैरा देने वाले राम, सागर को सोख लेने, वन्य जीव–जंतुओ को भी वश में करके संगठित करने वाले राम, और भी न जाने कितने अद्भुत कारनामों से मिथक बने राम को उन लोगों ने अपने हिसाब से कुएँ में डुबा दिया। अब उनका स्मरण भी कोई नहीं कर पाएगा। इस तरह अपनी भी स्मृति को कुएँ में डूबा देने का व्यापार हुआ, ताकि अंधे कुएँ से राम की स्मृति भी बाहर न आ सके। स्मृति समाप्त तो राम समाप्त। यानी राम को समाप्त करने के लिए अपनी स्मृति को पहले समाप्त करना होता है। स्मृति यानी मस्तिष्क का वह महत्वपूर्ण कोना जिससे हम हम होते हैं, संसार से नाता होता है, नाते रिश्तेदार होते हैं और होता है हमारा जीवन–चक्र। उसी स्मृति के नष्ट होते ही सब कुछ पार्थिव हो जाता है।

एक कथा याद आती है। एक असाध्य रोग से पीड़ित व्यक्ति डॉक्टर के पास गया। बड़े विश्वास के साथ अपने पास आए उस रोगी को देखकर डॉक्टर दुविधा में पड़ गया। कैसे कहे कि असाध्य रोग ठीक नहीं होगा, और यह भी कि कैसे उसका विश्वास एक झटके में तोड़ दे। अंततः डॉक्टर ने कुछ दवाइयाँ लिखीं और परहेज में दवा खाते समय बंदर की याद न करने का मशविरा। परिणाम, हर दिन दवा खाते समय परहेज के साथ बंदर का स्मरण हो ही जाए। इस तरह का परहेज करने वालों के लिए दुर्निवार हो उठते हैं राम। झुठलाने और मिथ्या साबित करने की तमाम कोशिशें अपने आप खारिज होती जाती हैं। यह तो परहेजी लोगों के राम की दुर्निवार स्मृति है।

भारत में एक बड़ा वर्ग अपने नाम के आगे बड़े गर्व से राम जोड़ता है। राम अवतार, रामधारी, रामबचन, रामदास, राम उजागिर, राम दुलार जैसे अनेक नामों में यदि राम पहले ही जुड़ जाते हैं तो बाद में सिंह या पांडे, मिसिर, खरे आदि जैसी दीनता के जुड़ने की गुंजाइश बनी रहती है, लेकिन नाम के बाद राम की उपस्थिति इन सारी कृत्रिमताओं को परे ढकेल देती हैं। मेरे गाँव की जोखू कक्का बो अकसर अपने पति को याद करते हुए बताती– हमरे राम परदेस गए हैं कमाए खातिर। और बताते–बताते आँखे पनीली हो उठतीं, जिसे चुपके से वह साड़ी के कोर से पोंछ लेती। मैं मुट्ठी भर उन अत्याधुनिक महिलाओं की बात नहीं करती, जिनके लिए उनके पति राम नहीं बल्कि हस्बैंड से भी आगे पार्टनर हो गए हैं अथवा उन दुखियारी महिलाओं की भी बातें नहीं करती, जिनके राम रावण से भी बदतर आचरण करने लगे हैं, लेकिन अधिकांश मध्य एवं निम्न मध्यवर्गीय तथा आधुनिक भारतीय स्त्रियों के लिए पति राम होते हैं। अपने श्रद्धेय बप्पा (श्वसुरजी) के निधन के उपरांत हम सबकी कोशिश यही रहती कि अम्मा (सासू माँ) अकेलापन न महसूस करने पावें, इसलिए बारी–बारी से कोई–न–कोई उनके आस–पास बना रहता। एक दिन अम्माँ चारपाई पर लेटे–लेटे आकाश की ओर निर्निमेष देख रही थीं। हमारी उपस्थिति से बेखबर उनके ओंठ भजन गुनगुना रहे थे– 'जरि जाय ई देहियाँ राम बिना'। हमारी आँखें छलछला आई थीं। राम के बिना जीवन के व्यर्थता–बोध का यह सहज उद्घाटन क्या किसी शास्त्रीय ज्ञान या वाद–विवाद का मुखापेक्षी है? पति यानी राम, राम यानी जीवन, प्राण–शक्ति, जिसके बिना इस जीवन का कोई अर्थ नहीं। कोई कह सकता है कि यह सत्य केवल भारतीय नारी का सत्य है, पश्चिमी नारी का नहीं। मेरी भी

अस्वीकृति नहीं है इससे। राम भी तो हर उस मन का सत्य है, जो भारतीय है, भारत से जुड़ाव रचाता इसीलिए शास्त्रों और मंत्रों से परे अपढ़ जन भी 'रामहि राम रटन करु जीभिया रे' गुनगुनाता है। जन–जन की जिह्वा पर बसे राम, जन–जन के प्राण राम, जिनके लिए भरत के मुख से भी निकल जाता है– 'जननी, मैं न जिऊँ बिन राम।'

राम केवल राजा होते, न्यायी होते, सदाचारी होते, धर्म–प्रवर्त्तक होते तो शायद इतिहास के इतने लंबे अंतराल को पार कर उनकी स्मृति भी अन्य राजाओं–महाराजाओं या न्यायप्रिय, सदाचारियों, धर्माचारियों की तरह आज तक क्षीण हो चुकी होती। मात्र इतिहास बनकर रह गए होते वे भी। लेकिन राम इतिहास नहीं हैं। हर पलांश के वर्तमान हैं, मानव मात्र की जीवनीशक्ति हैं वे। धर्म का कोई अपना पंथ न चलाते हुए भी धर्म का आदि और अंत बने हैं। स्थूल रूप में अपने युग में नर–लीला करते हुए भी अतीत नहीं हैं, वर्तमान हैं। हर पल, हर प्राणी के संग हैं, प्राण हैं, इसलिए झुठलाए नहीं जा सकते। अपनी ही पहचान हमारे राम की पहचान है। जब तक हम स्वयं को जानने का प्रयास नहीं करते, तब तक राम भी इससे अपरिचित बने मुसकुराते रहते हैं। ज्यों ही हमारा स्वयं से परिचय होना शुरू होता है, वे हमारे हो जाते हैं और हम उनके। कहीं कोई भेद शेष नहीं रहता। यह अभेद ही राम है।

– मधुवन, सा. 14/96 एन–5, सारंगनाथ कॉलोनी, सारनाथ, वाराणसी–221007

❑❑❑

रामचरितमानस में राम का मानवीय सरोकार

डॉ. दीपक कुमार पांडेय

भारतीय समाज में व्यक्ति के अहम् एवं उसके 'मैं' को बहुत महत्व नहीं दिया जाता। महत्व दिया जाता है 'सर्वभूतहिते रताः' की भावना को। स्वयं को दूसरों के लिए उत्सर्ग कर देने के भाव को। 'परहित सरिस धरम नहिं भाई' का मंत्र इस समाज की आत्मा है। इस आत्मा का विकास जिस प्रारंभिक पाठशाला में होता है, उसका नाम परिवार है। परिवार को हमारे समाज में इतना महत्व इसलिए दिया जाता है, क्योंकि उसी के माध्यम से हमारे अंतर्मन में यह संकल्प दृढ़ होता है कि हमारा जीवन सभी के लिए है। परिवार से होता हुआ यह भाव संपूर्ण जीवन–जगत में व्याप्त हो जाता है। परिवार का स्वरूप कैसा होना चाहिए? मानवीय संबंधों के सरोकार, आदर्श, आचरण, शील और शिष्टाचार के मानक क्या होने चाहिए? इस विषय पर तुलसीदास से बड़ा परिचायक आपको दूसरा कोई नहीं मिलेगा। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में इन मूलभूत प्रश्नों पर विचार करते हुए मानवीय संबंधों के सरोकार एवं आदर्श की स्थापना की है। विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार– "तुलसी आदर्श व्यवस्था का स्वप्न ही नहीं देखते, उसके अनुसार वे अपने पात्रों को गढ़ते भी हैं। वे राम को आदर्श राजा, पुत्र, भाई, पति, स्वामी, शिष्य, सीता को आदर्श पत्नी और हनुमान को आदर्श सेवक के रूप में चित्रित करते हैं।"[1] राम के मानवीय सरोकारों की जैसी स्पष्ट झलक हमें तुलसीदास कृत रामचरितमानस में दिखाई देती है, वैसी हिंदी के किसी अन्य कवि के काव्य में नहीं दिखाई देती। प्रश्न उठता है, क्या आज का हमारा आधुनिकता से ग्रस्त समाज उन मानवीय मूल्यों और आदर्शों पर खरा उतरता है, जिसकी प्रस्तावना रामचरितमानस में है?

आज जहाँ एक तरफ हम अपने माता–पिता, भाई–बहन, गुरुजनों, मित्रों और सेवकों के प्रति सम्मान का दम भरते हैं, वहीं दूसरी तरफ उन्हीं का अनादर करते हैं। संसार में आज जहाँ भी मानवीय सरोकारों का पतन हुआ है, वहाँ अराजकता ही फैली है। आज एक ही परिवार में, एक ही छत के नीचे रहने वाले लोग अलग–अलग प्रकार से जीवन व्यतीत करते हैं। एक–दूसरे के मन का हाल भी नहीं पता होता। रिश्तों की ऊष्मा क्षीण हो गई है। आपसी संबंधों के कमजोर होने के कारण ही समाज में हताशा और निराशा ने घर कर लिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे आपसी संबंधों के धागे से ही समाज का ताना–बाना तैयार होता है। इस परिप्रेक्ष्य में रामचरितमानस में मानवीय सरोकारों पर विशेष बल दिया गया है, जो आज के लिए भी आदर्श हो सकता है। जरूरत है निःस्वार्थ संबंधों की, एक दूसरे के प्रति वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष और भेदभाव के विपरीत त्याग, सम्मान, स्नेह और प्रेम की।

पारिवारिक मूल्य

तुलसीदास रामचरितमानस में पारिवारिक आदर्श के हिमायती दिखाई देते हैं। वे परिवार में त्याग, समर्पण, स्वार्थ–हीनता और शिष्टाचार की भावना के प्रबल पक्षधर हैं। इसलिए उन्होंने

माता–पुत्र, पिता–पुत्र, भाई–भाई, पति–पत्नी, मित्र–मित्र, ससुर–बहू, सास–बहू, भाभी–देवर, ज्येष्ठ –अनुज वधू, गुरु–शिष्य आदि सभी संबंधों का आदर्श प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि तुलसीदास के रामचरितमानस की पहुँच घर–घर में है। आज हमें रामचरितमानस में अभिव्यक्त आदर्शों की महती आवश्यकता है। इस संदर्भ में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं– "तुलसी की पहुँच घर–घर में है, या वे व्यापक समाज में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं, तो इसका मुख्य कारण यह है कि गृहस्थ जीवन और आत्म–निवेदन इन दोनों अनुभव–क्षेत्रों के वे बड़े कवि हैं। 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' के युग्म में जैसे सब कुछ सिमट आया हो।"[2]

सास–ससुर एवं पुत्रवधू का संबंध

आज के समय की कुछ मुख्य समस्याओं में से एक समस्या बहू की ससुराल में होने वाली प्रताड़ना है। उसे शारीरिक एवं मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है। कहीं–कहीं तो दहेज के लिए बहुओं को जिंदा जला दिया जाता है। इसके साथ ही मायके वालों पर कटाक्ष किया जाता है और उन्हें नीचा दिखाया जाता है। ऐसे में यदि हम रामचरितमानस का आश्रय लें, तो निश्चय ही हमें इस दिशा में मार्गदर्शन प्राप्त होगा। मानस में महाराज दशरथ बहुओं की सुख–सुविधा के संबंध में व्यावहारिक बातें कौशल्यादि रानियों को समझाते हुए कहते हैं–

बधू लरिकनीं पर घर आईं। राखेहु नयन
पलक की नाईं।।

(रामचरितमानस, बालकांड, दोहा– 355/8)

बहुएँ अभी बच्ची हैं। पराए घर से आई हैं। इनको इस तरह से रखना जैसे नेत्रों को पलकें रखती हैं। अर्थात् पलकें जिस प्रकार से नेत्रों की रक्षा करती हैं और उन्हें सुख पहुँचाती हैं, वैसे ही इन्हें सुख पहुँचाना। बहुओं के प्रति यदि यही भाव हर सास–ससुर रखें, तो पारिवारिक जीवन कितना सुखद हो जाएगा।

माता–पिता और पुत्र का संबंध

हमारा जीवन माता–पिता का ही विस्तार है। यदि माता–पिता न होते तो शायद हमारे जीवन का भी कोई अस्तित्व न होता। माता–पिता की महत्ता के संदर्भ में गणेश जी की वह कहानी याद आती है, जिसमें उन्होंने माता–पिता को ही संपूर्ण सृष्टि माना है। लेकिन समय के साथ बच्चों का अपने माता–पिता के साथ निरंतर बदलता अनैतिक व्यवहार कहीं से भी हमारे जीवन के लिए हितकर नहीं है। वर्तमान समय में माता–पिता अपनी संतानों के लिए जिम्मेदारी नहीं अपितु मजबूरी बन गए हैं। एक उम्र के बाद उन्हें वृद्धाश्रम भेजना आधुनिकता का पर्याय बन गया है। गोस्वामी जी रामचरितमानस के माध्यम से इसका भी सार्थक विलोम रचते हैं–

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु
मातु बचन अनुरागी।।
तनय मातु पितु तोष निहारा। दुर्लभ जननि
सकल संसारा।।

(रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा–41/7–8)

हे माता ! सुनो वही पुत्र भाग्यशाली है, जो माता – पिता के वचनों का पालन करने वाला है। हे माता! माता–पिता को संतुष्ट रखने वाला पुत्र, सारे संसार में दुर्लभ है।

अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता
अग्या अनुसरहीं।।
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु
नावहिं माथा।।

(रामचरितमानस, बालकांड, दोहा – 205/4,7)

भाई–भाई का संबंध

भाई–भाई के बीच परस्पर प्रेम का संबंध परिवार को मजबूत बनाता है। भाइयों के बीच प्रेम न हो तो घर में कलह का वातावरण बना रहता है। घर की शांति भंग हो जाती है। आज उपभोक्तावाद के बढ़ते प्रभाव ने रिश्तों की गरमाहट को कम किया है। भाई–भाई का रिश्ता भी इससे अछूता नहीं रहा है। भाइयों के बीच समस्या पहले भी रही है, जिसका उदाहरण हमें महाभारत में देखने को मिलता है। इसी कारण महाभारत इस संदर्भ में कभी भी भारतीयों का आदर्श नहीं रहा। भाइयों के बीच कैसा रिश्ता होना चाहिए, उनके बीच आपसी प्रेम एवं सौहार्द कैसे होने चाहिए इसकी पूरी झाँकी हमें मानस में दिखलाई पड़ती है–

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं सनीती।।

(रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा– 25/3)

श्रीरामचंद्र जी भाइयों से प्रेम करते हैं और उन्हें नाना प्रकार की नीतियाँ सिखाते हैं।

आज भाइयों के बीच होने वाली संपत्ति की लड़ाई और सत्ता–संघर्ष के बीच रामचरितमानस की ये पंक्तियाँ बरबस याद आती हैं –

भरतहिं होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ।।

(रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा – 231)

जिस समय भरत चित्रकूट में रामचंद्र जी को मनाने आ रहे थे, उस समय लक्ष्मण को क्रोध आ गया। राम ने लक्ष्मण को समझाया और लक्ष्मण के भ्रम को (भरत को राज–मद हो गया है) दूर किया। राम ने कहा – अयोध्या के राज्य की बात ही क्या है! ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का पद पाकर भी भरत को राज–मद नहीं हो सकता। क्या कभी काँजी की बूँदों से क्षीरसागर विनष्ट हो सकता है? इस संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा का यह कथन समीचीन प्रतीत होता है – "रामचरितमानस के पात्रों द्वारा गोस्वामी तुलसीदास जी ने जिन नैतिक मूल्यों की स्थापना की है, वे जनता का मनोबल दृढ़ करने वाले थे। उसे संघर्ष के रास्ते पर आगे बढ़ाने वाले थे। कई हजार साल से हिंदुस्तान के लोगों को यह मंत्र सिखाया गया था– यह संसार मिथ्या है, वैराग्य और योग से सत्य के दर्शन होते हैं। काम, क्रोध, मद और लोभ मनुष्य के सबसे बड़े शत्रु हैं। गोस्वामी जी ने इसके विपरीत ऐसा दृष्टिकोण रखा, जिसमें सांसारिक जीवन के लिए जगह थी। जिसमें जनता के आए दिन के जीवन में काम आने वाले नैतिक मूल्यों की स्थापना थी। इस तरह गोस्वामी जी ने नैतिक धरातल पर लोक संघर्ष का समर्थन किया।"[3]

चित्रकूट में राम – भरत मिलाप राम कथा का बहुत मार्मिक प्रसंग हैं। यह घटना भातृप्रेम, स्नेह और त्याग का अद्‌वितीय आदर्श प्रस्तुत करती है। आचार्य शुक्ल कहते हैं– "चित्रकूट में राम और भरत का जो मिलन हुआ है शील और शील का, स्नेह और स्नेह का, नीति और नीति का मिलन है। इस मिलन से संघटित उत्कर्ष की दिव्य प्रभा देखने योग्य है। यह झाँकी अपूर्व है।"[4]

मित्रता का संबंध

मित्र तो वही है, जो सुख–दुख का भागीदार हो। केवल अपने स्वार्थवश जो मित्रता करते हैं, वे धूर्त होते हैं। मित्र अपने मित्र को सही–गलत की पहचान बताता है। उसे गलत मार्ग पर जाने से रोकता है। मित्र अपने मित्र के सम्मुख या पीठ पीछे उसकी भलाई के लिए प्रयासरत रहता है। ठीक वैसे ही जैसे रामचंद्र ने सुग्रीव से मित्रता की तो सुग्रीव का दुख रामचंद्र जी का दुख हो गया। वे उस दुख को दूर करने में अपने मित्र के साथ हो गए–

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।।
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना।।
जिन्ह के असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई।।
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा।।
देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई।।
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा।।
आगें कह मृदुबचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई।।
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं लाई।।
सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी।।

(रामचरितमानस, किष्किंधाकांड, दोहा–7/1–9)

गोस्वामी जी द्वारा इंगित मानवीय सरोकारों के इस आदर्श स्वरूप की आज महती आवश्यकता है। क्योंकि वर्तमान समय में रिश्तों के बीच कटुता बढ़ती ही जा रही है। 'यूज एंड थ्रो' के मंत्र ने सभी कोमल भावनाओं और मानवीय मूल्यों को ध्वस्त कर दिया है। जिसका सामाजिक ढाँचे पर

बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। इसलिए परिवार बचेगा तो समाज बचेगा और समाज बचेगा तभी राष्ट्र और विश्व बचेगा।

इसके अतिरिक्त तुलसी ने पारिवारिक, सामाजिक और मानवीय रिश्तों पर कलियुग के प्रभाव का भी बड़ी कुशलता से वर्णन किया है। कलियुग निशाचरी प्रवृत्तियों का द्योतक प्रतीत होता है। इसकी तुलना रामराज्य से करने पर यह वर्तमान समय में प्रत्यक्ष हो उठता है। यदि मंत्री (सचिव), वैद्य और गुरु (धर्मगुरु) या शिक्षक डर या भयवश प्रिय बोलते हैं तो यह समाज और राष्ट्र के लिए अहितकर है। इसका उल्टा प्रभाव पड़ सकता है। सचिव के भयवश कार्य संपादन से राज्य ध्वस्त हो सकता है। वैद्य के भयवश कार्य करने से (रोगी) शरीर को हानि हो सकती है। गुरु के भयवश कार्य करने पर शिक्षा तथा धर्म का पतन निश्चित है।

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास।।
(रामचरितमानस, सुंदरकांड, दोहा – 37)

इसके विपरीत मानस का चित्रकूट प्रसंग इस संदर्भ में एक आदर्श उपस्थित करता है। चित्रकूट प्रसंग के विषय में डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी का कहना है– "चित्रकूट में सुराज है। वहाँ सुख–संपति है। विवेक नरेश है, विराग सचिव है, नियम वीर है। पशु–पक्षी, मुनि जन सब प्रसन्न हैं। शासक को विवेकी, मंत्री को मोहरहित और शक्तिशालियों को संयमी होने की कितनी आवश्यकता है, यह हम आज की सामाजिक व्यवस्था में बखूबी अनुभव करते हैं।"[5]

राजा और प्रजा का संबंध

राजा और उसकी नीतियों का संबंध प्रजा के व्यवहार को निर्धारित करता है। यदि राजा सही मार्ग पर न चले तो प्रजा भी कुमार्गी हो जाती है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में रामराज्य की अवधारणा प्रस्तुत की है। इसमें राजा और प्रजा दोनों का ही व्यवहार नैतिक मूल्यों का उदाहरण है। राजा मात्र शासक ही नहीं अपितु प्रजा का सेवक भी है। रामराज्य में राजा और प्रजा के बीच भय का रिश्ता नहीं है। इस संदर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी का कहना समीचीन प्रतीत होता है– "जहाँ तक प्रजा की इच्छा को सर्वोपरि समझने का सवाल है, तुलसी अपने समय से थोड़ा आगे ही हैं। रामचरितमानस के राम राजा होने के नाते यह जरूर चाहते हैं कि लोग उनका अनुशासन मानें। लेकिन वे यह भी कहते हैं कि यदि मैं कोई अनुचित बात करूँ तो वे निर्भय होकर मुझे टोक दें।"[6]

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई।।
जौं अनीति कछु भाषौ भाई। तौं मोहि बरजहु भय बिसराई।।

लेकिन उनके यहाँ कलियुग की भी चर्चा है। जिसके प्रभाव से राज्य में अव्यवस्था व्याप्त है। लोगों की नैतिकता का दिनों–दिन ह्रास होता जा रहा है। कलियुग का प्रभाव इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है –

बरन धरम नहीं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी।।
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजाजन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।।
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।।
मिथ्यारंभ दम्भ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई।।
सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दम्भ सो बड़ आचारी।।
जो कहँ झूठ मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवन्त बखाना।।
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी।।
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला।।
अशुभ बेष भूषन धरें, भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं।।(क)
जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ।। (ख)

(रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा – 98 क, सोरठा 98 ख)

कलियुग में न वर्ण धर्म रहता है, न चारों आश्रम रहते हैं। सब स्त्री –पुरुष वेद के विरोध में लगे रहते हैं। ब्राह्मण वेद को बेचने वाले और राजा प्रजा को कष्ट देने वाले हो गए हैं। वेद की आज्ञा कोई नहीं मानता। जिसको जो अच्छा लगता है, वही उसका मार्ग है। जो ज्यादा बोलता है, वही पंडित है। जो आडंबर करता है, उसे सभी संत कहते हैं। जो दूसरे का धन हरण करता है, वही बुद्धिमान है। जो दम्भ करता है, वही बड़ा आचार्य है। जो झूठ बोलता है, हँसी– दिल्लगी करना जानता है, कलियुग में वही गुणवान कहा जाता है। जो आचारहीन है, वेद मार्ग को छोड़े हुए है, कलियुग में वही ज्ञानी और वैरागी है। जिसके बड़े–बड़े नाखून और लंबी–लंबी जटाएँ हैं, वही कलियुग में प्रसिद्ध तपस्वी है। जो अशुभ वेश–भूषण धारण करता है, भक्ष्य –अभक्ष्य सब कुछ ग्रहण कर लेता है, वही योगी है, वही सिद्ध है और वही मनुष्य कलियुग में पूज्य है। जिसके आचरण दूसरों का अपकार करने वाले हैं, उसी का बड़ा गौरव होता है और वही सम्मान के योग्य माना जाता है। जो मन–कर्म–वचन से लबार होता है, वही कलियुग में वक्ता माना जाता है।

गुरु और शिष्य का संबंध

तुलसी ने कलिकाल के प्रभाव के कारण गुरु–शिष्य संबंधों में जो गिरावट लक्षित की थी, वह आज और भी बढ़ गई है। वर्तमान समय में गुरु और शिष्य के संबंध की पवित्रता का इतना क्षरण हो गया है कि तुलसी की यह पंक्तियाँ अनायास स्मृति में आ जाती हैं –

गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा।।
हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई।।

(रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा –99 / 6,7)

अर्थात् शिष्य और गुरु में बहरे और अंधे का–सा हिसाब है। शिष्य मानो बहरा होने के कारण गुरु के उपदेश को सुनता नहीं और गुरु मानो अंधता के कारण देखता नहीं। अर्थात् उसे ज्ञान दृष्टि प्राप्त नहीं है तो वह क्या शिक्षा देगा? गुरु ऐसे हैं, जो शिष्य का शोक हरने के बजाय उसके धन का हरण करते हैं। यह बात वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी चरितार्थ होती है।

इसके अतिरिक्त कलिकाल में बहुत से सामाजिक अत्याचार व्याप्त हैं, जो आज के मानवीय सरोकारों पर प्रश्न चिह्न खड़ा करते हैं –

कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती।।
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं।।
ससुरारि पियारि लगी जब तें। रिपुरूप कुटुम्ब भए तब तें।।
नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं।

(रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा–101 / 3,4,5,6)

कुलवंती और सती स्त्री को पुरुष घर से बाहर निकाल देते हैं और घर में दासी को लाकर रखते हैं। वर्तमान समय में मानवीय संबंधों का इतना ह्रास हो गया है कि अपने माता–पिता को पुत्र तभी तक अपना मानते हैं और उनकी सेवा करते हैं, जब तक उनका विवाह संपन्न नहीं हो जाता। विवाह के बाद उसे ससुराल प्यारी लगने लगती है और परिवार शत्रु के समान प्रतीत होने लगता है। राजा लोग भी पाप–परायण हो गए हैं। उनमें धर्म नहीं रहा। वह प्रजा को नित्य अकारण दंड देकर उनकी दुर्दशा किया करते हैं। आज भी हम यह सारी समस्याएँ अपने समाज में देख रहे हैं।

नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान बिरोध अकारनहीं।।
लघु जीवन सम्बतु पंच दसा। कलपांत न नास गुमानु असा।।
कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा।।
नहिं तोष बिचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भए मंगता।।

(रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा–102 / 3,4,5,6)

मनुष्य रोगों से पीड़ित है, भोग (सुख) कहीं

नहीं है। लोग अकारण ही अभिमान करते हैं। दस–पाँच वर्ष का थोड़ा सा जीवन है परंतु घमंड ऐसा है मानो कल्पांत होने पर भी उनका नाश नहीं होगा। अर्थात् प्रलय में भी वे वैसे ही रहेंगे। कलियुग ने मनुष्य को अस्त–व्यस्त कर डाला है और कोई बहन–बेटी का विचार भी नहीं करता। न संतोष है, न विवेक है और न ही शीतलता है। जाति–कुजाति सभी लोग भीख माँगने वाले हो गए हैं इस प्रकार सारा समाज पथभ्रष्ट हो गया है। यही आज के समय एवं समाज की विडंबना है।

तुलसी रामराज्य का स्वप्न देखते हैं जहाँ–

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज्य नहिं काहुहि ब्यापा।।
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना।।

(रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा 21/1,5,6)

निष्कर्षतः राम के मानवीय सरोकार से संबंधित रामचरितमानस में ऐसे अनेक प्रसंग और वृत्तांत हैं, जिन्हें एक अति संक्षिप्त लेख में नहीं समेटा जा सकता है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में जिन मानवीय सरोकारों का आदर्श प्रस्तुत किया है हम उनका पालन कर अपने इस मानव जीवन को कृतकृत्य अवश्य कर सकते हैं। अपनी रामराज्य की संकल्पना के माध्यम से जिस आदर्श समाज की बात तुलसी ने की है, उस संदर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी का कहना है– "विषमता से रहित सर्व प्रकार से सुखी और संपन्न 'रामराज्य' के स्वप्न का महत्व आज भी हमारे लिए कम नहीं हो जाता है। दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से रहित, शस्य – संपन्न धरती की जो कल्पना तुलसी ने की थी, वह हमारी भी लालसा है। विवेक, न्याय, संयम आदि सद्‌गुण हमारे लिए अनावश्यक नहीं हो गए।"[7] तुलसीदास ने अपने इस महाकाव्य में मानवीय सरोकार के सेतु का निर्माण किया है। जो आज की युवा पीढ़ी के लिए आदर्श एवं मील का पत्थर साबित हो सकता है। बशर्ते कि व्यक्ति का मन स्वच्छ हो और उसकी बुद्‌धि भ्रष्ट ना हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. त्रिपाठी, विश्वनाथ, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, ओरियंटल ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, दसवाँ संस्करण–2018, पृष्ठ संख्या 38

2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पच्चीसवाँ संस्करण – 2018, पृष्ठ संख्या 49

3. शर्मा, रामविलास, तुलसीदास एक विश्लेषण : तुलसी में लोक संघर्ष, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 19

4. शुक्ल, रामचंद्र, त्रिवेणी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 2018, पृष्ठ संख्या 83

5. त्रिपाठी, विश्वनाथ, लोकवादी तुलसीदास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा संस्करण – 2018, पृष्ठ संख्या 103

6. वही पृष्ठ संख्या 105

7. वही पृष्ठ संख्या 107

– सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, पंजाब केंद्रीय विश्वविद्‌यालय, बठिंडा गाँव एवं पोस्ट घुद्‌दा,
बठिंडा, पंजाब–151401

* * *

तुलसी के राम काव्य में राम तत्व का सौंदर्य

साक्षी जोशी

भक्ति आंदोलन का आरंभ कबीर के निर्गुण काव्य से प्रारंभ होता है और गोस्वामी तुलसीदास जी के सगुण काव्य में विकास पाता है। यह वह समय था जब कविता में भक्ति का प्रवाह चरम पर था। ऐसे में तुलसीदास जी अपनी कविता में राम को आदर्श रूप में लेकर आते हैं। भक्ति आंदोलन की दिशाओं ने हिंदी भक्ति काव्य की वस्तु और भावना को ही नहीं, उसकी सौंदर्य दृष्टि को भी निर्धारित किया है। जहाँ संत कवियों की सौंदर्य भावना में अनुभूति की तीव्रता और आध्यात्मिक सूक्ष्म चेतना की झलक दिखाई पड़ती है वहीं तुलसी के काव्य में राम तत्व का सौंदर्य विद्यमान है।

तुलसी राम के गुणों से प्रभावित होकर एक यूटोपिया गढ़ते हैं। उस यूटोपिया में एक नए समाज की कल्पना है जो है राम राज्य का स्वप्न। तुलसी के राम वाल्मीकि और भवभूति के राम नहीं हैं, तुलसी के राम आंदोलन का नेतृत्व करते हुए प्रजा में मिल जाने वाले और प्रजा के लिए लड़ जाने वाले राम हैं। इसीलिए तुलसी रामभक्ति शाखा के एकमात्र ऐसे कवि हैं जो अकेले उसका नेतृत्व करते दिखाई देते हैं। अर्थात् राम के गुणों से उपजी उनकी कविता राम तत्व को आत्मसात् किए हुए है। राम तत्व से अभिप्राय है गोस्वामी जी के काव्य में राम के गुणों की विशेषताएँ।

तुलसी, कबीर और सूरदास की तरह ही भक्ति आंदोलन की एक मजबूत नींव थे। इनका काव्य जन से होकर गुजरा। जन में फैली अराजकता में किस प्रकार जनता अंधी हो गई थी और उनको जागृत करने का प्रयास इन कवियों ने अपने–अपने काव्य के द्वारा किया। तुलसीदास जानते थे कि इस सामजिक वैमनस्य, विघटन, जातिवाद और अराजकता का तोड़ इसी जनता के पास है। इसीलिए विश्वनाथ त्रिपाठी जी लिखते हैं– "तुलसीदास की लोकप्रियता का कारण यह है कि उन्होंने अपनी कविता में अपने देखे हुए जीवन का बहुत गहरा और व्यापक चित्रण किया है। उन्होंने राम के परंपरा–प्राप्त रूप को अपने युग के अनुरूप बनाया है। उन्होंने राम की संघर्ष–कथा को अपने समकालीन समाज और अपने जीवन की संघर्ष–कथा के आलोक में देखा।"[1]

तुलसीदास जी ने राम को भारतीय मानस पटल पर एक चिंतन के रूप में प्रस्तुत किया। राम ईश्वर से अधिक एक भावना हैं जिनसे भारतीय समाज में समन्वय स्थापित हुआ। गोस्वामी जी के आदर्श भी राम हैं जो शक्ति–शील–सौंदर्य से युक्त हैं, इसी कारण उनकी सौंदर्य दृष्टि भी समाज के समन्वय में थी, मर्यादा में थी।

उनका साहित्य राम तत्व के सौंदर्य को परिभाषित करता है अर्थात् उनका काव्य प्रेम, दया, अंतःकरण की कोमलता, नीति, स्नेह, विनय और आत्मत्याग जैसी विशेषताओं का समन्वय है। रावण पर राम की विजय, मोह पर ज्ञान की, अन्याय पर न्याय की, कदाचार पर सदाचार की और असद्वृत्तियों पर सद्वृत्तियों की विजय की कथा उनका साहित्य करता है और अपने समाज

के लिए 'रामराज्य' का यूटोपिया गढ़ता है, जहाँ *खेती न किसान को, भिखारी को न भीख भली/बनिक को बनिज न चाकर न चाकरी*[2] जैसी स्थिति की संभावना को मिटा कर *दैहिक दैविक भौतिक तापा/राम राज नहिं काहूहि ब्यापा।*[3] जैसी स्थिति को स्थापित करने की बात करता है। उनका सौंदर्य मानवीय मूल्यों की स्थापना में है।

तुलसी की सौंदर्य दृष्टि पर पूर्ण रूप से राम तत्व का प्रभाव था उनका काव्य प्रगतिशीलता, भौतिकवादिता, मानववादी मूल्यों की पक्षधरता का काव्य है– "उन्होंने वाल्मीकि और भवभूति के राम को पुनः स्थापित नहीं किया है, अपने युग के नायक राम को चित्रित किया है। उनके दर्शन और चिंतन के राम ब्रह्म हैं लेकिन उनकी कविता के राम लोक–नायक हैं।"[4]

यही कारण है कि उनका राम काव्य 'समाज–सापेक्ष' सौंदर्य दृष्टि का उत्तम उदाहरण है। भक्ति के बहाने तत्कालीन सामंती शोषण से उत्पन्न अमानवीय मूल्यों के विरुद्ध जिस व्यापक आंदोलन के दर्शन हमें भक्ति–काव्य में होते हैं, यहाँ तक कि आधुनिक युग का यथार्थवादी साहित्य भी उसकी लोक–व्याप्ति का मुकाबला करने में समर्थ हो पाएगा इसमें संदेह है।

राम राजा थे और वह जानते थे कि एक राजा का प्रथम कर्तव्य प्रजा की रक्षा करना है और यही बात तुलसी ने उनसे सीखी कि अगर उन्हें अपने समय में फैली अराजकता को ध्वस्त करना है तो लोक से जुड़ना होगा, इसीलिए उन्होंने 'भाखा' में रचना की। उन्होंने भाखा में साहित्य रचना करते हुए भी अपने शास्त्रीय विधान को नहीं छोड़ा और संस्कृत पढ़े विद्वानों में भी लोकप्रिय बने रहे– "कबीर ऊपर से अक्खड़ पर अंदर से भोले और सरल हैं, तुलसी ऊपर से विनयी पर अंदर से जटिल और व्यवहार–कुशल।"[5]

तुलसी अपनी जड़ों से गहरे जुड़े हुए थे। जिस काल में वह जन्में वह ऊँचे आदर्शों पर नहीं चल रहा था। वह एक ऐसा समय था जब समाज छटपटा रहा था, धर्म अपने उददेश्य से डगमगा रहा था, मानवीय रिश्ते अपना मूल्य खो चुके थे। शैव, शाक्त और वैष्णव भी कलह पैदा करने लगे थे। ऐसे समय में तुलसी ने इस विघटन को समाप्त करने की कोशिश की, मानवीय मूल्यों की स्थापना की, लोगों में भक्ति भावना को जागृत किया और समाज को झकझोरा–

सुगनहि अगुनहि नहिं कुछ भेदा। गावहिं
मुनि पुरान बुध बेदा।।
अगुन अरूप अलख आज जोई। भगत प्रेम
बस सगुन सो होइ।।[6]
और
सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ
मोहि न पावा।
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी
मूढ़ मति थोरी।।[7]

यह समन्वय अराजकता को दूर कर, स्नेह सिक्त परिवेश तैयार करने के लिए जरूरी था जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का समुचित विकास हो सके। यही समन्वयवादी दृष्टिकोण राम का था इसीलिए तुलसी के काव्य को इतनी लोकप्रियता मिली। तुलसी ने रामचरितमानस की रचना की जिसमें एक प्रजा है जो राजा के प्रेम और दुख में डूबी हुई है, एक भाई है जो अपने बड़े भाई के चरणों में सब कुछ समर्पित कर देता है, एक पत्नी जो राजसी सुख त्याग कर अपने पति के कर्म, सुख–दुख में सहभागी है और एक सेवक जिसे विश्राम भाता ही नहीं है।

तुलसी के काव्य की विशेषता का आधार यह है कि उन्होंने राम का करुणामयी मानवीय रूप लोक के समक्ष प्रस्तुत किया। जो दुखी हैं, शोषित हैं, जो पीड़ित हैं ऐसे असहाय लोगों के साथ राम सदैव खड़े रहते हैं। यही राम का करुणावान, शीलवान और परदुःखकातर लोकवादी रूप है। केवट, कोल–कीरात, शबरी, गीध, बंदर–भालू सब राम के लिए आत्मीय हैं। यहाँ तक कि राम के कारण ही वशिष्ठ को भी 'दूर दते दंड केवट' करने वाले प्रनामी को भी गले लगाना पड़ता है–

सुमिरु सनेहसों तू नाम राम राय को।
संबल निसंबल को, सखा असहाय को।।
भाग है अभागेहू को, गुन गुनहीन को।

गाहक गरीब को, दयालु दीन को।।
कुल अकुलीन को, सुन्यो है बेद साखि है।
पाँगुरे को हाथ–पाँय आँधरो को आँखि है।
माय–बाप भूखे को, अधार निराधार को।
सेतु भव–सागर को, हेतु सुखसारको।[8]

समाज के विरुद्ध अपने सजग और सक्रिय विरोध के क्रम में तुलसी उन सभी को मनुष्य के आधार पर अपनी करुणा का पात्र बनाते हैं जो सामंती समाज में प्रताड़ित हैं।

वस्तुतः राम के चरित्रगत उदात्तता के माध्यम से गोस्वामी जी ही उस युग के लिए मानवीय मूल्यों का एक नक्शा बना रहे थे। राम उस युग की सत्ता और जनता दोनों के सामने आदर्श हैं और आज के युग के भी। जहाँ धन, सत्ता के लिए सब एक–दूसरे को दुश्मन मान बैठे हैं वहाँ दीनबंधु कारुण्य–सिंधु शांतिशील समुद्र, लोकादर्श राम और भरत का उज्ज्वल, निर्मल, निर्दोष, चरित्र एक राह दिखाता है, जिसे हम साध्य मान बैठे हैं वह मात्र साधन है साध्य तो मानवता है, प्रेम है, रिश्ते हैं जिसे हम तोड़कर, छोड़कर भागे जा रहे हैं सत्ता के पीछे, विकास के पीछे, यंत्रों के पीछे और विडंबना यह कि जिस सुख की तलाश में भाग रहे हैं, वह और दूर होता जा रहा है, और स्वयं को अकेला व अवसाद में पा रहे हैं।

गोस्वामी तुलसीदास का संपूर्ण साहित्य लोकमंगल के उच्च उद्देश्यों, उच्च मानवीय मूल्यों के स्थापना के निमित्त है। उनके राम काव्य को पढ़कर निश्चित रूप से पाठक वह नहीं रह जाता, जो उसके पढ़ने से पूर्व था और यही उनके राम काव्य में निहित सौंदर्य बोध है। पाठक के चरित्र पर उत्कर्षकारी प्रभाव पड़ता है और रामादि पात्रों के उच्च मानवीय मूल्य उसके मस्तिष्क को आच्छादित कर देते हैं।

आधार ग्रंथ

1. कवितावली– गोस्वामी तुलसीदास कृत कवितावली, टीकाकार–देवनारायण द्विवेदी, प्रकाशक–एस.बी. सिंह, काशी पुस्तक भंडार, चौका बनारस।

2. गीतावली– गोस्वामी तुलसीदास कृत गीतावली, टीकाकार– हरिहरप्रसाद, प्रकाशक– बाबू रामरणविजय सिंह, पटना।

3. दोहावली– गोस्वामी तुलसीदास कृत दोहावली, संपादक– चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा, प्रकाशक– रघुनंदन शर्मा, हिंदी प्रेस, प्रयाग।

4. रामचरितमानस– श्रीरामचरितमानस, टीकाकार– हनुमान प्रसाद पोद्दार, प्रकाशक– गोविंद भवन, गीता प्रेस, गोरखपुर।

5. विनय पत्रिका– गोस्वामी तुलसीदास कृत विनय पत्रिका, टीकाकार– हनुमान प्रसाद पोद्दार, प्रकाशक– घनश्यामदास जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर।

संदर्भ ग्रंथ

1. गोस्वामी तुलसीदास– आचार्य रामचंद्र शुक्ल, राधाकृष्ण प्रकाशन।

2. तुलसी काव्य मीमांसा– उदयभानु सिंह, वाणी प्रकाशन।

3. भक्ति आंदोलन और भक्तिकाल– शिवकुमार मिश्र, अभिव्यक्ति प्रकाशन।

4. मध्यकालीन बोध का स्वरूप– आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाब यूनिवर्सिटी।

5. लोकवादी तुलसीदास, विश्वनाथ त्रिपाठी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली

6. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन।

संदर्भ सूची

1. लोकवादी तुलसीदास, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ.9 (भूमिका), राधाकृष्णा प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

2. गोस्वामी तुलसीदास कृत कवितावली, टीकाकार– देवनारायण द्विवेदी, पृ.203, प्रकाशक– एस.बी. सिंह, काशी पुस्तक भंडार, चौका बनारस

3. श्रीरामचरितमानस, टीकाकार– हनुमान प्रसाद पोद्दार, पृ.806 (उत्तरकांड), प्रकाशक– गोविंद भवन कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर

4. लोकवादी तुलसीदास, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ.9 (भूमिका), राधाकृष्णा प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

5. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ.47, लोकभारती प्रकाशन

6. श्रीरामचरितमानस, टीकाकार–हनुमान प्रसाद पोद्दार, पृ. 99 (बालकांड), प्रकाशक–गोविंद भवन कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर

7. श्रीरामचरितमानस, टीकाकार– हनुमान प्रसाद पोद्दार, पृ. 667 (लंकाकांड), प्रकाशक–गोविंद भवन कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर

8. गोस्वामी तुलसीदासकृत विनयपत्रिका, टीकाकार–हनुमान प्रसाद पोद्दार, पृ. 37, प्रकाशक–घनश्यामदास जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर

– हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

तुलसीदास के साहित्य में सामाजिक चिंतन

डॉ. अहिल्या मिश्र

भारत भूमि रत्नों की खान है। समयानुसार अनेक महात्मा दार्शनिक, संत एवं समाज सुधारक यहाँ उत्पन्न हुए हैं। अतः इसे वसुंधरा भी कहा गया है।

हमारे सांस्कृतिक स्वरूप प्राचीनकाल से आदि मानव के साथ आरंभ होकर मानवीय संहिताओं की एक कथा गाथा है। वेद जीवन गान है तो पुराण जीवन का नियामका है इसके लिए माध्यम विभिन्न कथा कहानियों को बनाया गया है। मानव के विकास की कहानी के साथ प्रागैतिहासिक मानव का जीवन एवं संबंधों के निर्माण के साथ इतिहास की शृंखला बनी है। इन्हीं के बीच विभिन्न अवतारों के माध्यम से मनुष्यता का निरूपण भी किया गया है। हर अवतार में मानवीय अवधारणा संलग्न होती रही है। मनुष्य का सामूहिक रूप स्थापित हुआ। परिवार के साथ सहयोग एवं सहकारिता को अंतर्निहित करने वाला समाज निर्माण का स्वरूप भी कालांतर में स्वमेंव निधार्रित हुआ। विभिन्न ऋषियों की कहानी इसे सिद्ध करती है। वाल्मीकी रामायण में पशु–पक्षी को रचना या सृजन तथा इसके विस्तार का साधना बनाया गया। क्रौंच पक्षी का दयनीय क्रंदन डाकू के मन परिर्वतन का बदलाव बिंदु बना। वह मरा–मरा जपते हुआ रामायण का संस्कृत में लेखन कर सके। इसका वाल्मीकि रामायण साक्षात् उदाहरण है। गोस्वामी तुलसीदास ने इस त्रेतायुगीन कहानी को अवधी भाषा के माध्यम से तथा विभिन्न कथाओं, दर्शन एवं आध्यत्म के योग से सर्वजनीन बनाया। वैदिककाल में संस्कृति और सभ्यता उन्नत अवस्था में थी इस समय पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन उत्कृष्ट था इस काल में नारी सत्ता पुरुष के समान ही थी इसे नारी उत्कर्ष का काल भी कहा जा सकता है।

गोस्वामी तुलसीदास की अन्य रचनाएँ रामचरितमानस के प्रभा मंडल के नीचे दब गईं। इस तथ्य को देखने जानने का माध्यम स्वयं रामचरितमानस ही है। रामचरितमानस की बात करे इससे पूर्व राम काव्य की महत्ता को विभिन्न भारतीय भाषाओं के संदर्भ में भी हम देखते चले।

हम जाँचने–परखने का कार्य कर तो पाते हैं कि श्रीराम की यशोगाथा दर्शन एवं आध्यत्म केवल संपूर्ण भारतवर्ष में ही नहीं फैला है बल्कि संपूर्ण विश्व में प्रचलित है। यह सनातन हिंदू के साथ अन्य जाति, धर्म, समुदाय द्वारा भी चर्चित, स्वीकृत एवं पूजित है सर्वप्रथम तो राम का सामाजिक संदर्भ में हम संपूर्ण भारतवर्ष के सांस्कृतिक परिवेश के परिप्रेक्ष्य में अवगाहन करेंगे। साथ ही तुलसीदास जी द्वारा स्थापित देवत्व की चर्चा भी इसमें समृद्ध होगी।

तुलसीदास जी ने संपूर्ण रामचरितमानस महाकाव्य में श्रीराम को मर्यादा पुरुषोतम के रूप में स्थापित करते हुए वैयक्तिक, परिवारिक, सामाजिक एवं राजा के सामाजिक संबंधों के निर्वहन करने वाले स्वरूप की ऐसी यशोगाथा लिखी कि भारत वर्ष के हर प्रांत के निवासी इनका नाम स्मरण करने में गौरव का अनुभव करते हैं। यह एकात्मता की भावना का व्यापक अर्थो में द्योतक है। वास्तव

में यह तुलसीदास के काव्य क्षमता का कमाल है कि राम को उन्होंने सर्वमंगल विधायक के पद पर स्थापित कर देव रूप में समाविष्ट किया।

जैन साहित्य में रामपरक सामग्री के दो प्रमुख आधार हैं विमल पुरी द्वारा लिखित राम कथा एवं गुणभद्र द्वारा रचित राम कथा परंपरा का जैनों के बीच प्रचलन है। विमल पुरी रचित राम कथा को जैनो के श्वेतांबर शाखा में अधिक मान्यता है, वही दिगंबरो ने दोनों ही कथायों को समान आधार दिया है।

तमिल के महाकवि सुब्रमण्यम भारती ने कहा कि यद्यपि भारत माता अनेक भाषा बोलने वाली है किंतु चिंतन में एकात्मक भाषा एवं सामाजिक एकता के कई सूत्र एक साथ पिरोए गए हैं अतः एकात्मक भावना बरसाने वाली है। कोई मानवता से ऊपर उठकर मानवता का हितचिंतन करता है तो उसे अवतारी पुरुष माना जाता है। मर्यादा पुरुषोतम राम को तमिल कवियों ने भगवान का अवतार ही माना है कई काव्यों में इसके स्वरूप मिलते हैं। तुलसी के रामचरितमानस की तरह तमिल भाषा में कंबन के रामावतार का प्रचलन कंबन रामायण से हुआ।

तेलुगु में रामचरितमानस को लेकर सामाजिक तौर पर साहित्य में अनेक काव्य शतक और लोककथाएँ रची गई हैं। आंध्र के कोने–कोने में स्थापित राममंदिर तेलंगाना में भद्राचलम का मंदिर, रामदास आख्यान आदि इसकी पुष्टि करते हैं। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी लिखित रामायण विश्लेषण के रूप में ग्रंथ में संपूर्ण राम काव्य अपनी कई विशेषताओं के कारण पठनीय है। भक्त पोतन्ना, की भक्ति को देखें रामदास तथा त्यागन्ना ने अपनी कृतियों द्वारा आंध्र प्रदेश (संयुक्त) में राम का एवं इसके सामाजिक परिवेश का उत्तम उदाहरण के साथ प्रणयण किया। तेलुगु में रंगनाथ रामायण प्रथम मानी जाती है। इसके कवि बुद्धा रेड्डी ने कथा विस्तार में नवीन कल्पनाओं को तथा लोक प्रचलित वृत्तांतो को स्थान देकर काव्य विषय को रोचक बनाया है।

कन्नड भाषा में जरठ शताब्दी के आरंभ में नागचंद्र (अभिनव ग्रंथ) से रचित रामचंद्रचरित पुराण (पंप) रामायण के नाम से प्रसिद्ध कथा की रचना की गई। कन्नड भाषा में कवयित्री गिरियम्मा का सीता कल्लमं, लिंगराज का अंगद संधान, मुद्दन कवि के रामश्वमेध, रामपरामिषेक, और अद्भुत रामायण प्रसिद्ध है। विभिन्न भाषाओं के माध्यम से कवि वाल्मीकि रामायण एवं तुलसीदास कृत रामचरितमानस की कथा रामचरण के माध्यमों में से विकसित की गई। आज भी यदा– कदा रामायण का लेखन अपने पूर्ण सामाजिक मर्यादाओं के साथ सृजन के क्षेत्र में होता रहता है। कुछ दिन पूर्व ही गुजरात की डॉ. नलिनी पुरोहित ने 'रामायण 'काव्य कृति का सृजन किया है।

वैसे तो तुलसीदास की विनयपत्रिका, रामलला का नाहछू एवं अन्य कई काव्य ग्रंथ हैं। इन सभी कृतियों की रचनात्मक साहित्य के बीच सांस्कृतिक परंपरा के साथ तत्कालीन समाज की मान्यता एवं चेतना बहुल विषय उपलब्ध हैं किंतु मैं यहाँ रामचरितमानस महाकाव्य में वर्णित सामाजिक संदर्भो के आदर्श रूप पर संक्षिप्त प्रकाश डालूँगी। गोस्वामी जी ने रामचरितमानस में वैसे तो तात्कालिक समाज के उच्चतम आदर्श की स्थापना की है। राम के नाम की महिमा के साथ पिता दशरथ के पूजा पाठ से प्राप्त इस पुत्र पर उनको विशेष स्नेह रहता है। युवा राम को राजगद्दी देने की तैयारी चल रही है। इस समाचार से कैकेयी बेचैन हो जाती है। वह राजा दशरथ की सबसे चहेती पत्नी है। राज्य उसके बेटे भरत को मिलना चाहिए। राम को गद्दी पर कैसे बिठाया जा रहा है। इसमें उसकी दासी मंथरा की मंत्रणा भी शामिल है। कैकेयी एक माँ के रूप में खुश थी किंतु मंथरा के कुविचार के रूप में उसका सौतेलापन जाग जाता है। वह दशरथ से पूर्व में दिए गए दोनों वचन पूरा करने को कहती है। दोनों वचन के रूप में वह माँग करती है कि राम के बदले उसके पुत्र भरत को राजगद्दी पर बिठाया जाए। दूसरा वचन माँगती है कि राम को चौदह वर्ष का वनवास दिया जाए। दशरथ के लिए दोनों बातें असहय हैं। वे बेचैन होकर अस्वस्थ्य हो जाते हैं। राम उनका हाल जानने कैकेयी के महल में पहुँचते हैं। राम के पूछने पर कैकेयी कहती है कि पुत्र राम तुम्हारे

पिता ने मुझे जो वचन दिया था मेरे माँगने पर उसमें वे बँध गए हैं। उसे पूरा करने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं। इस पर राम के माध्यम से काव्य का सामाजिक आदर्श रूप द्रष्टव्य है। *सुतस्नेह चित वचन उत संकट परेहु न सकहुँ। त आयसु धरहु चिंती कठिन क्लेश भेटि हूँ।*

राम का आदर्श पूर्ण उत्तर देखे–

मनमुस्कायभानु कुल भानू
राम सहज आनंद निर्धानु
सुनु जननी सोहीसुत बड़भागी
जो पितु मातु को अनुरागी।

मानस के आरंभ में ही स्त्री को महत्व प्रदान कर काव्य के आदर्श की स्थापना की गई है देखे–

जबसे उमा शैल गृह आई
सकल सिद्‌धि संपति सब छाई

इस पंक्ति को देखे–

जिमिजनु राम या भगति के पाई।

परिवार एवं समाज की व्याख्या करते हुए इस पंक्ति में आदर्श कूटकूट कर भरा है–

सुत मित नारी भवन परिवारा
होहि जाहि जग बार हि बारा
आसि विचारि जिय जागहु ताता
मिलिहि न जग सहोदर भ्राता

जाति, पाँति, धरम, ऊँच, नीच का भेदभाव मिटाने एवं सर्व हिताए सर्व सुखाए की भावना का आदर्श केवट प्रसंग एवं भिलनी शबरी के माध्यम से स्थापित किया गया है। पंक्ति देखे–

पानि कठौता जल भरी लावा,
अति आनंद उमंग अनुरागा
चरण सरोज पखरन लगा।

जनम से मरण तक राम का आदर्श जन–जन में स्थापित है। राम रमा रम रहे। शबरी की नवधा भक्ति के आगे सभी छोटे पड़ते हैं कहीं मैने वाक्यांश पढ़े थे "माँ हज़ारों कोस चल कर बीहड़ वन में आया हूँ तो तुम से मिलने आया हूँ। माँ ताकि हज़ारो वर्ष बाद जब कोई पाखंडी भारत के अस्तित्व पर प्रश्न खड़ा करे तो इतिहास उसको गरज कर उत्तर दे कि इस राष्ट्र को क्षत्रिय राम ने खड़ा किया है"–

"जब कोई कपटी भारत की परंपराओं पर सवाल उठाए या ऊँगली दिखाए तो काल गला पकड़कर कह सके की नहीं यही एक मात्र ऐसी सभ्यता है जहाँ एक राज पुत्र वन में प्रतीक्षा करती एक दरिद्र वनवासिनी से भेट करने चौदह वर्ष का वनवास स्वीकार करता है।"

तीसरा वाक्यांश– ''राम वन में चलकर इसलिए आया है कि भविष्य स्मरण रखे कि प्रतीक्षाएँ अवश्य पूरी होती हैं। राम रावण को मारने भर के लिए नहीं आया है। वैसे तो रामचरितमानस के ऊपर कई शोध, विचार, चिंतन, मनन, विश्लेषण संपन्न हो चुके हैं। कई नए युगबोध के साथ इस कालजयी रचना को बार–बार विश्लेषित किया जाता रहेगा। अब मानस के शबरी का प्रेम पगा शब्द आपके अवलोकनार्थ प्रस्तुत है–

शबरी देखि राम गृह आए मुनि के वचन समुझि जिए माए।
कन्द मूल फल सुख अति दिए राम कहु आनि
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि।

इस प्रकार सर्वे भवतुं सुखिनः की परिकल्पना को यहाँ सार्वजनिक किया गया है। मैं कुछ बहुचर्चित प्रसंगों के माध्यम से तुलसीदास के काव्य में सामाजिक आदर्शो की चर्चा करते हुए यथाशक्ति संक्षिप्रता को अपनाना चाहती हूँ। इतने विशद महाकाव्य को समेटना गागर में सागर भरने जैसा है। यहाँ बालि वध की पंक्तियाँ उधृत कर एक सामाजिक आदर्श की प्रस्तुति कर रही हूँ– *अनुज वधू भगिनी सुत नारी। सुनु सई कन्या सम चारी। ते इन्हे ही कुदृष्टि विलोके ताहि वध कहु पाप न होई।* अब लंका समाज के संबंध में कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं। *निकर निवासा यहाँ कहाँ सज्जन को वासा* यानी लंका में समाज का स्वरूप आदर्श हीन, भौतिक सुख भोगी एवं अत्यंत स्वार्थी है।

स्त्री की मर्यादा और सामाजिक परंपरा का अत्योत्तम उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है। कई बार इस ग्रंथ में स्त्री का सामाजिक अस्तित्व और उसमें बुनावट आदर्श की संपुष्टि होती है।

तृणधरि ओट कहही वैदेही सुमिरि अवधपति

परम सनेही। सुनु दसमुख खद्योत प्रकाशा कबहुँ की नलिनी करहि विकासा। मद, अंहकार और स्वार्थ विनाश की सीढ़िया होती हैं। सोने की लंका भी आदर्शव्युत होकर समाप्त हो जाती है यह एक सर्वोच्च महानघ का उदाहरण है।

उपरोक्त कुछ विषय विशेष कथा विस्तार के साथ संपूर्ण रामचरितमानस के हजारों आदर्शमय वातावरण से एक आदर्श समाज की स्थापना की है। धोबी जैसे प्रसंग भी रामराज्य के मर्यादा रूपी आदर्श का निर्वहन करने की चेष्टा है।

नाम लंकिनी एक निश्चिरी सो कह चलेसी मोहि निंदरी। जानेही नहीं मरमु सठ मोरा मोर अहार जहाँ लागि चोरा। मुठिका एक मारा कपि हनि। रुधिर वमत धरनी ढनमनि पुनि संभारि उठि सो लंका। जोरि पानि करई विनय सशंका जब रावणही ब्रंह वर दीना, चलत विरंच कहाँ मोही चीन्हा। विकल होही जब कपि के मारे तब जानेसी निशिचर संहारे। लंका में विभीषण की बेटी का चित्रण स्वरूप त्रिजटा चरित्र का आदर्श है। *त्रिजटा नाम राक्षसी एका राम चरण रति निपुण बिबेका। सभहि बुलाय सुनायसि सपना सीताहि सेई करउ हित अपना।*

गोस्वामी तुलसीदास का अपना जीवन प्रारंभिक काल से भले ही दयनीय या उपेक्षित रहा हो। लेकिन तत्पश्चात् छात्र जीवन और किशोरावस्था में वे अपने शुभकर्मो तथा शुभसंस्कारों की फलीभूत वेलि के संबल से ज्ञान बुद्धि, विवेक, संतत्व, भक्ति, तप, सत्य, सदाचरण, पवित्रता, आत्मगान आदि सद्गुणों से लोकमान्य बने और आज वे विश्व की सबसे बहुमूल्य धरोहर के रूप में सर्वमान्य प्रतिष्ठा प्राप्त हैं। उनके परम पावन व्यक्तित्व से उनका कमनीय कृतित्व लोक के सुख एवं लोकोपकार का परम आदृत संविधान बन गया है। यह सर्वोत्तम आदर्श काव्य स्वरूप है।

उनका रामचरितमानस सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक, प्रशासनिक तथा वैश्विक कल्याण और उत्थान का आधार बनकर उभरा है। इस परमोपदेय, अलौकिक शांति प्रदायिनी संरचना के पुनीत प्रणेता परम तपस्वी गोस्वामी तुलसीदास हैं। जो मानव समाज के लिए प्रकाशस्तंभ के रूप में आज भी अजरामर बने हुए हैं। लोक को या मानव समाज को संस्कारमयी शिक्षा ग्रहण करने के लिए उत्प्रेरित करते हैं। ”धर्म व उद्घोष से मानव मात्र को सत्कर्म के प्रति जाग्रत करते हैं। महामनीषी महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी का सुसंस्कृत एवं लोकोपकारी व्यक्तित्व एवं कृतित्व वर्तमान में पूर्णतः प्रासंगिक, उपयोगी एवं अनुकरणीय है।

अपनी बात का अंत तुलसी के इस दोहे से करूँगी–

मुखिया मुख सौ चाहिए खान पान को एक।
पालै पोसे सकल अंग तुलसी सहित विवेक।

– 93/सी राज सदन, वेंगल राव नगर, तेलंगाना, हैदराबाद–500038

❑❑❑

राम कौन हैं? रामायण क्या है?

गन्नू कृष्णामूर्ती

मान्यता है कि रामायण के अनेक अर्थ हैं। इनमें से चार अर्थ प्रधान हैं, जो चार प्रधान दृष्टिकोणों से संबंधित हैं, यथा–

1. आधिभौतिक दृष्टिकोण या विश्व दृष्टि (भौतिकता से संबंधित)
2. आधिदैविक दृष्टिकोण या देवता दृष्टि (देवताओं से संबंधित)
3. आध्यात्मिक दृष्टिकोण या प्राणि दृष्टि (आत्मा से संबंधित)
4. आधियाज्ञिक दृष्टिकोण या यज्ञ दृष्टि (यज्ञों से संबंधित)

रामायण को इन चारों दृष्टिकोणों से विचारा जा सकता है। परंतु हमारे विद्वानों को 'आधियाज्ञिक दृष्टिकोण' का पता ही नहीं है। और उन्होंने 'आधिभौतिकता' को जान कर रख दिया है। मैंने वाल्मीकीय रामायण पर शोध की दृष्टि से यहाँ विचार किया है। हाल ही में मैंने एक पुस्तक भी प्रकाशित की है, –'राम कौन हैं? रामायण क्या है'? यह शोध इस नए दृष्टिकोण को प्रकाशित कर सकता है।

मेरा विचार है कि वाल्मीकीय रामायण एक प्रतीकात्मक महाकाव्य है। उसमें विश्व की कहानी वर्णित है, और विश्व की शक्तियाँ ही इस के पात्र हैं। जैसे;

दशरथ – विश्व
कौशल्या – स्वर्ग लोक
सुमित्रा – मर्त्य लोक
कैकेयी – पाताल लोक
राम – सूर्य
लक्ष्मण – सूर्यप्रभा

भरत, श्रवण कुमार, गौतम, विभीषण और परशुराम हैं चंद्र के प्रतीक।

शत्रुघ्न – चंद्रप्रभा (चाँदनी)
सीता और मंथरा – भूमि के प्रतीक (पृथ्वी)
रावणादि राक्षस – काल मेघ
वाल्मीकि, वशिष्ठ, विश्वमित्रादि महर्षि – नक्षत्र के प्रतीक
बालि – एक तूफान (एक प्रचंड झंझा)
सुग्रीव – अग्नि
हनुमान – वायु
उर्मिला और शबरी – कमल के प्रतीक
कांचन मृग – सोने के रंग में प्रकाशित एक काला बादल
जटायु – एक पर्वत
पुष्पक विमान –
1. गगन (विश्व की दृष्टि से)
2. मन (प्राणि की दृष्टि से)
लंका नगरी – काल नगरी
अयोध्या –
1. आकाश (विश्व दृष्टि)
2. मन (प्राणि दृष्टि)

अब रही बात कथा से संबंधित घटनाओं की–

1. दशरथ का यज्ञ और संतान प्राप्ति

दशरथ दसों दिशाओं में फैला हुआ 'रथ' यानी शरीर का प्रतीक है। वे नक्षत्रों की राशियाँ

बनाते हुए रातभर यज्ञ करते रहते हैं। फलतः उन को उदय होते ही दो पुत्र प्राप्त होते हैं, एक पूरब में सूर्य और दूसरा पश्चिम में चंद्र। अब लक्ष्मण राम जी की छाया सदृश सूर्य प्रकाश हैं, और शत्रुघ्न भरत जी की छाया सदृश चाँदनी हैं। इस तरह कुल चार हो गए।

2. विश्वामित्र का यज्ञ

विश्वामित्र महा नक्षत्र के प्रतीक हैं, जो नक्षत्रों को ढेर सा डाल कर यज्ञ करते रहते हैं। काले बादल रूपी राक्षस पानी, ओले आदि बरसा कर उन यज्ञों को विघ्न पहुँचाते रहते हैं। इसीलिए उन्होंने राम और लक्ष्मण से सहायता माँगी है।

3. अहिल्या शाप विमोचन

गौतम पत्नी अहिल्या धरती का प्रतीक ही है "जो जोती नहीं गई थी। अर्थात् उनका विवाह चंद्र प्रतीक गौतम से होने पर पुत्रवती नहीं हुई थी। ऋषि गौतम की अनुपस्थिति में आकाशाधिपति इंद्र गौतम के रूप में पधार कर अहिल्या से मिलते हैं। उसी समय पर गौतम भी आ जाते हैं। वे नाराज होकर दोनों को शाप देते हैं। फलतः इंद्र के वृषण धरती पर गिर जाते हैं और अहिल्या मिट्टी में मिट्टी बनकर, वायु भक्षिणी होकर, अदृश्य रूप में तपोमग्न रह जाती है, अंत मे श्रीराम जी के पदस्पर्श से वे पुनीत हो जाती हैं। अर्थात्, रातभर अदृश्य रूप में रहकर सूर्योदय होते ही, दृश्य रूप पाती हैं। इस तरह यह कथा रामायण में एक दूसरी रामायण है।

4. शिवधनुर्भंग : सीता राम विवाह

शिव धनुष सिंगडी का प्रतीक है, जो सूर्य के किरण रूपी हाथों से बनता है, और सूर्य के ही हाथों में टूट जाता है। इसीलिए, वह सूर्य प्रतीक राम के हाथों में टूट जाता है। उन्हें धरती का प्रतीक सीता माता वरमाला पहनाती हैं।

5. परशुराम गर्वभंग

चंद्रमा ही परशुराम हैं। ज्योत्स्ना ही उनका आयुध परशु है और अर्धचंद्र ही विष्णु धनुष। ज्योत्स्ना की किरणें ही बाण हैं।

चंद्रोदय के साथ–साथ नक्षत्र गायब हो जाते हैं। यही क्षत्रिय राजाओं का पराजित होना है। सूर्य जब नहीं रहता तभी चंद्रमा का राज चलता है। सूर्य के निकलते ही वह पीला पड़ जाता है।, निर्वीर्य हो जाता है। बस यही इस गाथा के पीछे छिपा रहस्य है।

6. वनवास

सूरज सुबह पानी में से निकलते हैं। रात होते ही फिर से पानी में डूब जाते हैं। प्रायः 14 घंटे वहीं 'वन' में यानी जल में रह जाते हैं। यही उनका वनवास हैं। इसीलिए सूर्य प्रतीक राम को भी 14 वर्ष का वनवास यानी अरण्यवास करना पड़ा।

7. पादुकाओं का राजतिलक

भरत चंद्र के प्रतीक हैं। अर्थात् वे स्वयं प्रकाशवान नहीं हैं। उनके सिर पर और मुख पर जब सूरज की किरणें पड़ती हैं, तभी वे प्रकाशित होते हैं। अर्थात् उनका अस्तित्व सूरज की किरणों में ही है। ये किरण सूरज के पद हैं, और किरणांत पादुकाएँ। इसी कारण भरत सूर्य प्रतीक श्रीराम जी की पादुकाओं को अपने सिर पर रख लेते हैं और उन्हें सिंहासन पर रख कर पूजते हैं। इस प्रकार राज्य का पालन करते हैं।

8. माया मृग तथा सीताहरण

मारीच एक काला बादल है। सूर्य की किरणें उस बादल पर गिरने से वह एक काँचन मृग सा चमकता है। उसको भूप्रतीक सीता चाहती हैं। राम जी पीछा करते हैं और उसे मार डालते हैं। अर्थात् वह बादल निर्वीर्य होकर धरती पर बरस जाता है।

राम और लक्ष्मण की अनुपस्थिति ही सायं संध्या है। तब रावण जो अंधेरा का और अंधेरा बादल का प्रतीक है, एक चोर की तरह आ जाता है और सीता का हरण करता है। यही सीताहरण है।

9. जटायु का वृत्तांत

जटायु पर्वत का प्रतीक है, जो बादल रूप रावण से टकराता है। इस लड़ाई में उसका शिखर टूट कर गिर जाता है। जटायु की मृत्यु होती है।

10. शबरी का वृत्तांत

शबरी कमल का प्रतीक है। वे दिन भर सूर्य की प्रतीक्षा करती रहती है। जब सूर्य प्रतीक राम

और सूर्यप्रकाश के प्रतीक लक्ष्मण उनके सामने आ जाते हैं तो उस के ताप को वह सह नहीं सकती और उनके चरणों पर गिर कर प्राण छोड़ती है। यही शबरी वृत्तांत है।

11. रामायण बालि – सुग्रीव गाथा

बालि एक प्रचंड मारुत का अथवा तूफान का प्रतीक है और सुग्रीव एक अग्नि ज्वाला का प्रतीक। जब दोनों के संबंध बिगड़ जाते हैं, तब सुग्रीव भाग कर एक पर्वत पर ठहर जाता है और राम जी की सहायता से बाली का संहार होता है। तूफान सूरज से ही उत्पन्न होते हैं, और सूरज से ही नियंत्रित होते हैं।

12. समुद्र लंघन

हनुमान जी वायु के प्रतीक हैं (आधिभौतिक दृष्टिकोण)। उसी कारण से एक ही छलांग में सागर को लांघ कर लंका में कूद जाते हैं।

दूसरे शब्दों में ये कुंडलिनी के प्रतीक भी हैं (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)। मूलाधार से सहस्रार तक की यात्रा ही हनुमान की यात्रा है। कुक्षी सागर है। सुनाभ नाभि है। सुरसा मुख का प्रतीक है और सिंहिका नाक का प्रतीक। लंकिनी भृकुटी है और अशोक वन सहस्रार। सीता जगत माता हैं।

13. लंका दहन

पहले हनुमान जी लंका को जलाते हैं। अर्थात् गरम–गरम हवा काले बादलों का नाश कर देती है। बाद में कपिसेना यानी सूरज की किरणें काले बादलों को जलाती हैं। यही है लंका दहन का अंतरार्थ।

14. विभीषण की शरणागति

'विगत भीषण' ही विभीषण जी हैं। अर्थात् अत्यंत शांत स्वरूपी, चंद्र ही विभीषण हैं। चंद्र में प्रकाश के साथ–साथ अंधेरा भी रहता है। इसीलिए वह एक राक्षस भी है, पर बुद्धिमान। इसी कारण वह रावण से मतभेद करता रहता है। फलतः अंत में रावण उन्हें अपने राज्य से यानी अंधकार से धकेल देता है। वे राम की शरण में चले जाते हैं। अर्थात् दिन के महाप्रकाश में लीन हो जाते हैं। यही विभीषण की शरणागति है।

15. सेतु बंधन

'राम सेतु' के दो अर्थ है

पहला अर्थ : सूर्य भगवान अपनी रोशनी से लंका नगरी यानी काली नगरी (अंधेरी नगरी) तक पुल बना देते हैं। यही है राम सेतु।

दूसरा अर्थ : हमारी रीढ़ की हड्डी ही रामसेतु है, जो मूलाधार को लंका से यानी शिर में मिला देती है।

16. लक्ष्मण मूर्छा और संजीवनी पर्वत

शाम के समय सूर्य प्रभा शक्तिहीन हो जाती है और अंधेरा उस पर विजय पाता है। यही लक्ष्मण की मूर्छा है। तब हनुमान यानी वायुदेव अपनी संजीवनी की सुगंध को ले आते हैं। बस यही हनुमान जी का अपनी हथेली पर संजीवनी पर्वत को ले आना है।

17. राम रावण युद्ध और रावण का वध

राम जी सूरज के प्रतीक हैं और रावण काले बादल के प्रतीक। इन दोनों के बीच निरंतर युद्ध चलता ही रहता है। यही है राम–रावण युद्ध। अंत में वह सूर्य रूपी बाणों से उस बादल रूपी रावण को निर्वीर्य कर देते हैं। अर्थात् वह बादल धरती पर बरस जाता है। यही रावण का अंत है।

18. सीता का अग्नि प्रवेश और श्रीराम का राजतिलक

धरती दिनभर सूरज की रोशनी में तपती रहती है। यही सीता का अग्नि प्रवेश है। रात होते ही चाँदनी आ जाती है। यही अग्नि का शीतलाग्नि बन जाना है। सुबह होते ही वह सीता यानी धरती माँ बिना जले उस चिता से बाहर आ जाती है। यहाँ का यही अंतरार्थ है।

दोपहर में सूर्य भगवान गगन मध्य में विराजते हैं और प्रजा उनकी स्तुति करती है। यहाँ उनका राजतिलक है।

उत्तर रामायण

रात होते ही सूर्य भगवान धरती माँ का परित्याग करते हैं। यही सीता का परित्याग है। रात में धरती माँ का अदृश्य होना ही सीता का निर्याण है। सूर्यभगवान का किरण रूपी अश्व को विश्व में छोड़ देना ही उनका अश्वमेध यज्ञ है। जाते–जाते सूर्य अपनी किरण रूपी कुश को, और बिंदुरूपी लव को राज दे देना ही उन दोनों का राजतिलक है। सायं संध्या के समय सूरज का

पानी में डूब कर अस्त होना ही राम का सरयू की धारा में अंतर्धान होना है। बस यही 'रामायण' का अंतरार्थ है'।

उपसंहार

विश्व की कहानी ही राम की कहानी है।

सूर्य ही इसमें बिंदु है जो सकल देवताओं का भी केंद्र बिंदु है। इसलिए;

1. विश्व ही दशरथ है।
2. सूर्य ही राम है।
3. सूर्यायण ही रामायण है।
4. सूर्यराज्य ही राम राज्य है
5. सीता–राम कल्याण ही विश्व कल्याण है।

संक्षेप में यही 'रामायण–महाकाव्य' की प्रतीकात्मकता है। इसी को समझाने का प्रयास 'राम कौन है? रामायण क्या है?' विमर्श में किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वेद तत्व प्रकाश (ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका – महर्षि दयानंद सरस्वती, अनुवाद श्री पंडित गोप देव। – अंबा दर्शन ग्रंथमाला, आर्यसमाज, कूचिपूडि अंबा रामार्य सत्यार्थ प्रकाश ट्रस्ट – सिकिंदराबाद, तृतीय मुद्रण, 1993

2. दयानंद ऋग्वेद भाष्य भास्करमु – अनुवाद श्री पंडित गोप देव, आर्यसमाज, प्रथम मुद्रण 1986

3. वेदमूल यथार्थ स्वरूपमु– हिंदी मूल : पंडित धर्मदेव विद्यावाचस्पति, विद्यामार्तण्ड – अनुवाद पंडित लोकलहरि सिद्धांताचार्य – वैदिक साहित्य प्रचुरण, प्रचार समिति हैदराबाद 2000

4. ऋग्वेद (चार खंडों में) – संपादक वेदमूर्ति पं. श्रीराम शर्मा आचार्य – संस्कृति संस्थान, खाजा कुतुब, वेदनगर, बरेली 243003 (उत्तर प्रदेश) – 1996

5. यजुर्वेद, संपादक वेदमूर्ति पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, वेदनगर, 1996

6. सामवेद, संपादक पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, बरेली, 1996

7. अथर्ववेद (दो खंडों में) संपादक पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, वेदनगर, बरेली, 1996

8. वेदमुलु : कंचिकामकोटि पीठाधिपतुलु श्री श्री चंद्रशेखरेंद्र सरस्वती, अनुवाद पिंगलि सूर्य सुंदरम् – गुरुकृप, मद्रास– 24, मई 1997

9. उपनिषद्रत्नाकरमु : अनुवाद श्री विद्या प्रकाशनंद गिरि स्वामुलु– श्री शुक ब्रहाश्रममु कालहस्ति, चित्तूर जिला, 2003

10. महर्षि वाल्मीकि प्रणीत श्रीमद् वाल्मीकि रामायण (दो खंडों में) व्याख्या पं. रामनारायण दत्त शास्त्री राम, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2040

– मकान नं. 5–3–770/1, बिलाल मस्जिद के पीछे, विद्यानगर कॉलोनी, कामा रेड्डी,
निजामाबाद–503111

* * *

राम तत्व की मीमांसा

डॉ. प्रभु वि उपासे

दर्शनशास्त्र की कई शाखाएँ हैं, जिनमें से एक तत्व मीमांसा भी है। तत्व मीमांसा दर्शनशास्त्र की वह शाखा है, जो ब्रह्मांड के परम तत्व/ईश्वर की खोज करते हुए उसके परम स्वरूप का विवेचन करती है। इसका प्रमुख विषय वह परम तत्व ही होता है जो इस संसार के होने का कारण है और इस संसार का आधार है। इसमें उस परम तत्व के अस्तित्व को खोजने की कोशिश की जाती है। इसमें परम तत्व की व्याख्या कई प्रकार से की जाती है। कई उसे आकार रूप मानकर परिभाषित करते हैं, तो कई उसे निराकार रूप मानते हैं।

तत्व मीमांसा का अर्थ होता है तत्वों से बनी चीजों की विस्तार से जानकारी अर्थात् साकार ब्रह्म ज्ञान। ज्ञान मीमांसा का मतलब होता है तत्व कैसे बने अर्थात् मन व माया का रहस्य। यानी निराकार ब्रह्म। साकार ब्रह्म हर लोक में राजा बनकर राज करता है। और निराकार ब्रह्म सब लोक–परलोक का राजा होता है। लेकिन ये दोनों नश्वर होते हैं। कर्म आधार पर फल मिलता है जीव को। इनमें से ईश्वर कोई नहीं है। ईश्वर तो अन्य है। जो सबका पालन–पोषण कर रहा है अर्थात् जिसके कारण ये सब जीवित बना हुआ है और वह ईश्वर आत्मा/परमात्मा है। विश्व के हर पवित्र ग्रंथ में जो भी ज्ञान लिखित है वह सब ब्रह्म ज्ञान है। आत्मज्ञान को लिखा ही नहीं जा सकता है। केवल विवेक से ग्रहण किया जा सकता है। क्योंकि ब्रह्म की माया ऐसी है जैसे जमी हुई बर्फ भी पानी है और पिघली बर्फ भी पानी है और भाप बनी भाप भी पानी है। और पानी तो ब्रह्म है ही अर्थात् तत्व है। इस प्रकार ये तीनों अवस्थाओं में ब्रह्म को प्राप्त होना है। तीनों रूप में फिर बर्फ यानी शरीर बन जाना है। ये प्रकिया कर्म आधार पर चलती ही रहती है। और इन तीनों ब्रह्म से पार हो जाना परमात्मा यानी पूर्ण पार ब्रह्म है अर्थात् मोक्ष होता है और पूर्ण पार ब्रह्म /परमात्मा को केवल आत्मज्ञान से ही प्राप्त किया जा सकता है।

संत कबीर का आविर्भाव मध्ययुगीन सामाजिक वैचित्रयों में एक क्रांतिकारी घटना है। इस तत्कालीन मध्य युगीन रूढ़िवादी समाज में यौगिक सिद्धियाँ तांत्रिक घटनाओं व मायावी चमत्कारों के कारण लोगों में दहशत व्याप्त थी परंतु इस संक्रमण काल के दौर में कबीरदास ने जनसमुदाय को एक आशा की किरण एवं भय से मुक्ति देकर भाव–भक्ति की आत्मीय शांति में जीवन को गतिशीलता प्रदान कर सुरक्षा का शक्तिशाली कवच पहनाया। बाह्य जगत के अनेक झँझावातों के विपरीत आंतरिक जगत की यात्रा में मानवीय मूल्यों की शाश्वतता को स्थापित करने के प्रयास में ही कबीर ने भक्ति की शक्ति को समर्थन दिया था। इसमें कोई दो राय नहीं कि यह भाव भक्ति अमरता कबीर को गुरु कृपा से प्राप्त हुई थी। अमरता के इसी वरदान को पाकर कबीर, कबीर हुए थे।

अनंत व्योम की नीलिमा, भगवान भुवन भास्कर की लालिमा एवं शस्य श्यामला धरा की हरीतिमा के पीछे आख़िर किसकी सत्ता है? स्वर्णिम दिन और मोती सी रात, सुनहली साँझ और गुलाबी सबेरे को कौन चित्रकार बार–बार बनाता है और मिटाता रहता है? निर्गुण ब्रह्म की यह अवधारणा कबीर की मूलभूल प्रवृत्ति है, अर्थात् राम से तात्पर्य कबीर का निर्गुण ब्रह्म से है– आपने लिखा भी है– 'निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई' स्पष्ट है कि कबीरदास की राम–भावना भारतीय ब्रह्म–भावना से पूरा मेल खाती है। राम से कबीर का स्पष्ट अभिप्राय है –

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना।।

अर्थात् कबीर ने अपने राम को निर्गुण और सगुण दोनों ही माना है –

अला एकै नूर उपनाया ताकी कैसी निंदा।
ता नूर थै जगकीया कौन भला कौन मंदा।

कबीर के राम विषयक अवधारणा के पीछे हमें तत्कालीन मध्य युगीन समाज के बारे में कुछ विशिष्ट तथ्यों की ओर अपना ध्यान आकर्षित करना होगा और इसके साथ ही यह भी अवगत करना होगा कि आख़िर कबीर के समक्ष ऐसी कौन सी चुनौतियाँ थीं जो उन्हें राम विषयक विवेचना में प्रखर नहीं होने दिया। दरअसल कबीर एक युग दृष्टा कवि ही नहीं थे बल्कि आपके व्यक्तित्व में एक धर्मनिष्ठ साधक और कर्मनिष्ठ समाज सुधारक भी थे। इसलिए कबीर ने तत्कालीन सामाजिक गतियों की निस्सारता को समझा और निर्गुणोपासना की स्थापना में आत्मदान दिया।

कबीर के समकालीन समाज में मूर्ति पूजक हिंदुओं और मूर्ति भंजक मुस्लिमों के बीच परस्पर वैमनस्यता की ऊँची दीवारें खड़ी थीं और यही वह उचित समय था जब निर्गुणोपासना के द्वारा कबीर अवतारवादी, धारणाओं, मूर्ति पूजा, आस्थाओं, बहुदेववादी दृष्टियों पर भी व्यंग्य कर सकते थे। कबीर की इस निर्गुणोपासना के द्वारा ही अद्वैतवादी दर्शन, एकेश्वरवादी मत और मुस्लिम खुदावादी आस्था में समानता लाई जा सकती थी। यही कारण है कि कबीर भक्ति में रूपाकार को कोई महत्व नहीं है। तुलसी और सूर जैसे सगुण भक्तों के विपरीत कबीर ने निर्गुणराम नाम के स्मरण को ही निर्गुण भक्ति का आधार माना है –

निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई।
अवगति की गति लखी न जाई।।
चारि वेद जाके सुमृत पुरांना,
नौ व्याकरणां मरण ना जाना।।

यह कहकर कबीरदास जी ने एक ओर मूर्ति–पूजा, तीर्थाटन, पूजा–पाठ, कर्मकांड और अवतार दृष्टियों की आवश्यकताओं पर जन–समुदाय का ध्यान आकर्षित किया तो दूसरी ओर मुस्लिम ख़ुदावाद के एकेश्वरवादी मान्यताओं में साम्यता दिखाकर सर्व–धर्म–समन्वय की स्थापना का प्रयास भी किया है। कबीर की मान्यता है कि निर्गुण ब्रह्म की गुणवत्ता की स्थापना शब्दों के माध्यम से नहीं की जा सकती है। अर्थात् संत कबीर उसे शब्दों के दायरे की अपेक्षा संकेत और निर्देश मात्र से ही बतलाना चाहते हैं अर्थात् कबीर के राम का रूप सर्वव्यापी है और उसकी झलक कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को ही उपलब्ध हो पाती है, जो प्रेमांजन युक्त, अंतरदृष्टि वाले हैं। एक बात कबीर अपने भक्तजनों के प्रति स्पष्ट कर देते हैं वह यह कि निर्गुण ईश्वर सभी जीवों में व्याप्त उस परमात्मा के स्वरूप जैसा है और इसका आकार स्पष्ट होते हुए भी दिखता नहीं है उदाहरण के रूप में मिट्टी के बर्तन को लिया जा सकता है– "सृष्टि के जीव में मिट्टी के बने बर्तन की तरह बाह्य आकार में भिन्न तो है किंतु उसका निर्माण एक ही मिट्टी के तत्व से हुआ है। बाह्य भेद के भीतर यह अंतरंगता सबमें मौजूद है।"

कबीर के निर्गुण राम के स्वरूप की विशद् व्याख्या करने से पहले हमें कबीर की सीमाओं पर भी विचार करना आवश्यक हो जाता है।

यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि प्रत्येक काल की परिस्थितियाँ उस समय के समाज के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं और एक निश्चित सीमा के बाद दूसरी स्थितियों एवं परिस्थितियों का सामना तत्कालीन समाज शुरू कर देता है। जहाँ

तक कबीर की सीमाओं के बारे में हम कहें तो आपकी ''सबसे बड़ी सीमा यह है कि जिस भाषा के माध्यम से वे अनुभूत सत्य को व्यक्त करना चाहते थे वह उन्हें परंपरा से, समाज से, तत्कालीन धर्म चेतना के वाहक योगियों, वैष्णवों, सूफ़ियों, पंडितों, सिद्धों तथा मुल्ला–मौलवियों से प्राप्त हुई थी। वे उसे नया स्वर, नया तेवर, नई भंगिमा, नई प्रखरता, नया विश्वास दे सकते थे, किंतु उसमें निहित अर्थ–संस्कार को सहसा बदलना उनके बस की बात नहीं थी। उन्होंने परम तत्व के लिए 'राम', 'हरि', 'गोविंद', निरंजन, केशव, नारायण, जगजीवन, माधव, मुकुंद, महादेव, गोपाल, शालिगग्राम, रघुनाथ, सहज, शून्य, विश्वंभर, नरहरि बीठुला, मुरारी, करीम, रहीम, अल्लाह आदि जितने शब्दों का प्रयोग किया है, उन शब्दों के पीछे सैकड़ों वर्षों से चले आ रहे धार्मिक–दार्शनिक चिंतन के संस्कार थे। आज भी हम इन शब्दों का अर्थ ग्रहण करते समय संस्कार मुक्त नहीं हो पाते। .... कबीर की दूसरी सीमा थी लोक में सत्य के स्वरूप को लेकर फैला हुआ भ्रमजाल। इस भ्रमजाल को काटने के प्रयत्न में उनके कथन सापेक्ष हो गए हैं। इसलिए उनके विचारों में अंतर्विरोध प्रतीत होता है। समाज में विश्वासों, विचारों, मान्यताओं, संस्कारों के अनेक स्तर हैं। अनेक दायरे और सीमाएँ हैं। अनेक रूढ़ियाँ हैं। इनसे मुक्त होने के लिए किया गया संघर्ष भी स्वयं एक दायरा बनकर रह जाता है। इसलिए कबीर जब किसी सीमा को तोड़ते हैं, किसी अंध–विश्वास को खंडित करते हैं, किसी रूढ़ि का विरोध करते हैं तो उन्हें यह आशंका बनी रहती है कि उनके विचारों की भी एक सीमा न बन जाए। उनके कथनों की भी रूढ़ि न बन जाए।

इसलिए संदर्भ–विशेष में कही हुई अपनी ही बात को वे दूसरे संदर्भ में काट देते हैं या संदर्भ के अनुकूल उसकी दूसरी व्याख्या देते हैं। कबीर की तीसरी सीमा यह है कि वे जब जिस धर्म, नेता को संबोधित करते हैं, तब बहुत दूर तक उसकी परिचित शब्दावली का प्रयोग करते हुए उसे उसी की भाषा में समझाने की चेष्टा करते हैं। इसलिए कबीर की निजी मान्यताओं को समझने के लिए यह सतर्कता आवश्यक है कि उन्होंने कितना दूसरों को समझाने के लिए, यह दिखाने के लिए कि मैं तुम्हारे मर्म से परिचित हूँ, कहा है और कितना अपनी मान्यताओं को स्पष्ट करने के लिए।

स्पष्ट है कि राम विषयक अवधारणा के पीछे कबीर की अपनी ये विशिष्ट सीमाएँ थीं और उनको स्मरण कर आपने इन सीमाओं का अतिक्रमण नहीं किया। डॉ. श्याम सुंदर के अनुसार– "कबीर की राम भावना भारतीय ब्रह्म भावना से सर्वथा मिलती है जैसा कि कुछ लोग भ्रमवश समझते हैं, वह बाह्मार्थवाद मूलक मुसलमानी एकेश्वरवाद या खुदावाद के समर्थक नहीं थे...... वह राम को सगुण और निर्गुण दोनों मानते हैं। निर्गुण–निराकार ब्रह्म के उपासक होने के कारण ही कबीर ने 'राम' को आलंबन बनाया था।" इसलिए कबीर के राम दशरथ सुत राम से अलग हैं। यह रहस्य का विषय है। यही नहीं कबीर के 'राम' बौद्धों के शून्य ब्रह्म के प्रतिरूप हैं। आपने 'राम' के रूप में बौद्धों के शून्य ब्रह्म को एक व्यक्तित्व प्रदान किया है।

परम तत्व को बार–बार 'निर्गुण', निरंजन, निराकार कहते हुए कबीर उसमें उन गुणों की स्थिति मानते हैं जो सामान्यतः सभी भक्त अपने अराध्य में स्वीकार करते हैं। कबीर के निर्गुण राम 'कृपालु' हैं। उन्हीं की कृपा से कबीर जरामरण से मुक्त हो सके हैं। अपनी राम विषयक विवेचना को आगे बढ़ाते हुए कबीर लिखते हैं कि– ''जब न पवन थी न पानी, जब न धरणी थी न आकाश, जब न पिंड था न प्राणियों का आवास, जब न गर्भ था न मूल, जब न कली थी न फूल, जब न शब्द था न उसका आस्वाद, न विद्या थी न वाद, जब न गुरु था न शिष्य, जब सृष्टि ही नहीं थी, उस समय भी गम्य और अगम्य दोनों ही स्थितियों से परे जो अविगत तत्व विद्यमान था, उसकी व्याख्या कैसे हो सकती है।''

कबीरदास के अनुसार "इस अविगत निराधार तत्व का बार–पार नहीं जाना जा सकता। वह लोक और वेद दोनों से परे है। वह सारे संसार से अलग है। न उसका कोई गाँव है, न ठाँव, न

उसका कोई रूप है, न रेख, न गुण, न वेश। न वह बालक है, न युवा, न वृद्धि। ऐसा साहब कुल रहित है। वह अपने आप ही अपने को मुक्त कर लेता है।'' कबीर निर्गुण, निराकार ब्रह्म के बारे में आगे कहते हैं कि "उसका रूप स्वरूप कुछ कहते नहीं बनता। उसका हल्कापन या भारीपन भी नहीं तौला जा सकता। वह भूख–तृष्णा, धूप–छाँह, सुख–दुख सभी से रहित है। वह अविगत अपरंपार ब्रह्म ज्ञान रूप और सर्वत्र विद्यमान है उसके समान दूसरा कोई नहीं है।'' अर्थात् कबीर का यह निर्गुण राम (परम तत्व) सर्व–निरपेक्ष होते हुए भी 'एक' है। वे बार–बार कहते हैं कि "मैंने तो उस एक तत्व को 'एक ही' करके समझा है। जो दो कहते हैं उन्होंने उसे ठीक से पहचाना नहीं है ऐसे ही लोगों को दोज़ख में जाना पड़ता है।'' अपनी बात कहते समय जब लोगों पर कबीर असर नहीं डाल पाते तो वे भेद–दृष्टि वालों की जड़ता (मूर्खता) पर झल्ला उठते हैं और कहते हैं कि "अरे भाई, क्यों व्यर्थ में बीच में भेद पैदा करते हो? तत्व 'दो' कैसे हो सकता है।'' हिंदू–मुस्लिमों की संकीर्णता एवं मतभेदों पर अपना विचार व्यक्त करते हुए कबीर कहते हैं कि– ''हिंदुओं और तुर्कों का कर्ता एक ही है।"

'राम' और 'रहीम', 'केशव' और 'करीम', बिसमिल और विश्वंभर में भेद नहीं करना चाहिए। इसी क्रम में अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कबीर कहते हैं कि ''परम तत्व एक है, किंतु यह सब में व्याप्त है। कौन राजा है कौन रंक? कौन वैद्य है, कौन रोगी? किसे पंडित कहा जाए और किसे योगी? इन सबमें वही एक विद्यमान है। संसार के सारे पदार्थों में उस एक ने ही अपने को स्थापित किया है। जो रूप रंग रहित है, वही घट–घट में (प्रत्येक शरीर में) समाया हुआ है। वह सबमें और सब उसमें विद्यमान हैं इसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। मुसलमान एक खुदा की बात करते हैं; किंतु मेरा स्वामी तो घट–घट में समाया हुआ है।''

ईश्वर के सर्वव्यापी होने पर एक उदाहरण के द्वारा कबीर स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि ''जैसे सूर्य (एक) का प्रतिबिंब प्रत्येक प्रकार के जल (नदी, समुद्र, कुआँ, घड़ा आदि) में पड़ता है, उसी प्रकार एक ही राम सभी पदार्थों में प्रतिबिंबित है।'' इसलिए मन की चंचलता पर व्यंग्य करते हुए कबीर कहते हैं कि "रे मन ! कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। वह अविनाशी तो हृदय–सरोवर में ही विद्यमान है। उसे दुनिया में ढूँढ़ना तो भ्रम में पड़ना है। हरि तो हृदय में ही है।" इसलिए वह आत्माराम है। कबीर कहते हैं कि "भोले मनुष्यों ! तुम किस विचार से पूजा करते हो? 'आत्माराम' के अतिरिक्त और कोई नहीं है।"

कबीर के अनुसार ''नंगा रहने या चर्म लपेटने से कुछ नहीं होगा। आत्माराम को पहचानने से ही कुछ हो सकता है।''

कबीर का यह आत्माराम शंकराचार्य के ब्रह्म की तरह बिल्कुल निष्क्रिय कदापि नहीं है वरन् वह सर्वव्यापी अखिल सृष्टि का कर्ता भी है क्योंकि ''आकार–रहित और अव्यक्त होते हुए भी अर्थात् हाथ, पैर, मुख, नेत्र, कान, जिह्वा आदि के न होने पर भी वह परमात्मा संसार की सारी संवेदनाएँ ग्रहण करने में समर्थ है। वह बिना मुख के खाता है, बिना पैरों के चलता है, बिना जिह्वा के गुण–गान करता है और अपने स्थान पर स्थिर रहते हुए भी दशों दिशाओं में गतिशील रहता है।'' कबीर के राम (निर्गुण ब्रह्म) विषयक इस व्याख्या के पीछे जो निष्कर्ष निकलकर आए वह निम्न हैं –

–कबीर के राम सर्वव्यापी, परम तत्व एवं आत्माराम हैं।

–कबीर के राम पल भर में सृष्टि की रचना करने वाले भुवन पति हैं।

–कबीर के राम करुणा, दया, कृपा, उदारता जैसे महान गुणों के स्वामी हैं।

–आकार रहित होने के बावजूद कबीर के राम संसार की सभी शक्तियों से परिपूर्ण एवं उनको अपने वश में करने वाले हैं।

–कबीर के राम सर्वव्यापी, अखिल विश्व के स्वामी एवं सभी के हृदय में सदैव विद्यमान रहने वाले हैं।

–कबीर के राम का कोई आकार नहीं है इसलिए उसकी शक्ति–सामर्थ्य एवं अगोचर दिव्य सत्ता को हम केवल महसूस कर सकते हैं उसे व्यक्त करना सबके बस की बात नहीं है।

यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कबीर के राम विषयक उपर्युक्त विवेचना जहाँ एक और उनके व्यक्तिगत चिंतन का आधार हो सकती है तो वहीं दूसरी और तत्कालीन समय में व्याप्त आध्यात्मिक चेतना की प्रेरणास्रोत भी, क्योंकि कबीर के राम के परम तत्व संबंधी व्याख्या की गहराई में यदि हम जाएँ तो निर्गुण–सगुण या द्वैत–अद्वैत से परे 'समतत्व' के रूप में लक्षित करने वाली बात नाथयोगियों के दर्शन में स्पष्टतया दिखती है। इसमें कोई बड़ी बात नहीं कि कबीर ने तत्कालीन समय में यह द्वैत–अद्वैत (निर्गुण–सगुण) संबंधी विवाद यहीं से ग्रहण किया हो। रामचंद्र तिवारी जी के शब्दों में कहें तो "परम तत्व को द्वैत–अद्वैत से परे निर्दिष्ट करने का अर्थ था सारे विवादों से ऊपर उठ जाना। यही कबीर का अभीष्ट था।"

इस अवतार की आवश्यकता वाले आधारों की व्याख्या करते हुए आगे बताया गया है कि मनु और शतरूपा ने इसके लिए घोर तपस्या की। ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने उनसे बार–बार संपर्क किया किंतु दंपति ने जोर देकर यही कहा कि वे चाहते हैं कि परम ब्रह्म स्वयं प्रकट होकर उन्हें आशीर्वाद दें। वे वरदान के लिए ब्रह्मा, विष्णु और शिव के आश्वासन से कदापि संतुष्ट नहीं हुए। वे चाहते थे कि जो स्वरूप शिव के हृदय में बसता है, जिसके बारे में महान योगियों का ध्यान रहता है और जो भुशुंडीकी अंतरात्मा की भक्ति के महासागर में हंस की तरह तैरता है (ज्ञान, योग और भक्ति तीनों के रूप में) स्वयं होकर उन्हें आशीर्वाद देने के लिए ही वे तपस्या कर रहे हैं –

जो स्वरूप बस सिव मन माही,
जेहि कारण मुनि जतन कराही।।
जो भुशुण्डि मन मानस हंसा,
सगुन अगुन जेहिं निगम प्रशंसा।।
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन।
(मानस : 1य1/45/3)

इसी तरह श्रीमद्भागवत में भी भगवान कृष्ण के वेदव्यास ठीक आरंभ में ही (भागवत 1/1/1) संसार के नियंता पूर्ण ब्रह्म के पूर्ण सत्य का पता लगाने के लिए प्रतिज्ञा करते हुए कहते हैं –

सत्यं परं धीमहि

इस प्रकार राम तुलसीदास के लिए मात्र पुराणों के भगवान विष्णु के अवतार नहीं है और न ही वेदव्यास के लिए कृष्ण ईश्वर कृष्ण हैं।

इस दर्शन पर प्रकाश डालने के लिए तुलसीदास ने आगे अनेक इतिवृत्त समेटे हैं। उनके अनुसार, जिस समय राम, रावण द्वारा सीता के अपहरण पर विलाप कर रहे थे, उस समय अगस्त्य के आश्रम से लौटते समय शिव और सती उस स्थान से होकर गुजरे। सती राम के विलाप को एक सामान्य मनुष्य की तरह ही देखकर विस्मित हुईं और उन्हें कभी सर्वोच्च देवता के रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होती हैं। उन्होंने भी राम की शक्ति के संबंध में परीक्षा करने का निर्णय किया और उन्हें आश्चर्यचकित करने के लिए सीता का रूप ले लिया। इसने भगवान शिव को इस सीमा तक क्षुब्ध कर दिया कि जब तक वे पार्वती के रूप में एक बार फिर से जन्म नहीं ले लेती हैं, वे तब तक के लिए उनका त्याग कर देते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत और रामायण का केंद्रीय विषय मुख्यतः इस संदेह का ही निवारण है कि वे मात्र विष्णु के अवतार हैं ।

भारतीय दार्शनिक दृष्टि के भगवान तीन प्रकार के हैं –

1. निर्गुण निराकार (वेदांत उपासना का अव्यक्त ब्रह्म)
2. निर्गुण साकार (सांख्य और योगदर्शन का ईश्वर)
3. सगुण साकार (परंब्रह्म/परमेश्वर का लोक– अवतार)

पहली श्रेणी का ईश्वर किसी को प्रत्यक्ष उपलब्ध नहीं है। वेदांत के अनुसार वह अपनी माया से ही ईश्वर, जीव और संसार के रूप में प्रकट होता है। उसकी माया का सात्विक पक्ष

ईश्वर, राजसिक पक्ष जीव और तामसिक पक्ष अचेतन जगत की रचना करता है । सामान्य बोध के लिए यह कहा जा सकता है कि वह अंतरिक्ष की तरह परम व्यापक, अनादि और अनंत है।

दूसरे प्रकार का ईश्वर परमात्मा के रूप में विभिन्न रूपों और अवतारों में विद्युत या अग्नि की तरह अनुभव किया जा सकता है । वह पहली श्रेणी के परम ब्रहम की सभी विशेषताओं को समाहित करते हुए अपनी दिव्यता में सर्वथा सर्वत्र उपलब्ध है। वह न केवल प्रत्येक कण में मौजूद है, बल्कि खुद को हम सभी के लिए प्रत्येक कण के रूप में प्रकट कर रहा है और मात्र हमारे अनुभव ही नहीं बल्कि बोध के लिए उपलब्ध है।

तीसरे सगुण साकार भगवान को हम भगवान विष्णु के प्रधान 10 अथवा कुल 24 अवतारों के रूप में समझ सकते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे अनेक दिव्य पुरुष, महात्मा और सिद्ध भी धरती पर अवतरित होते रहे हैं जो अपने ज्ञान, साधना या भक्ति के आधार पर ईश्वरत्व प्राप्त कर लेते हैं।

सारतः भगवान श्रीकृष्ण द्वारा गीता में 'परम ब्रह्म' की यह परिभाषा परम प्रमाण के रूप में स्मरण में रखी जा सकती है–

अक्षरं ब्रह्म परमं (गीता 8/3)

परम ब्रह्म, अविनाशी 'अक्षर' तत्व है।

वास्तव में उसे हम कितने ही नाम दे सकते हैं और निरंतर समझने और बोध प्राप्त करने की चेष्टा कर सकते हैं किंतु किसी भी प्रकार का भेदभाव कदापि उचित और वांछनीय नहीं है।

श्रीरामचरितमानस में बालि का यह कहना कि–

जनम जनम मुनि जतन कराहीं, अंत राम
कहि आवत नाहीं।।

सिद्ध करता है कि राम तत्व तत्कालीन रामावतार के कई युगों पूर्व उतनी ही महत्ता लिए विद्यमान था। तभी तो बालि ने मुनियों के अनेकानेक जन्मों एवं जतनों के बावजूद उनके राम न कह पाने की विफलता की ओर इशारा किया था। बालि को सांसारिक योगों से गुजरते हुए भी 'राम तत्व' के शाश्वत होने का पूर्ण ज्ञान था। इसीलिए 'राम–राम' कहते हुए उसने इतनी सरलता से तन त्याग किया जैसे किसी विशालकाय हाथी के कंठ से हल्की सी पुष्पों की माला गिर गई हो। 'राम' का काल से परे होना एवं अनादित्व हमारे मनन का विषय है।

'राम की शक्तिपूजा' के कथानक का आधार बांग्ला भाषा की रचना कृतिवास रामायण है लेकिन निराला ने इस कविता में कुछ मौलिक प्रयोग भी किए हैं। जैसे निराला ने इसमें राम को भगवान के रूप में न चित्रित कर इनसान के रूप में चित्रित किया है।

हनुमान अपने समय के सबसे ज्ञानी वानर थे, जो उन थोड़े से लोगों में से एक थे जो भगवान विष्णु के रूप में राम की वास्तविक पहचान जानते थे, वे जानते थे कि राम तीनों लोकों के भगवान थे और उनके जन्म का कारण पराक्रमी रावण के खिलाफ उनकी लड़ाई में सहायता करना था... हनुमान का जन्म वायु के पुत्र के रूप में हुआ था और शिव का एक आंशिक रूप (महाभारत के अनुसार)।

महाभारत महाकाव्य के अनुसार, रावण के खिलाफ राम को सेवा प्रदान करने के लिए शिव ने अपनी ऊर्जा का एक हिस्सा हनुमान जी को दिया।

हनुमान राम के प्रति समर्पित थे क्योंकि वायु पुत्र जानते थे कि राम सर्वोच्च भगवान विष्णु हैं, यही कारण है कि बुद्धिमान हनुमान ने राम की हर तरह से मदद की।

"प्रसिद्ध राम, जो विष्णु के संरक्षण में स्वामी के बराबर हैं और आकाशीय, राक्षसों या पुरुषों में सबसे आगे हैं, या यक्षों के अर्ध–दिव्य प्राणियों या सेनाओं में या सभी विद्याधर, सुपर के राजा के बीच में हैं प्राकृतिक प्राणी या गंधर्वों के बीच आकाशीय संगीतकारों या उरगाओं के बीच अर्ध–दिव्य नागों के बीच या सिद्धों के बीच पवित्र प्राकृतिक रूप से सुपर–प्राकृतिक शक्तियाँ या उत्कृष्ट किन्नरों के बीच मानव आकृति और घोड़े के सिर के साथ या सभी प्रकार के पक्षियों के बीच पौराणिक प्राणी। सभी जगह और हर समय सभी जीवित प्राणी।"

हनुमान खुद को राम का सेवक मानते थे, हालाँकि वे स्वयं बहुत शक्तिशाली थे... इसका

कारण केवल राम के लिए हनुमान का सम्मान ही नहीं, बल्कि हनुमान जी की विनम्रता भी थी।

हम हनुमान जी को राम के महाकाव्य में कई बार देख रहे हैं, वह दशरथ के सबसे बड़े पुत्र के लिए अपनी असीम सेवाओं के कारण राम और सीता दोनों के पसंदीदा थे।

हनुमान जी की सेवाओं से राम इतने अधिक प्रसन्न हुए कि उन्होंने हनुमान को अमर होने का आशीर्वाद दिया और हनुमान को अपना वचन दिया कि जब तक राम के नाम के बारे में पृथ्वी पर बात की जाएगी, उनका भी नाम लिया जाएगा।

रमन्ते योगिनः अस्मिन सा रामं उच्यते

अर्थात्, योगी ध्यान में (जिस शून्य में) रमते हैं उसे राम कहते हैं।

श्री सुंदरकांड का नित्य प्रातः पाठ करने वाले साधक से हनुमान जी संतुष्ट होते हैं तथा कठिन समय में उसकी सहायता करते हैं।

मध्याह्न के समय श्री सुंदरकांड का पाठ करने से साधक में रौद्र भाव की वृद्धि होती है और वह साहस एवं पराक्रम से परिपूर्ण हो जाता है।

सायंकाल के समय श्री सुंदरकांड का पाठ करने से श्री हनुमान जी की कृपा मिलती तो अवश्य है, परंतु वे साधक की परीक्षा लेने लगते हैं तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए उसका दर्प चूर्ण करते रहते हैं। ऐसे साधक के सांसारिक कार्यों में अतिशय बाधाएँ आती रहती हैं। कमजोर मानसिकता वाले साधक प्रायः उनकी साधना से विमुख ही हो जाते हैं। सायंकाल की श्री सुंदरकांड की साधना से, हनुमान जी के तांत्रिक स्वरूप की आराधना होती है। इस आराधना को बिना किसी गुरु के पूर्ण नहीं किया जा सकता। अतः मेरा सुझाव यह है कि श्री हनुमान जी की सायंकालीन पूजा, अनुष्ठान अथवा साधना करने के पूर्व गुरुदेव का आश्रय एवं निर्देश अवश्य लें।

कबीर और तुलसीदास के राम में इस प्रकार के गुण पाए जाते हैं–

- कबीर के राम निर्गुण ब्रह्मा हैं।
- कबीर कि राम–भावना ब्रह्म–भावना है।
- कबीर का राम से अभिप्राय है। दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना।।
- कबीर ने अपने राम को 'निर्गुण' और 'सगुण' दोनों रूपों में माना है।
- कबीर की सगुण भावना सूर, तुलसी आदि कवियों की पौराणिक अवतारवादी कल्पना के विपरीत उपनिषदों तथा वेदांती विचारधारा के अधिक सन्निकट है।
- कबीर के राम ना तो अवतार लेते हैं और ना ही लीला करते हैं।
- तुलसी के राम दशरथ नंदन हैं।
- तुलसी के राम के दो रूप हैं– (क) मानव रूप एवं (ख) ब्रह्म रूप।
- मानव रूप में राम दशरथ सुत हैं, अजीर बिहारी हैं– *मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवहु सो दशरथ अजिर बिहारी।।*
- राम का दूसरा रूप ब्रह्म का है। जिसकी उपासना, जप इत्यादि उमा सहित शिव जी इस प्रकार करते हैं– *मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी।।*
- तुलसी ने अपने राम को सगुण रूप में माना है।
- तुलसी के राम अवतार लेते हैं और लीला भी करते हैं।

वस्तुतः सगुण और निर्गुण में प्रमुख अंतर अवतार एवं लीला को लेकर ही है।

तुलसी रचित रामचरितमानस वैश्विक साहित्य का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। प्रस्तुत ग्रंथ में वेद, शास्त्र, पुराण, धर्म, संस्कृति, जीवन मूल्यों आदि का सार मिलता है। हालाँकि तुलसी ने अपनी काव्य रचना का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए मानस में लिखा है की वे स्वांतः सुख हेतु रघुनाथ गाथा लिख रहे हैं। लेकिन उनकी सभी रचनाएँ लोकहित की दृष्टि से ही लिखी गई हैं। तुलसी मानस के उत्तरकांड में कलिकाल की विस्तृत चर्चा करते हैं और राम कथा का आदर्श प्रस्तुत करते हुए समाज परिवर्तन की प्रेरणा देते हैं। तुलसी राम के अवतार का कारण बताते हैं।

जब जब होइ धर्म की हानी ।
बाढ़हि असुर महा अभिमानी।

तब तब धरि प्रभु मनुज सरीरा।
हरहिं सकल सज्जन भव पीरा।

मानस के नायक श्रीराम सर्वप्रथम एक आदर्श मानव हैं जो मानव कल्याण के लिए धरती पर अवतरित हुए हैं। वह धीर वीर और गंभीर हैं।

विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।

राम का व्यक्तित्व शील, शक्ति और सौंदर्य का अगाध भंडार है। वह मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। सनातन मूल्यों की रीति के पालक हैं। राम का चरित्र सेवा धर्म के द्वारा लोकहित की सिद्धि करता है। वह सामान्य जन के लिए महती प्रेरणास्पद है। लिहाजा वर्तमान में राम विश्वनायक के चारित्रिक मूल्यों को धारण किए हुए हमारे लिए आदर्श पुरुष के रूप में वंदनीय है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कबीर ग्रंथावली–श्यामसुंदर दास
2. 'रामचरितमानस' अदभुत जीवनी शक्ति का काव्य –डॉ. तृप्ता
3. रामचरितमानस (मूल गुटका) गीता प्रेस, गोरखपुर
4. त्रिवेणी नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी
5. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. सुधींद्र कुमार
6. हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल
7. गूगल की सहायता

– हिंदी सह–प्राध्यापक, सरकारी कला कॉलेज, डॉ. बी आर अंबेडकर मार्ग,
बेंगलूरु–560001

❑❑❑

प्रकृति के संरक्षण में राम कथा

डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह

मानव ने पारिस्थितिक संरचना को इतना बदल दिया है कि वर्तमान में वे प्रकृति से पर्याप्त रूप से अलग होने के बाद भी खुद को अनुकूलित करने में असमर्थ हैं। इसलिए, आज स्थिति मानव अस्तित्व के सामने एक यक्षप्रश्न के रूप में सामने आई है। अब समस्या यह है कि पर्यावरण से आगे बढ़कर मानवतावाद के पर्यावरणीय पुनर्सयोजन के लिए यह कैसे संभव है? भारत में स्वतंत्रता के बाद राम राज्य की स्थापना राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का सपना था। हालाँकि महात्मा गांधी भारतीय लोगों के लिए कई मूल अवधारणा लेकर आए थे लेकिन राम राज्य की अवधारणा को महात्मा गांधी की नई अवधारणा नहीं राम कथा से उधार लिया गया था। राम राज्य की अवधारणा महर्षि वाल्मीकि के वाल्मीकि रामायण और तुलसीदास जी के रामचरितमानस में बहुत स्पष्ट है। इस लेख में राम राज्य के पर्यावरणीय पहलू का वर्णन दृष्टांतों के साथ किया गया है।

मुख्य शब्दः राम राज्य, राम कथा, पर्यावरण, रामायण, रामचरितमानस

प्रस्तावना

वर्तमान समय में सबसे बड़ी वैश्विक समस्या पर्यावरण असंतुलन है जिसने पूरे बहमांड की स्थिति को भयावह बना दिया है। पर्यावरण एक प्रकार की मानव विकास यात्रा है। यदि मानव इतिहास को भूत, वर्तमान और भविष्य के संदर्भ में देखा जाता है, तो इसके लिए निर्धारक, पूर्ववर्ती और नव–निर्धारक होना आवश्यक है। संभावित युग में जिसमें वर्तमान मानव की रक्षा की जाती है, पर्यावरण के सामने दो महत्वपूर्ण संकट प्राकृतिक शोषण और पर्यावरण प्रदूषण हैं। समाज में हर कोई निरंतर गतिमान वाले क्षणों में है। हम अवचेतन रूप से अपने अतीत से जुड़े हैं जो हमेशा अपनी यात्रा पर होता है। हम सदियों से लगातार यात्री हैं। हम यात्रा कर रहे हैं और खुद को बदल रहे हैं और इसे जाने बिना अपने परिवेश में भी बदलाव ला रहे हैं। हमारी सनातन यात्रा के दौरान, हम नदियों, पहाड़ों तथा प्रकृति की सुंदरता, आकाश और पृथ्वी से भेजे गए विनाशों का सामना करते हैं, नाना प्रकार से परोक्ष एवं प्रत्यक्ष रूप से युद्धों का सामना करते हैं। हम आम यात्री नहीं हैं। यह समय का बदलता मौसम है। हम अपने पर्यावरण को अपने साथ लेकर चलते हैं। हम इसके उत्पाद हैं और हम इसका उत्पादन करते हैं। हमारा अस्तित्व अन्योन्याश्रित है। प्रकृति और पर्यावरण के बिना जीवन के बारे में सोचना असंभव है। समाज के समग्र विकास के लिए प्रकृति के साथ आगे बढ़ना आवश्यक है। चाहे हम कंक्रीट के जंगल से गुजरे, भौतिक समृद्धि के कितने भी चरण हों, समाज के वास्तविक विकास के लिए भावनाओं के मूल से ही हरियाली को सूखे रेगिस्तान में लाया जा सकता है। आज, हम तथाकथित विकास के एक चरम पर पहुँच गए हैं, जहाँ बढ़ता पर्यावरण प्रदूषण हमारे अस्तित्व को लगातार चुनौती

दे रहा है। हम सभी ने प्रकृति से दूर किए गए एकपक्षीय विकास के परिणामों को देखा है। वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण, ओजोन परत में छेद और एसिड वर्षा की अत्यधिक विनाशकारी प्रकृति बुद्धिजीवियों और बुद्धिमान लोगों की चिंता का कारण है।

राम कथा और पर्यावरण संरक्षण

भारत में राम कथा को मात्र एक धार्मिक कथा नहीं माना जाता है बल्कि यह जन–जन द्वारा जीवन जीने की सार्वभौमिक शैली है। जीवन में प्रतिदिन निद्रा खुलने से रात्रि में शय्या गमन तक राम ही राम व्याप्त रहते हैं। रूप या माध्यम भले ही अलग हो परंतु राम की विद्यमानता होती ही है। इस उपस्थिति का प्रमुख कारण है राम कथा में जीवन के प्रत्येक पक्ष से संबद्धता। विवेच्य विषयानुसार देखें तो हम पाते हैं कि पर्यावरण अनुसंधान का उद्देश्य और दायरा पर्यावरण विज्ञान के गतिशील और बहु–विषयक क्षेत्र को प्रतिबिंबित करने के लिए दिन–प्रतिदिन बढ़ा रहा है। उत्तराखंड के केदारनाथ की भयानक प्राकृतिक आपदा ने मानव समाज को हिलाकर रख दिया, साथ ही साथ देश में कहीं भी सूखा, अत्यधिक बारिश और बाढ़ ने जीवन को नष्ट कर दिया है। राम राज्य की वैचारिक नींव जिसकी आधुनिक समय में महात्मा गांधी ने परिकल्पना की थी, महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास जैसे विद्वानों ने राम कथा के माध्यम से इसे भारतीय जनता के समक्ष रखा। रामायण और रामचरितमानस में पर्यावरण की अवधारणा को समझना हमारे वर्तमान भौतिकवादी प्रगतिशील दृष्टिकोण से समझ पाना आसान नहीं है। राम कथा में प्रकृति को उसी चेतना के विस्तार के रूप में देखा जाता है।

जब राम अपने वनवास के दौरान पंचवटी पहुँचे, तो उनकी भेंट जटायु से हुई। जटायु एक गिद्ध, एक पक्षी था। यह उसके विशाल शरीर और पंखों के साथ इतना अनुग्रह था कि राम के भाई लक्ष्मण ने उसे भ्रमवश राक्षस समझा। जटायु ने राम को वत्स (पुत्र) के रूप में संबोधित किया तथा स्वयं को राजा दशरथ का मित्र बताया। जब राम ने उनकी जाति के बारे में जानना चाहा, तो उन्होंने सत्रह प्रजापतियों की उत्पत्ति और उनकी उत्पत्ति का पूरा विवरण दिया। जिसके अनुसार, प्रजापति की साठ बेटियाँ थीं। उनमें से आठ का विवाह कश्यप के साथ हुआ, जिनमें से केवल चार ही मातृत्व प्राप्त कर सकीं। अदिति ने तैंतीस देवताओं, बारह आदित्य, आठ वसुओं, ग्यारह रुद्रों और दो अश्विनिकुमारों को जन्म दिया।

सीता अंत में पृथ्वी की गोद में सदा के लिए समा गईं। प्रकृति की संतान को प्रकृति का ही अंतिम सहारा प्राप्त हुआ। राम अपने परिजनों, मित्रों, अयोध्या निवासियों, वानरों, पक्षियों और सरयू नदी में घूमने वाले जीवों के साथ अपने स्वयं के लोक में वापस चले गए। (वाल्मीकि रामायणः अरण्यकांड, उत्तरकांड, केंटो 110, और छंद 16–21)

प्राचीन काल में, लोग एक–दूसरे से समाचार पूछते हुए वनों, बागों, जल निकायों आदि का कौशल जानना चाहते थे। इसका कारण यह था कि उस समय लोग प्रकृति के विभिन्न तत्वों को परिवार की सीमा के भीतर मानते थे। भले ही शहरी क्षेत्रों में नहीं, लेकिन आज भी ग्रामीण भारत में, लोग एक–दूसरे का अनुसरण करने की कोशिश करते हुए प्रकृति को जानने के लिए उत्सुक हैं। जैसे गर्मी कैसी हो रही है। बारिश कैसे हुई आदि इस संबंध में एक उदाहरण चित्रकूट में राम भरत मिलन के समय मिलता है। श्रीराम अपने दुखी भाई भरत से पूछते हैं कि उनके दुखी होने का कारण क्या है? क्या उनके राज्य में वन क्षेत्र सुरक्षित हैं? यानी, पहले लोग वन क्षेत्र सुरक्षित नहीं होने पर दुखी और व्याकुल हो जाते थे। वाल्मीकि रामायण में वर्णित उदाहरण इस प्रकार है–

कच्चिन्नागवनं गुप्तं कच्चित् ते सन्ति धेनुकाः।
कच्चिन्न गणिकाश्वानां कुंजराणां च तृप्यसि।।
(वाल्मीकि रामायण,2/100/50)

कई स्थानों पर वाल्मीकि ने पर्यावरण संरक्षण के प्रति संवेदनशीलता को रेखांकित किया है। जिन जंगलों में हाथियों के झुंड पाए जाते हैं, वे प्रकृति द्वारा संरक्षित हैं। जनसामान्य के मध्य दूध देने वाली गायों की बड़ी संख्या होती है। हाथी एवं

गाएँ प्रकृति द्वारा प्रदत्त चारे से अपना भरण पोषण करते हैं। वे मानव पर सीधे रूप से निर्भर नहीं रहते हैं। भरत जी अपनी सेना और अयोध्या निवासियों को छोड़कर अकेले मुनि के आश्रम में जाते हैं ताकि आसपास के लोगों तथा उनकी संपत्ति को कोई परेशानी या क्षति न हो–

ते वृक्षानुदकं भूमिमाश्रमेषूटजांस्तथा।
न हिंस्युरिति तेवाहमेक एवागतस्ततः।।

(वाल्मीकि रामायण,2/91/09)

(वे आश्रम के पेड़, पानी, जमीन और नर्सरी को नुकसान नहीं पहुँचाते हैं, इसलिए मैं अकेले यहाँ आया हूँ। यह पर्यावरण संवेदनशीलता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।) राम राज्य पर्यावरण की दृष्टि से बहुत समृद्ध था। मजबूत जड़ों वाले फलों और फूलों से लदे पेड़ पूरे इलाके में फैल गए थे–

नित्यमूला नित्यफलास्तरवस्तत्र पुष्पिताः।
कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शौं मरुतः।।

(वाल्मीकि रामायण,6/128/13)

श्रीराम के राज्य में पेड़ों की जड़ें हमेशा मजबूत थीं। वे पेड़ हमेशा फूलों और फलों से लदे रहते थे। बादलों ने लोगों की इच्छाओं और जरूरतों के अनुसार बारिश की। हवा धीमी गति से चल रही थी, जिससे उसका स्पर्श सुखद लग रहा था। तुलसीदास ने रामचरितमानस में भी वर्णन किया है कि उस समय पर्यावरण प्रदूषण की कोई समस्या नहीं थी। वन क्षेत्र काफी बड़े क्षेत्र में मौजूद थे। वन क्षेत्रों में, ऋषियों और ऋषियों के आश्रम थे, जो उस समय ज्ञान और विज्ञान के केंद्र थे। इन ऋषियों का समाज में बहुत सम्मान था। यहाँ तक कि महान राजा महाराजा भी इन मनीषियों के सम्मान में उदासीन हो जाते थे। श्रीराम को वनवास मिलने के बाद, वह सबसे खुश थे कि वन क्षेत्र के ऋषियों का सत्संग का लाभ मिलेगा– *मुनिगन मिलन विशेष वन, सबहिं भाँति हित मोर।*

तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में कई स्थानों पर वन क्षेत्रों का सजीव वर्णन किया है। वन क्षेत्र घनी आबादी से दूर स्थित थे और इन क्षेत्रों में निर्दोष लोग रहते थे। श्रीराम ने इन निर्दोष लोगों के साथ घनिष्ठ मित्रता स्थापित की और जीवन भर उनका निर्वहन किया। निषादराज केवट, वानरराज सुग्रीव और गिद्धराज जटायु इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। वनवासियों के साथ राम की मित्रता प्रसिद्ध है। इन बंदरों की मदद से, उन्होंने लंका पर विजय प्राप्त की, श्रीराम ने उपेक्षित गिद्ध, जटायु को बहुत सम्मान दिया। अंगद, हनुमान, जामवंत, नल, नील, सुग्रीव, द्विद्या, आदि भालू, कपि और जटायु जैसे गिद्ध श्रीराम की मदद से हमेशा के लिए अमर हो गए। संपूर्ण रामचरितमानस में हम पाते हैं कि विभिन्न प्राकृतिक सामग्रियों को केवल उपभोग नहीं माना गया है। बल्कि, सभी प्राणियों और वनस्पतियों के साथ प्रेम का संबंध स्थापित किया गया है। प्रकृति के अवयवों का सेवन निषिद्ध नहीं है। उनके प्रति कृतज्ञ होने से, हम उन्हें तब तक आवश्यक रूप से उपयोग कर सकते हैं जब तक कि किसी तत्व के अस्तित्व को खतरा न हो। किसी भी मामले में किसी भी प्रजाति को खतरे में नहीं डाला जाना चाहिए। राम राज्य में प्रकृति के उपहार स्वतः प्राप्त हुए। तुलसीदास जी राम राज्य में उनसे प्राप्त वन आवरण और उपहारों को दर्शाते हैं।

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग जग पंचानन।।
खज मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा।।
सीतल सुरभि पवन वह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा।।
लता बिटप माँगे मधु चवहीं। मनभावतो धनु पय स्रवहीं।।
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेता भई कृतयुग कै करनी।।
प्रगटीं गिरिन्ह विविध मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी।।
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी।।
सागर निज मरजादा रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं।।
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न

दस दिसा बिभागा।।
बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि जप जेतनेहिं काज।।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र के काज।
(रामचरितमानस, 7/23)

उपर्युक्त विवरण में, हम पाते हैं कि प्रकृति राम राज्य में उपहार देने के लिए स्वतः उपयोग करती थी। वास्तव में, प्रकृति हमें सब कुछ देती है, हमें बस धैर्य और बुद्धिमान होना होगा। प्रकृति का सीमित शोषण ही सुखद भविष्य की गारंटी है। हमें प्रकृति को परेशान किए बिना प्रकृति द्वारा प्रदत्त वस्तुओं का उपभोग करना चाहिए। गणितीय भाषा में, यदि हम केवल ब्याज का उपभोग करते हैं, तो मूलधन हमेशा बना रहेगा और हम हमेशा के लिए ब्याज का उपभोग करते रहेंगे। विदोहन का कानून कल्याणकारी है। राम राज्य में प्रकृति का शोषण निषिद्ध है। प्रकृति का असीमित शोषण अपराध है। प्रकृति प्रदत्त उपहारों का उपभोग राम राज्य का आदर्श है। निरंतर उपज का सिद्धांत परिकल्पित करता है कि एक जंगल का इतना दोहन किया जाना चाहिए कि वार्षिक या आवधिक भावनाएँ वार्षिक या आवधिक विकास से अधिक न हों, जैसा कि मामला हो सकता है।

आधुनिक वानिकी की स्थिरता के सिद्धांत का मतलब है कि हमें वानिकी उत्पादों का इस तरह से उपभोग करना चाहिए कि बुनियादी संपत्ति को नुकसान न हो। हमारे पूर्वजों की सोच इससे भी आगे थी। वन क्षेत्रों को नुकसान न हो, यह पर्याप्त नहीं है, लेकिन वन क्षेत्रों में निरंतर प्रयास किए जाने चाहिए। इसलिए, पर्यावरण प्रदूषण की समस्या के बावजूद, दशरथ, राम, सीता और लक्ष्मण द्वारा समय-समय पर वृक्षारोपण का काम किया जाता है। बह्मांड का हर तत्व, जिसका निर्माण कृत्रिम तरीकों से नहीं किया जा सकता है, हमारे लिए अमूल्य है। हम प्रकृति के किसी भी हिस्से की उपेक्षा करके खुश नहीं रह सकते। स्वस्थ और समृद्ध पर्यावरण के बिना राम राज्य की स्थापना संभव नहीं है। जीवन की पहली आवश्यकता शुद्ध वायु है। राम राज्य में हवा पूरी तरह से शुद्ध थी– *सीतल सुरभि पवन बह मंदा।*

प्रदूषित हवा पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व को समाप्त कर सकती है, धीरे-धीरे इस तथ्य को अब प्रबुद्ध लोग समझ रहे हैं। राम राज्य वन क्षेत्रों से भरा हुआ था। सभी पेड़ हरे फूलों और फलों से भरे थे। जंगली जानवर प्राकृतिक रूप से समृद्ध जंगल में रहते थे। ऐसे वन क्षेत्र में सभी वन्यजीवों को पाला गया। शेर, हाथी, विभिन्न प्रकार के रंगीन पक्षी और विभिन्न प्रजातियों के हिरणों ने जीवन को जीवंत बना दिया। सभी जानवर राम राज्य में प्रसन्न मन से अपना प्राकृतिक जीवन जीते थे। प्रकृति के किसी भी तत्व के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की गई थी। वन क्षेत्रों की कमी के कारण ईंधन और चारे की तीव्र समस्या उत्पन्न होती है। ईंधन और चारे की कमी से ग्रामीण क्षेत्र बुरी तरह प्रभावित होते हैं। चारे की कमी से दूध और दही का उत्पादन कम हो जाता है जो मानव जीवन के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। राम राज्य में ईंधन और चारे की कोई कमी नहीं थी, इसलिए गाएँ पर्याप्त मात्रा में दूध देती थी– *मनभावतो धेनु स्रवहीं।* यही कारण है कि राम राज्य में सभी स्वस्थ थे। जीवन की दूसरी मूलभूत आवश्यकता है शुद्ध पेयजल। राम राज्य में सभी नदियाँ शुद्ध, ठंडी और स्वादिष्ट पानी से भरी थीं–

सरिता सकल बहहिं बर बारी।
सीतल अमल स्वाद सुखकारी।।

अत्यधिक पर्यावरण प्रदूषण से मौसम में बदलाव होता है। आज हम समय पर बारिश की कमी, अत्यधिक बारिश, एसिड बारिश के प्रभाव देख रहे हैं। यह स्थिति कृषि प्रधान देश के लिए विनाशकारी है। राम राज्य में आवश्यकतानुसार बादलों से ही वर्षा होती थी। कुछ लोगों को यह अतिशयोक्ति लग सकती है। लेकिन स्वस्थ वातावरण में, इसमें कोई संदेह नहीं है कि ठंड, गर्मी और बारिश नियमित हैं। तुलसीदास जी बहुत दूरदर्शी थे। उनके पास उन तूफानों की कल्पना थी, जो आज हमें रोक रहे हैं। सुनामी के कहर ने कई परिवारों की जान ले ली है। यह सब पर्यावरण प्रदूषण का

प्रभाव है। समुद्रराज राम राज्य में अपनी गरिमा के साथ रहते थे। यह तभी संभव है जब पूरा मानव समाज पर्यावरण की रक्षा के लिए पर्याप्त संवेदनशील हो। पर्यावरण संरक्षण को महत्व देते हुए, गोस्वामी तुलसीदास जी का मानना है कि पेड़ से काटकर फल खाना उचित है, लेकिन पेड़ को काटना अपराध की श्रेणी में आता है–

रीझि खीझि गुरुदेव सिख सखा सुसाहित साधु।
तोरि खाहु फल होइ भलु तरु काटे अपराध।।

इस धरा पर राम राज्य की स्थापना कुछ समय का खेल नहीं रहा बल्कि इसकी स्थापना दीर्घकालीन आचरण का परिणाम है। इसके लिए कड़ी मेहनत, समर्पण और निरंतर प्रयास आवश्यक है। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में अनेक स्थानों पर इस ओर संकेत किया है। भले ही देर से सही संपूर्ण विश्व अब यह समझ चुका है कि वृक्षारोपण और वन्य संपदा में श्रीवृद्धि ही प्रदूषण से मुक्ति का सर्वाधिक प्रभावी उपाय है। कृत्रिम साधनों का आश्रय अल्पकालीन होता है और कृत्रिम साधनों की उपलब्धता भी सीमित समय तक ही हो सकती है क्योंकि किसी न किसी प्रकार से कृत्रिम संसाधनों की उपलब्धता का भी आधार प्राकृतिक तत्व ही हैं।

वृक्षारोपण कार्य जैसा पुनीत कार्य ही सर्वधाम यात्रा या अनंत यज्ञ माना जा सकता है। वर्तमानकाल में हमें भारतवर्ष को राम राज्य के समतुल्य बनाने की दिशा में समान श्रम एवं त्याग तथा दृढ़ संकल्प के साथ आगे बढ़ना होगा। सरकार द्वारा तो व्यापक स्तर पर वृक्षारोपण कराया ही जाता है हममें से प्रत्येक व्यक्ति को यह संकल्प लेना होगा कि प्रत्येक वर्ष हम सिर्फ पौधारोपण ही नहीं करेंगे बल्कि जब तक पौधे वृक्ष नहीं बन जाते हैं तब तक हम उनका संरक्षण भी करेंगे। रामचरितमानस स्पष्ट रूप से इस ओर इंगित करता है कि आम लोगों को पेड़ लगाने चाहिए। सबसे प्रेरक तथ्य यह है कि रामचरितमानस में वृक्षारोपण को प्रेरित करने का काम बहुत ही सरलता से करते हुए उसे दैनिक जीवन का हिस्सा बनाने का संदेश दिया गया है। प्रतिदिन प्रातः से पूजा अर्चना के बाद वृक्षों पर जल चढ़ाने का संदेश न्यूनतम संभव पर्यावरण सेवा का ही संदेश देता है। प्रकृति संरक्षण एवं प्रतिदिन संवर्धन का संदेश गोस्वामी की दूरदर्शिता का प्रतीक है। यदि हम किसी भी शुभ अवसर जैसे कि बच्चे के जन्म, विवाह आदि में वृक्षारोपण की परंपरा को आगे बढ़ाते हैं, तो यह एक अनुकरणीय कार्य होगा। ऐसे पेड़ों के साथ लोगों का भावनात्मक संबंध होगा और व्यक्ति या परिवार भावनात्मक लगाव के कारण जिस प्रकार अपने परिवारजनों के प्रति संवेदनशील होता है उसी प्रकार पेड़–पौधों आदि के प्रति रहेगा और उनकी रक्षा करेगा। तुलसीदास जी ने ऐसी परंपरा शुरू करने की कोशिश की। रामचंद्र जी के विवाह के बाद, जब बारात लौटती है, तो अयोध्या शहर में विभिन्न पेड़ लगाए जाते हैं। फल सहित सुपारी, केला, आम, मौलसिरी, कदंब और तमाल के वृक्ष लगाए गए। वे लगे हुए सुंदर वृक्ष (फलों के भार से) पृथ्वी को छू रहे हैं। उनके मणियों के थाले बड़ी सुंदर कारीगरी से बनाए गए हैं।

सफल पूगफल कदलि रसाला।
रोपे बकुल कदम्ब तमाला।।

गोस्वामी जी द्वारा वृक्षारोपण को एक स्वाभाविक कार्य बताया गया है। जहाँ भी संभव हो, प्रत्येक व्यक्ति को वृक्षारोपण कार्य करना चाहिए। सीता जी और लक्ष्मण जी द्वारा उनके वन प्रवास के दिनों में विस्तृत रोपण किया गया था। वहाँ तुलसी जी के बहुत से सुंदर वृक्ष सुशोभित हैं, जो कहीं–कहीं सीता जी ने और कहीं लक्ष्मण जी ने लगाए हैं। इसी बड़ की छाया में सीता जी ने अपने करकमलों से सुंदर वेदी बनाई है।

तुलसी तरुवर विविध सुहाए।
कहुँ–कहुँ सियँ, कहुँ लखन लगाए।।

शुभ अवसर पर पेड़ लगाने की परंपरा और प्राकृतिक रूप से पेड़ लगाने की प्रवृत्ति को आज का युग माना जाता है, यह अनुचित नहीं होगा। इस युग के रखरखाव से हम प्रदूषण से छुटकारा पा सकते हैं। आधुनिक युग में पथ रोपण बहुत महत्वपूर्ण है। देशभर में युद्ध स्तर पर सड़क,

रेलवे लाइन और नहर की पटरियों के किनारे खाली भूमि पर वृक्षारोपण किया गया है। रामचंद्र जी के विवाह के बाद, गुरु वशिष्ठ राज्याभिषेक की तैयारी के अवसर पर आदेश देते हैं–

सफल रसाल पूगफल केरा।
रोपहु वीथिन्ह पुर चहुँ फेरा।।

रामायण काल में यातायात के आधुनिक संसाधन नहीं थे परंतु नदियाँ एवं उनकी सहायक शाखाएँ थीं जिनमें पेड़–पौधों का होना एक अनिवार्य तत्व होता था। नौका, चम्पू आदि का निर्माण स्रोत भी पेड़ ही होते हैं। चलमार्ग के किनारे रोपण किया जाता था। यात्रियों को आराम देने के लिए अच्छा साधन था जो कि वर्तमान में कम से कमतर होता जा रहा है। उपरोक्त उदाहरण से पूरी तरह से स्पष्ट है। फलदार पेड़ मुख्य रूप से सड़क के किनारे लगाए जाते थे।

वर्तमान में भी अधिकांश सड़क मार्गों का निर्माण भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण के दिशानिर्देशों के अनुसार किया जा रहा है। इसका कार्य इसे सौंपे गए राष्ट्रीय राजमार्गों का विकास, रख–रखाव और प्रबंधन करना और इससे जुड़े हुए अथवा आनुषंगिक मामलों को देखना है। रामायण काल में चूँकि आधुनिक वाहनों का प्रचलन नहीं था इसलिए पेड़ सड़क के दोनों तरफ लगाए जाते थे। वर्तमान में किसी भी प्रकार के हाईवे या फिर एक्सप्रेसवे में वाहनों की अप और डाउन लाइन के बीच में कुछ इस तरह के पौधे लगाए जाते हैं जो आने और जाने वाले वाहनों के बीच कम से कम 8 फुट की दूरी बना दे। इसके पीछे इंजीनियरों का मानना है कि ऐसा करने से एक्सीडेंट की संभावना काफी कम हो जाती है। आमने–सामने आने वाले वाहनों की हेडलाइट एक दूसरे के ड्राइवर को डिस्टर्ब नहीं करती है। क्यारी में इस तरह के पौधे लगाए जाते हैं जो प्रदूषण को कम करने का काम करते हैं। पेड़–पौधों का हरा रंग ड्राइवर की आँखों को शीतलता प्रदान करता है जिससे आँखों में जलन नहीं होती। झाड़ियों के कारण इनसान एवं जानवर रोड क्रॉस नहीं करते और एक्सीडेंट कम होते हैं। कहीं न कहीं वर्तमान में भी राम कथा का प्रभाव दिखाई देता ही है।

जहाँ तक प्रश्न है शहरी क्षेत्रों के लोगों को वनीकरण में योगदान का तो गोस्वामी जी ने इसका एक बहुत सुंदर समाधान प्रस्तुत किया है। शहरी क्षेत्रों में, जंगल के स्थान पर एक बाग लगाया जा सकता है। इसके लिए विशेष प्रयास करने पड़ते हैं जैसे फूलों को फूल बनाना, बेलें लगाना, छोटे पौधे लगाना आदि। आजकल बोनसाई की तकनीक भी आ गई है। इसके लिए विशेष प्रयास की आवश्यकता है। अयोध्या शहर में, सभी ने सुमन वाटिका, लताओं आदि का रोपण किया है। नीचे दिए गए उदाहरण में, सबाइन शब्द का विशेष महत्व है, अर्थात्, सभी को रोपण करना होगा। राम राज्य के चित्रण में इसका वर्णन है–

सुमन वाटिका सबहिं लगाईं। विविध भाँति
करि जतन बनाई।।
लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा
बसंत की नाईं।।

उत्तर प्रदेश सरकार ने शहर के आस–पास जंगल और वृक्षों को विकसित करने पर जोर दिया। इसे शहर के प्राण वायु प्रदाता के रूप में विकसित किया जाना ही परम उद्देश्य है। इसके तहत शहरी क्षेत्रों के आस–पास वन क्षेत्र स्थापित किए जा रहे हैं। गोस्वामी जी की नगर वन की अवधारणा इससे कहीं अधिक व्यापक है। इस अवधारणा में वन, पार्क, पशु और पक्षी सभी को शामिल किया गया है। वन क्षेत्र में या शहर के आस–पास शहर हो सकते हैं। यह मूड को बेहतर बनाने के साथ–साथ प्राकृतिक प्रदूषण को कम करने में मदद करता है। अयोध्या नगरी का चित्रण दिख रहा है–

पुर सोभा कछु बरनि न जाई। बाहेर नगर
परम रुचिराई।।
देखत पुरी अखिल अघ भागा। वन उपवन
वाटिका तड़ागा।।

अत्यधिक विनाशकारी हथियारों की विविधता का आविष्कार किया गया था रामायण के काल तक। जब विश्वामित्र ने वशिष्ठ का सामना किया, तो उन्होंने विभिन्न हथियारों का इस्तेमाल किया, जो उनकी भयानक विनाशकारी क्षमताओं के लिए जाने जाते थे। विश्वामित्र ने रौद्र, ऐंद्रा, पशुपत

और अनीशेक, अस्त्र के अलावा गंधर्व, स्वपन, जृम्भण, मादन, संतान, विल्पान, शशान, विदारण, सुदुरजय, वज्रस्त, ब्रह्मपद, कमलाश, वर्णाश्रम, वर्धन, वरपन्न, अस्त्र–शस्त्र का प्रयोग किया। कई प्रकार के आसन, दंडास्त्र, पिशाचास्त्र, क्षोभस्त्र, धर्मचक्र, कालचक्र, वैश्याचक्र, वैयावहस्त्र, मंत्र शास्त्र, हशिरा, दो प्रकार की शक्ति, कांकलास्त्र, वैद्यस्त्र, काल शास्त्र और कायस्थ शास्त्र। वशिष्ठ ने इन सभी शस्त्रों को केवल बह्मांड का उपयोग करके ठंडा किया। जब उन्होंने इसका इस्तेमाल किया, तो यह धुआँरहित और जलती हुई लग रही थी, जैसे आग की भयानक ज्वाला में आग लग रही हो। (रामायणः बालकांड, कैंटो 56, श्लोक 7–12 और 14–15)

निष्कर्ष

रामायण में वर्णित युद्ध में बड़ी संख्या में हजारों आदमियों और जानवरों की प्राणहानि हुई थी। जिसके दुष्प्रभाव स्वरूप भूमि के कुछ हिस्सों ने हमेशा के लिए उर्वरता खो दी, कुछ सागर में विलीन हो गए, कुछ रेगिस्तान में बदल गए, कुछ पानी में या जमीन पर रहनेवाले जानवरों की दौड़ और पक्षियों को इन दो युद्धों में इस्तेमाल किए गए विभिन्न हथियारों द्वारा हमेशा के लिए मिटा दिया गया। उन हथियारों में से कुछ परमाणु शक्ति से लैस थे और असीम विनाश का कारण बनने में सक्षम थे। इन हथियारों से निकलने वाली जहरीली गैसों की वजह से महासागर, नदी और आकाश प्रदूषित हो गए। हम जानते हैं कि परमाणु हथियारों ने विश्व युद्ध में क्या विनाश किया है और हम उन दुखों और विनाश की तीव्रता का अनुमान लगा सकते हैं, जो पर्यावरण और जीवित प्राणियों के कारण ही हुए होंगे। वृक्षारोपण, वनों की सुरक्षा, वन्यजीवों के प्रति प्रेम आदि मानव धर्म होना चाहिए। संत वाल्मीकि और गोस्वामी तुलसीदास ने मनुष्य हेतु प्रकृति के प्रति आचरण एवं व्यवहार की सीख प्रारंभ से समापन तक दी है। प्रकृति सरंक्षण की मनोवृत्ति प्रदूषण मुक्त पृथ्वी और समान विकास की नींव है और यह वृत्ति अनुकरणीय एवं कल्याणकारी है। राम राज्य की अवधारणा जो गोस्वामी जी द्वारा प्रस्तुत की गई थी, उसे अभी भी भारतीय समाज की मूल नींव माना जा सकता है। लेकिन दुर्भाग्य से विभिन्न प्रकार के प्रदूषण हमारे स्वस्थ पर्यावरण को नष्ट कर रहे हैं। हमें अपने समाज को जीवंत बनाने के लिए अपने प्राचीन साहित्य से सीख लेनी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वाल्मीकि रामायण भाग –1 और 2, महर्षि वाल्मीकि, प्रकाशक–गीताप्रेस, गोरखपुर, यू.पी.

2. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस, प्रकाशक– गीताप्रेस, गोरखपुर, उ.प्र।

3. सिंह, महेंद्र प्रताप, वाल्मीकि, प्रकाशक– अभ्युदय प्रकाशन, लखनऊ की पर्यावरण चेतना भाग –1 (फ्लोरा)।

4. वाल्मीकि द्वारा रामायण, अरण्यकांड, उत्तरकांड, केंटो 110, और छंद 16–21

5. वाल्मीकि द्वारा रामायण, अरण्यकांड, उत्तरकांड, केंटो 110, और छंद 16–21

6. वाल्मीकि रामायण, 2/100/50

7. वाल्मीकि रामायण, 2/91/09

8. वाल्मीकि रामायण, 6/128/13

9. रामचरितमानस, 7/23

10. रामायणः बालकांड, छावनी 56, श्लोक 7–12 और 14–15

– असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी), राजकीय महाविद्यालय, गौंडा इगला, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश

❑❑❑

श्रीलंका की नृत्य–नाटिकाएँ एवं आधुनिक रंगमंच की रामलीलाएँ

डॉ. अमिला दमयंती

श्रीलंका के सिंहली तथा तमिल दोनों जनवर्ग में रामलीला का प्रस्तुतीकरण हो रहा है। यह नाटक की दृष्टि से उन वर्गों के प्रदेशों में अत्यंत व्यापक है। इसकी शैलियाँ 18वीं शताब्दी से प्रारंभ होकर वर्तमान तक धीमी–गति से विकसित हुई हैं। कई शैलियों की उत्पत्ति का विषय विवादास्पद होने पर भी आज भी उन रामलीलाओं की विचित्रता का समाज आनंद उठा रहा है।

श्रीलंका की रामलीलाओं का वर्गीकरण निम्नप्रकार से दिया जा सकता है।

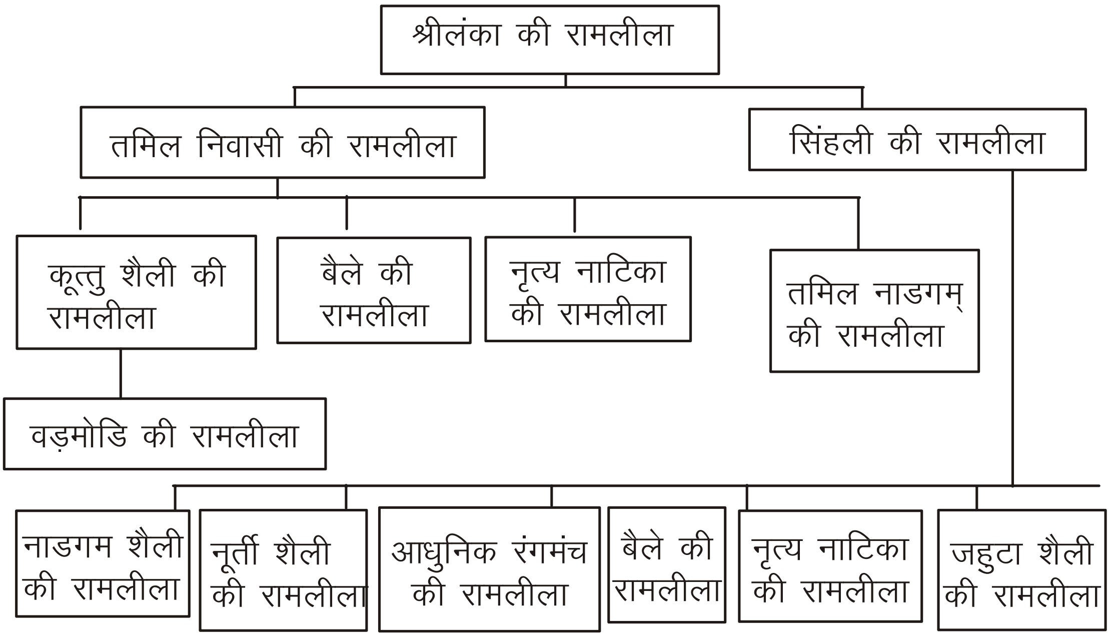
श्रीलंका की रामलीला
तमिल निवासी की रामलीला
सिंहली की रामलीला
कूत्तु शैली की रामलीला
बैले की रामलीला
नृत्य नाटिका की रामलीला
तमिल नाडगम् की रामलीला
वड़मोडि की रामलीला
नाडगम शैली की रामलीला
नूर्ती शैली की रामलीला
आधुनिक रंगमंच की रामलीला
बैले की रामलीला
नृत्य नाटिका की रामलीला
जहुटा शैली की रामलीला

ऊपर लिखित हर शैली रामलीलाओं के वस्तु बीज मुख्य रूप से वाल्मीकि ओर कम्ब रामायण आदि महाकाव्यों पर और श्रीलंका की लोककथाओं पर आधारित हैं। वाल्मीकि रामायण का प्रभाव बहुधा सिंहली जनवर्ग पर पड़ा है। कम्ब का प्रभाव रामायण तमिल वर्ग की रामलीला की वस्तु विषय में देखा जा सकता है। इनके अतिरिक्त सिंहली समाज में लोक कथाओं के आधार पर रामलीला

का प्रस्तुतीकरण हो जाता है। यह वर्तमान सिंहली समाज का नवीन तत्व है। इसका प्रमुख कारण यह है कि राजा रावण सिंहली के यक्क गोत्र का मुखिया था और उसके लिए अत्यंत गौरव उस समाज में है। राम रावण का युद्ध से संबंध और रावण की वीरता से संबंध आदि लोक कथाएँ सिंहली समाज में हैं। दूसरी ओर वर्तमान समाज में रावण के बारे में चर्चाएँ भी हो रही हैं। उसी वातावरण में लंका के सिंहली क्षेत्रों की रामलीलाओं का विषय रावण से संबंधित लोक कथाओं से और रावण चरित्र से चयनित किया जाने लगा।

सिंहली नृत्य–नाटिका की रामलीला

प्राचीनकाल से श्रीलंका का सिंहली जन समाज गीतों के अनुसार उन गीतों के अर्थ नृत्य से प्रस्तुत कर रहा था। इसकी प्रासंगिकता 16वीं शताब्दी में कंदौडरट शासन काल में आगे बढ़ गई थी। इसके लिए उस काल की तमिल संस्कृति और हिंदू धर्म का प्रभाव एक साधन था। उस काल में नायक करवंशी राजाओं के बंधुओं को दक्षिण भारतीय होने के कारण वहाँ के नृत्यांग यहाँ आ गए। वन्नम् (Vannam) और प्रशस्ति (Prashasthi) नामक नृत्यांग का निर्माण इसके लिए अच्छा उदाहरण है। इन नृत्यांग के संदर्भ में किसी कथा, सिद्धि नहीं तो किसी वस्तु का वर्णन गीतों के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए इनके अर्थ किसी नृत्य शैली में उसे प्रस्तुत किया जाता था। इसके लिए बहुधा उडरट (udarata) नृत्य का प्रयोग किया है।

बहुत पहले से ही सिंहली समाज के लोग अपने मनोरंजन के लिए नृत्य–नाटिका करते रहे हैं। प्राचीनकाल में किसी एक दो गीतों के अर्थ नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत हुए। लेकिन आजकल इसकी संकीर्णता देखी जा सकती है। पहले श्रीलंकाई उडरट, पहतरट और सबरगमु (sabaragamu) आदि नृत्य पंरपराओं के निज तत्वों का प्रस्तुतीकरण हुआ था। पंरतु आजकल इन शैलियों के मिश्रण से नए निर्माण का मंचीकरण हो रहा है।

रामलीला (रामायण) के संबंध में नृत्य–नाटिका का पहला मंचन तमिल समाज में हुआ था परंतु वर्तमान में उस शीर्ष पर सिंहली लोग अपनी नृत्य शैली में नृत्य–नाटिका का मंचन करते हैं। किसी नृत्य–नाटिका में वाल्मीकि रामायण तत् प्रकार से मंच में नहीं देखा जा सका। इससे कई भाग लेकर प्रस्तुत किया गया था। लेकिन इस प्रस्तुतीकरण में वाल्मीकि रामायण से ज्यादा कॉहोबाकंकारिया आदि अभिचारों के साथ संबंध शांतिकर्म के अंतर्गत सीता, राम, लव–कुश आदि की चरित कथाएँ लेकर नहीं तो लोक कथाओं के आधार पर चित्रित सिंहली नृत्य–नाटिका की रामलीला को प्रस्तुत किया जाता था। वर्तमान में रावण नाम पर विभिन्न समिति, संगठन हैं। वे रावण को प्रमुख करके श्रीलंकाई देश के अभिमान का संकेत कराते हैं। सारे सिंहली अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए रावण नाम प्रयोग करते हैं। वे सपने में भी रावण को एक पराजित राजा के स्थान पर रखते ही नहीं। आजकल श्रीलंका में रावण के प्रति नए विचार बन रहे हैं। सिंहली लोग अपनी सुरक्षा के सभी कामो के सामने रावण संकेत रूप प्रयोग करते हैं। श्रीलंकाई वर्तमान में भी अपने श्रेष्ठ राजा की जगह पर रावण को मानते हैं।

रावण के प्रति नए आंदोलन के साथ इस विचार पर आधुनिक नृत्य, बैले, नृत्य–नाटिका, उपन्यास आदि का निर्माण हो रहा है। पहले सिंहली नृत्य–नाटिका का विषय क्षेत्र ऐतिहासिक कथा और जातक कथाओं पर आधारित था। इस प्रकार नृत्य– नाटिका, स्कूल विश्वविद्यालयों और अन्य परिषदों के कार्यक्रमों में प्रस्तुत हो चुके थे। परंतु 2000 ई. के बाद नृत्य–नाटिकाओं में रावण देश प्रेमी और देशहितैषी जन नायक के रूप में प्रस्तुत होने लगा। इन लोगों की अभिलाषा इन नाटकों के माध्यम से सिंहली जाति में देश अनुरागी भाव आगे बढ़ाकर रावण की श्रेष्ठता को बनाना है। इसलिए वे लोग बहुधा श्रीलंकाई निज नृत्य 'पहतरट' की शैली का प्रयोग करते हैं। पहतरट का विश्वास है कि पहतरट नृत्य पूरी तरह से

रावण की नृत्य कला है। इसमें आग का प्रयोग, यंत्र, मंत्र, स्तोत्र, काव्य और श्लोक–पाठ एवं यकबेराया (yak Dram) नामक डमरू का प्रयोग देख सकते हैं। ऐसा विश्वास है कि पहतरट नृत्य की परंपरा रावण के जन्मकाल के साथ प्रारंभ हुई। बहुधा रामलीला के सिंहली नृत्य–नाटिकाओं में वह नृत्य देखने को मिलता है। जनवरी 2019 में एक ऐसी नृत्य–नाटिका कुंभ मेले के अवसर पर प्रयागराज में प्रस्तुत की गई थी। इसका नाम 'रावण सीता' रखा गया था। इसकी निर्देशक श्रीलंका के सौंदर्यकला विश्वविद्यालय के नृत्य नाटक संकाय के इंडियन एशियन नृत्य विभाग की विभागाध्यक्षा श्रीमती इमाशा गयानी मधुरसिंह हैं। यह एक लोक कथा के आधार पर बना हुआ है। इस लोक नृत्य की पटकथा की लेखिका उस विश्वविद्यालय की प्रवक्ता और इस निबंध की लेखिका अमिला दमयंती हैं। कोरियाग्राफी एम् लहिरू रोषान द्वारा की गई है। कुल मिलाकर इस नृत्य–नाटिका के लिए 14 पात्र शामिल किए गए हैं। इसका प्रारंभ रावण के लंकापुर से होता है।

इसकी वेश–भूषा, अंगरचना सब श्रीलंकाई नृत्य शैली पर आधारित थी। इसका संगीत रावण से संबंधित श्लोक और लोक गीत से सजाया गया था। पूरी नृत्य–नाटिका में उडरट नृत्य, पहतरट और सबरगमुव आदि में नृत्य शैली का प्रभाव है। इन नृत्यों में पहतरट नृत्य प्रमुख था। इसकी विशेषता है, आग का प्रयोग। पहतरट नृत्य में आग से नृत्य प्रस्तुत करना इसकी परंपरा है। इस रामलीला का निर्माण कुंभ मेले के लिए अयोध्या शोध संस्थान के निमंत्रण पर किया गया। इसकी सार्थकता के लिए कथा प्रवृत्ति, संगीत, नृत्य शैलियों का प्रभाव कारगर रहा।

रावण मंच पर आकर अपने देश का सौभाग्य बता रहे हैं। उसके पीछे उसके सेवक, सेविका हैं। बाद में वह पत्नी मंदोदरी के साथ आ रहे हैं। वे दोनों शिव के परम भक्त हैं। मंच पर वे दोनों शिव की भक्ति प्रस्तुत करते हैं। यह प्रदर्शन लोक गीत, लोक नृत्य, उडरट, सबरगमु, पहतरट नृत्यों से युक्त है। रावण के सिर पर सात सिर के मुकुट दिखाए गए हैं। श्रेष्ठ कलाकार ने रावण के अभिनय के साथ तांडव नृत्य भी प्रस्तुत किया। रावण का चरित्र उडरट नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया। वास्तव में उडरट एक ऐसा नृत्य है इसमें लास्य विधि क्रम से ज्यादा तांडव विधि क्रम बहुत है। रावण का यह नृत्य प्रस्तुतीकरण उत्तम है।

बाद में शिव का तांडव नृत्य मंचित हुआ। यह 'पहतरट' नृत्य शैली से निर्मित है। इसके संगीत के लिए 'यक' नामक डमरू का प्रयोग हो रहा था। शिव ने यह वर रावण को प्रदान किया।

यह देखकर सुर लोग रावण के प्रति ईर्ष्या से युक्त होकर विष्णु के पास दौड़कर आ रहे थे और विष्णु रावण को नष्ट करने के लिए कौशल्या के पेट से जन्म लेते हैं। इसके बाद गर्भवती कौशल्या का नृत्य होता है। यह नृत्य गर्भवती नारियों के लिए करनेवाला अभिचार से संबंध रिद्धियागय नामक लोक नृत्य के आश्रय से बनाया गया है। तत्पश्चात् श्रीराम और सीता की प्रेम लीलाएँ प्रस्तुत की गई हैं। उनके दंडकवन में निवास करने के समय रावण आकर सीता का अपहरण करता है। पाँच सात कलाकारों के अंग–संचलन से संकेत हुए पुष्पक–विमान से रावण मंच पर आता है। इस वातावरण को पहतरट नृत्य और श्रीलंकाई लोक संगीत से प्रस्तुत किया जाता है। उस दर्शन में प्रेक्षक आकर्षित हो जाते हैं। तत्पश्चात् अकेली सीता की दुखी स्थिति दिखाई देती है। रावण द्वारा सीता का अपनी बेटी की तरह देखभाल करना, गीतों से सुनाया जाता है। बाद में राम द्वारा रावण वध करने का दर्शन उडरट, पहतरट नृत्यों से दिखाया जाता है। राम रावण युद्ध नृत्यों से प्रस्तुत किया जाता है। इसकी विशेषता यह है कि उस नृत्य को आग लेकर प्रस्तुत किया जाता है। उस समय नृत्य और संगीत का तेज ध्वनि की आवाजों में प्रेक्षक प्रबोध हो जाता है। अंत में रावण का वध किया जाता है। रावण उस मंडप के एक कोने में चार लोगों के बीच में खड़ा रहता है। वे चार लोग लाल रंग के कपड़े पहनते हैं। वे अपने

जलनेवाले हाथ में नारियल के फल (नारियल के फल से दीपक बनाया जाता है) लेकर खड़े रहते हैं। सीता अपनी सेविका के साथ रावण की तस्वीर लेकर रो रोकर मंच पर आ जाती है। सीता मंडप के मध्य तक आकर कोने में रखे कारागार की ओर मुड़कर देखती है। उसी प्रसंग के बाद नृत्य–नाटिका खत्म हो जाती है।

आधुनिक रंगमंच की रामलीला

श्रीलंकाई नाटक के इतिहास में, कोई भी नाटक जिसे शास्त्रीय के रूप में मान्यता दी जा सकती थी, 3 नवंबर, 1956 तक दिखाई दी, जब प्रोफेसर, एदिरिवीरा सरतचंद्र ने लंबे और कठिन शोध के बाद, अपने नाटक 'मानस' का मंचन किया। इसे श्रीलंका में आधुनिक नाटकीय कला का स्रोत और शुरुआत माना जा सकता है। प्रोफेसर सरतचंद्र श्रीलंका की आधुनिक नाटकीय कला के प्रणेता हैं।

एदिरिवीरा सरतचंद्र जी पेरादेनिय विश्व–विद्यालय श्रीलंका में सिंहली विभाग के प्रोफेसर के रूप में कार्य करते थे। उन्होंने श्रीलंका के कई प्रकार के लोक नाटक, अभिचार कर्म, बौद्ध पूजा कर्म, सिकरी (एक प्रकार के लोक नाटक), थोविल (एक अभिचार का नाम), नाडगम्, कवि नाडगम् और नूर्ती आदि के नाट्य लक्षण को मिला कर शोध के नाटक (Experimental Drama) का निर्माण किया था। जिसको सिंहली प्रेक्षक जन की प्रशंसा मिल गई। उनका पहला आधुनिक नाटक 'सिंहबाहू' था। इसको प्रोसीनियम रंगमंच पर प्रस्तुत किया था। 'सिंहबाहू' वात्सल्य प्रेम के विषय में है। इसमें पुरुष और महिला, माता–पिता, बच्चे, भाई–बहन आदि की संबंधता पर ध्यान दिया गया है। जिस मिथक पर नाटक आधारित है, सरतचंद्र का नाटक उस मिथक का बौद्धीकरण है। मिथक में प्रेम, बच्चे और जंगली की भावना, नाटक, रोमांटिक और पवित्र है। इसे त्याग की शर्तों में परिभाषित किया गया है। इसका लालच उन लोगों को धूम्रपान करने के लिए प्रेरित करता है जो इसे छोड़ देते हैं, जो कि वे धन और शक्ति, महलों, सुंदरता और बेजलवाले फुटवियर जैसे हैं।

यह आनंदित अवस्था हालाँकि, 'दुखों को भूला देती है', एक ऐसा विचार जो सरतचंद्र के सभी प्रमुख नाटकों से चलता है और स्पष्ट रूप से उनके मन में', 'प्रेमती जायती सोखो' आदि नाट्यों में विकसित हुआ है, और यह विडंबना है कि त्याग से अधिक पारंपरिक अर्थ से संबंधित है। इस प्रकार नाटक का नाटकीय रूप अपनी अपरिहार्य कोमलता और विस्तार को सामने लाकर प्यार के निर्माण को समाप्त करता है। जिसे नाटक का बौद्ध कैथार्सिस (भाव–विवेचन) कहा जा सकता है। प्रोफेसर सरतचंद्र का आधुनिक नाटक का रंगावतरण के पश्चात् पश्चिमी नाटक शैली के अनुयायी आधुनिक रूपी नाटक श्रीलंका के मंच पर पहुँच गए तो, आधुनिक नाटक की रामलीला की सार्थकता सरतचंद्र की नाटक शैली से हो गई। इसके बारे में विस्तार रूप से परिचय कराने से पहले उस समय तक आधुनिक नाटकों की रामलीला के मंचीकरण के संबंध में उल्लेख करेंगे।

1956 मे प्रोफेसर सरतचंद्र के 'सिंहबाहू', और 'मनमें' (Maname) आदि नाटकों के आगमन के बाद से श्रीलंका मंच के निर्देशकों ने विभिन्न विषयों के माध्यम से श्रीलंकाई मंच के प्रेक्षकों के लिए स्वतंत्र कृतियों, अनुवाद और लिप्यंतरण के रूप में नाटकीय रचनाओं के आधार पर मंचन किया गया। वाल्मीकि रामायण भी नाटक–निर्देशकों ने अपनाया था। इसे कथा के लिए विभिन्न अर्थ मिला के प्रस्तुत किया गया था। अर्थात् वाल्मीकि रामायण उसी रूप से ही प्रस्तुत न करके इसमें नया रूप जोड़ दिया गया। रामायण की जानकारी प्रेक्षकों के लिए अपूर्व (अनोखा) अनुभव हो गया। रामायण कथा की नवलता देखने के लिए 'रावण सीता अभिलाषा' अच्छा उदाहरण आधुनिक नाटक में मिल गया। यह पूर्ण रूप से सरतचंद्र की नाटक शैली के अनुसार बनाया गया।

इसके अलावा आधुनिक रामलीला को निम्नप्रकार से दिखाया जा सकता है।

आधुनिक नाटक की रामलीला का नाम	**नाटककार का नाम (Director’s name)**
सक्विति रावण (Sakviti Rawan)	अरिसेन् अहुबुदु (Arisen Ahubudu)
रावण (Rawan)	भारती गलाहिटियाव (Bharati Galahitiyawa
रावण आदरये हुस्म–लग (Rawan Adaraya)	अकिल सपुमल् (Akil Sapumal)
सेरदे सीता (Sarde Sita)	प्रेमा रन्जित तिलकरत्न (Prema Ranjit Tilakaratna)
राम सीता कतावक् (Ram Sita Kathawak)	जैयासेकर अपोन्सु (Jayasekara Aponsu)
रावण सीता अभिलाषय (Rawan Sita Abhilashaya)	नामेल वीरामुनि (Namel Weeramuni)
राम–रावण (Ram-Rawan)	चंद्रसिरि विक्रमसूरिय (Chandrasiri Wikramasooriya)

इन सभी रामलीलाओं में प्रमुख स्थान रावण को दिया जाता है। इनमें रावण की वीरता, रावण की देश प्रेमी भावनाएँ आदि दिखाकर राजा रावण को अच्छे राजा के स्थान पर रखा जाता है। कई रामलीलाओं में सीता और रावण का प्रेम, कई में रावण के हृदय में उत्पन्न सीता के प्रति पवित्र प्रेम आदि विषय चर्चा में रहे हैं।

रावण सीता अभिलाषय नामक आधुनिक नाटक

इस नाटक के दो पटकथा रचनाकार हैं वे हैं, प्रोफेसर जे.बी. दिसानायक और नामेल वीरामुनि। वास्तव में 1956 में सरतचंद्र जी का ‘सिंहबाहू’ नाटक देखने के बाद जे.बी. दिसानायक ने रावण सीता अभिलाषय नामक नाटक की पटकथा लिखी। उस समय वे विश्वविद्यालय में शिष्य थे। सिंहबाहू देखने पर उस नाटक के प्रति उल्लवलित होकर जे.बी. दिसानायक ने वाल्मीकि रामायण आश्रयदाता ‘रावण सीता अभिलाषय’ नामक नाटक की रचना की। परंतु इसका मंचीकरण ई. 2014 में ‘नामेल–मालनी पुंची थियेटर’ में बहुत सालों के बाद हुआ। वास्तव में इस नाटक की पटकथा का अंत वीरमुनी जी द्वारा बदला गया। इस बदलाव के कारण इस नाटक के लिए दूसरा आलोक आ गया था।

इस नाटक में सरतचंद्र जी की नाटक शैली देखी जा सकती है। रावण–सीता अभिलाषय देखने से सरतचंद्र जी की नाटकीय आकृति याद आती है। इसमें भी सिंहबाहू जैसे कलात्मक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए तीन रास्तों का उपयोग किया जाता है। पहला इसका बेजोड़ काव्य और गीत के साथ पाठ। रावण–सीता अभिलाषा की भाषा गुटिला, कविशेखर और संदेश आदि सिंहली साहित्य ग्रंथों की कविताओं का आभास है और जब यह शास्त्रीय काम पूरी तरह से काव्यात्मक है, तो रावण सीता अभिलाषा नाटकीय भी है। दूसरे में धुन होते हैं, इसमें नाडगम् शैली का प्रदर्शकों की सूची के बाद जो उभार किया जाता था, बाकी के साथ जयांता

अरविंद द्वारा शानदार नाटकीय और संगीतमय कल्पना की रचना की गई थी। तीसरे, इसमें नृत्य आंदोलन और नृत्यकला शामिल हैं।

'रावण सीता अभिलाषा' का नृत्य, नृत्यकला के दायरे में है यह स्पष्ट रूप से अपनी रचनात्मकता और स्वायत्तता को प्रदर्शित करता है। इनमें से कुछ नामेल वीरमुनी के लिए उपलब्ध अभिनेताओं की अधिक व्यवसायिकता और बहुमुखी प्रतिभा से संबंधित है, जो पूर्वनायक के विरोध में है जो सरतचंद्र के मूल नाटक के अभिनेता थे। निर्माता द्वारा स्वयं वेशभूषा और श्रृंगार नवाचार के दो और क्षेत्र भी हैं। इस नाटक का संगीत प्रोफेसर सरतचंद्र के नाटक के संगीतकार जयंता अरविंद का ही है। इसलिए इसमें कर्णाटक संगीत और नाड़गम् संगीत का आश्रय देख सकते हैं। पूरी कथा संस्कृत नाट्य शैली से चलाई जाती है। इसमें दृश्य–श्रव्य और सूच्य आदि दो भाग हैं। नाटक का आरंभ पूर्व–रंग से होता है। बाद में परंपरा से सूत्रधार के द्वारा नान्दि (एक प्रकार का प्रारंभ गीत) सुनाया जाता है। इसमें शिव का अभिनंदन, इष्ट देव का नमस्कार के साथ नाटक का आरंभ किया जाता है। इसमें अभिनय और नाटक का गुण नहीं दिखाया जाता है। वास्तव में नाटक की प्रवेशिका में कथा की अवस्था सारांश रूप से सुनाई जाती है। इससे कथा का विकास बोध कराया जाता है।

इस नाटक की भाषा पद्य गीत है। कहीं भी संवाद नहीं देख सकते हैं। पूर्ण रूप से यह ऑपेरा शैली की याद दिलाता है। इसलिए इसको गीति–नाटय भी कह सकते हैं। यह नाटक भी संस्कृत नाटक जैसे आरंभ, प्रयत्न, नियताप्ति और फलागम आदि अंगों से युक्त है। इसमें रस भाव के उद्दीपन के लिए, श्रृंगार, करुणा, हास्य, क्रोध आदि समांतर भाव भी आते हैं। इस नाटक का संवाद पूर्ण रूप से पद्यों और गीतों से चल जाता है जिनको सरल–शास्त्रीय (light classical) रागदारी संगीत से बनाया गया है। इन सबका आरंभ वाद्यखंड (introductions) और अंतर वाद्यखंड से (interludes) युक्त है। यह रामलीला पुराकथा के कारण संस्कृत नाटक शैली और शास्त्रीय संगीत इसके लिए योग्य है।

रावण सीता अभिलाषा का वस्त्राभरण पुराने राजकुमारियों के कपड़ों की याद दिलाता है। इसकी अंग–रचना भारतीय जैसी है। विशेषतया तीन स्त्री चरित्र हैं इसमें से सीता के माथे पर सिंदूर लगा हुआ है। इसकी कहानी रामायण से है। पंरतु अंत में कथाकार ने इस कहानी में रावण की माँ को चरित्र चित्रण द्वारा दूसरी और कहानी चलाई है। सीता के कारण कई बार राम और रावण युद्ध के लिए तैयार हो जाते हैं तब सीता बीच में आ जाती है। बीच–बीच में रावण सीता से प्यार माँग रहा है। राम इससे क्रोधित हो जाता है। अंत में रावण को निःशब्द करने के लिए सीता ऐसा उपाय करती है कि, "हाँ आप आपकी माँ का हृदय मेरे लिए ले आएँ मैं मेरा प्रेम आपके लिए अर्पित करूँगी।" वास्तव में कथा में सीता अंतिम क्षण तक रावण के लिए अपनी प्रेम–भावना प्रकट नहीं करती। परंतु रावण का हृदयगत पवित्र प्रेम प्रेक्षक के सामने दिखाया जाता है। राम सीता पर शक करते हैं। वह शक सीता को सहना मुश्किल हो जाता है, तब सीता अग्निपरीक्षा के लिए तैयार हो जाती है। राम मना करते हैं तो सीता इसके लिए स्वयं पेश हो जाती है। अंत में वह सीता आग में प्रवेश कर जाती है। राम उस की ओर न देख के मुड़ कर चुपचाप से खड़े रहते हैं तब रावण आकर आग के अंदर जा कर सीता को बचाता है। फिर दोनों का संग्राम शुरू होता हैं। अंत में रावण की माँ मंडप पर आकर रावण के प्यार की पवित्रता का वर्णन कर अपना हृदय दे देती है। रावण, सीता, राम कंपन–भाव युक्त उस तरफ देख रहे हैं। अब नाटक समाप्त हो जाता है। इस नाटक में त्याग की शर्तो को परिभाषित किया गया है।

नाटक निर्देशक अरिसेन् अहुबुदु का 'सक़्विती रावण' नाटक निर्देशक बरटी गलाहिटियाव का 'रावण' और नाटक निर्देशक चंद्रसिरि, विक्रमासूरिय का सीता रावण आदि तीनों नाटकों में रावण का गुण–गान है। मानो इससे रावण को एक देश–हितैषी, देश–भक्त, महापुरुष के रूप में दिखाया जाता है।

नृत्य–नाटिका द्‌वारा रामलीला का मंचन

तमिल नृत्य–नाटिका की रामलीला

श्रीलंका के हिंदू धर्म के अनुयायी तमिल लोगों द्‌वारा रामलीला तमिल नृत्य–नाटिका प्रस्तुत की गई है। श्रीलंका के तमिल निवासी उत्तर प्रदेश, पूरब और पश्चिमी प्रदेशों में रह रहे हैं। जाफना, बॅटिकलोवा और कोलम्बो में पढ़े–लिखे तमिल लोग बहुधा रहते हैं। वे कम्ब की रामायण पसंद करते हैं तथा उस पर गौरव करते हैं। इसलिए उस समाज के तमिल कलाकार कम्ब रामायण के विभिन्न अंश लेकर भरतनाट्‌यम के माध्यम से रामलीला की नृत्य–नाटिकाएँ प्रस्तुत करते हैं।

तमिल रामलीला की नृत्य–नाटिका का सार्थक निर्माण डॉ. अरूंदती, श्री रंगनादन ने किया। उसका प्रथम मंचन ई. 2008 में हुआ। इसका नाम 'जय श्रीराम' (जय राम भी प्रयोग होता रहा) था। यह इंटरनेशनल रामायण फेस्टिवल भोपाल, मध्य प्रदेश में प्रस्तुत हो चुका है। बाद में 'ओरु श्रीआर्ट थियटर' कोलम्बो (डॉ. अरूंदती उस नाट्‌य शाला की मालिक हैं) और आनंद कॉलेज, कोलम्बो में मंचन हुआ था। इसमें भरतनाट्‌यम के साथ थोड़ा सा देशज नृत्य भी शामिल किया गया।

इसकी विशेषता यह है कि, इससे तमिल और सिंहली कलाकार पच्चीस की संख्या में शामिल होते थे। 'जय श्रीराम' देखकर प्रेक्षक को बहुत आनंद मिल जाता था। बाद में मियुसियस विद्‌यालय, कोलम्बो में भी एक रामलीला का मंचन किया गया। कलाकार डॉ. अरूंदती सौंदर्य कला विश्वविद्‌यालय कोलम्बो की विगत प्रवक्ता भी थीं। वे संगीत संकाय में कर्णाटक संगीत विभाग में काम कर रही थीं। वह तमिल समाज में शास्त्रीय संगीत का प्रचलन करनेवाली कलाकार हैं। उन्होंने अपनी 'जय श्रीराम' नामक रामलीला के बाद सीता स्वयंवरम, रावण किंग (Ravana King) आदि नृत्य–नाटिकाओं को मुख्य रूप से भरतनाट्‌यम और कर्णाटक शास्त्रीय संगीत का प्रयोग करके मंचन किया। तत्पश्चात् 'जय श्रीराम' नामक रामलीला 'श्रीराम' नाम से मंचित की गई। जय श्रीराम या श्रीराम ढाई घंटे की नृत्य–नाटिका थी। इसमें भरतनाट्‌यम के अलावा कथकली, कथक और श्रीलंकाई उडरट नृत्य को शामिल किया गया था। डॉ. अरूंदती ने अपनी 'श्रीराम' रामलीला का इंडोनेशिया और थाइलैंड में भी प्रदर्शन किया। यह उनके काव्य और संगीत के माध्यम से प्रस्तुत किया गया नाटक था। इसकी एक और विशेषता यह थी कि, यह चार दर्शन की नृत्य–नाटिका है और यह वाल्मीकि रामायण पर आधारित है। इसका एक बार दिल्ली में भी प्रदर्शन हो चुका है।

डॉ. अरूंदती के 'रावण किंग' नामक रामलीला में उन्होंने मुकुट का प्रयोग किया है। इसके अंतर्गत रावण और उसकी अंतःपुर स्त्री के नृत्य पर प्रेक्षक का ध्यान गया। 'रावण किंग' में रावण श्रीलंकाई उडरट नृत्य शैली से अपना प्रस्तुतीकरण कर रहा था। इसका संगीत और नृत्य शैली अत्यंत शास्त्रीय थी। उस रामलीला के प्रेक्षक भी पढ़े–लिखे थे। तमिल नृत्य–नाटिका 'रावण' में रामायण की पूरी कथा प्रस्तुत हो जाती है।

डॉ. अरूंदती जी की रामलीला के नृत्य–नाटिका में चालीस मिनट का 'सीता–स्वयंवर' भी है। इन कलाकारों का अभिनय बहुत शानदार है। इसमें राम का धनुष उठाना दिखाया गया है। इसमें निहित कविताओं से इस वातावरण और घटना में राम का धनुष–बल प्रदर्शित है। उस धनुष को पृथ्वी की रक्षा के लिए विश्वकर्मा ने बनाया था। इसे भगवान शिव ने परशुराम को दिया। परशुराम जी ने इस धनुष से कई बार पृथ्वी की रक्षा की और बाद में इसे राजा जनक के पूर्वज देवराज के संरक्षण में रख दिया। यह दिव्य धनुष इतना ज्यादा भारी था कि इसे बड़े–बड़े शक्तिशाली राजा हिला भी नहीं सकते थे, लेकिन नन्ही सीता इसे आसानी से उठा लिया करती थी। यह दृश्य देख राजा जनक को एहसास हुआ कि सीता कोई साधारण कन्या नहीं है, यह दिव्य आत्मा है, इसलिए उन्होंने बाल्यकाल में ही निश्चय किया कि वे सीता का विवाह किसी साधारण मनुष्य से नहीं करेंगे। लेकिन उस सीता के लिए असाधारण मनुष्य कैसे खोजें। यह सवाल उन्हें अक्सर सताता था। तब उन्हें खयाल आया कि वे स्वयंवर का आयोजन करेंगे। जिसमें यह शर्त रखी जाएगी, कि जो धनुर्धारी शिव

के इस महान दिव्य धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाएगा, वो ही सीता के योग्य समझा जाएगा।

शर्त के अनुसार सभी राज्यों के राजाओं को स्वयंवर का निमंत्रण भेजा गया। यह निमंत्रण अयोध्या भी भेजा गया, लेकिन अयोध्या के राज कुमार राम गुरु वशिष्ठ के साथ वन में रहते हैं और वहीं से सभा दर्शक के तौर पर स्वयंवर का हिस्सा बनते हैं।

प्रतियोगिता शुरू होती है कई बड़े–बड़े युवा राजा उठकर आते हैं, लेकिन शिव के उस दिव्य धनुष को हिला नहीं पाते। यहाँ तक कि इस स्वयंवर में रावण भी हिस्सा लेते हैं और धनुष को हिला भी नहीं पाते।

इस नृत्य–नाटिका में एक–एक राजा द्वारा आकर धनुष उठाने के लिए कोशिश करने का प्रदर्शन दिखाया गया है। यह रचना भरतनाट्यम में प्रस्तुत है। बीच–बीच में गाने सुनाए जाते हैं। मृदंगम की आवाज अवस्था के अनुसार बदल जाती है। इसकी लय, अनुरूप, प्रकार पर कलाकारों द्वारा अभिनय किया जाता है।

धनुष उठाने में असमर्थ राजा लोगों को देखकर राजा जनक और उनकी पत्नी अत्यंत दुखी होते हैं। वे सोचते हैं क्या इस सभा में मेरी पुत्री सीता के योग्य एक भी पुरुष नहीं हैं? क्या मेरी सीता कुँवारी ही रह जाएगी। राजा जनक की पीड़ा गीत द्वारा प्रस्तुत की जाती है। वह कहते हैं, बचपन में जिस धनुष को सीता को खेल–खेल में उठा लेती थी, उसे आज इस सभा में कोई हिला भी नहीं पाया, प्रत्यंचा चढ़ाना तो बहुत दूर की बात है। जनक के द्वारा कहे शब्द लक्ष्मण को अपमान के बोल लगते हैं और लक्ष्मण को बहुत क्रोध आता है। वे अपने भैया राम को प्रतियोगिता में हिस्सा लेने का आग्रह करते हैं। लेकिन राम कह देते हैं कि हम सभी यहाँ केवल दर्शक–पात्र हैं। राजा जनक के ऐसे करुण वचन सुनकर गुरु वशिष्ठ राम से स्वयंवर में हिस्सा लेने का आदेश देते हैं। गुरु की आज्ञा पाकर श्रीराम अपने स्थान से उठकर दिव्य धनुष के पास जाते हैं। सभी की निगाहें राम पर ही टिक जाती है। उनका गठीला शरीर, मस्तक का तेज सभी को आकर्षित करता है। श्रीराम धुनष को प्रणाम करते हैं और एक झटके में ही उसे उठा लेते हैं और जैसे ही प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए धनुष को मोड़ते हैं, वह टूटकर दो हिस्सों में गिर जाता है। इस प्रकार शर्त पूरी होती है और सभी तरफ से फूलों की वर्षा होने लगती है। देवी–देवता भी आकाश से राम पर फूलों की वर्षा करते हैं। इस प्रकार का दृश्य नृत्य से प्रस्तुत किया गया है। कथक में द्रुत लय के नृत्य चक्कर के साथ यह प्रस्तुत है। राम की वीरता तेजस्वी बल और देव आशीर्वाद आदि सब कुछ संकेतों में दिया जाता है।

सीता जी लज्जा से राम के पास आ जाती हैं। वह दोनों एक साथ मंच पर खड़े रहते हैं। तब उज्ज्वल कर्णाटक संगीत की आवाज मृदंगम की आवाज के साथ आ रही होती है। सीता जी श्रीराम के गले में वरमाला डाल कर उनका वरण करती हैं और श्रीराम भी सीता के गले में माला पहनाते हैं। इससे दोनों का विवाह संकेत किया जाता है। तत्पश्चात् राम और सीता दोनों का प्रणय नृत्य का प्रस्तुतीकरण होता है। यह शास्त्रीय भरतनाट्यम के द्वारा होती है। इसमें मुद्रा प्रबल होती है, सात्विक और अहार्य अभिनय संकेत के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

तत्पश्चात् दोनों मिथिला में जश्न का आरंभ होता है, लेकिन धनुष के टूटने का आभास जैसे ही भगवान परशुराम को होता है। वे क्रोध से भर जाते हैं और मिथिला की उस सभा में आ पहुँचते हैं, उनके क्रोध से धरती कंपित होने लगती है। लेकिन जैसे ही श्रीराम को भगवान परशुराम समझ जाते हैं कि वास्तव में राम एक साधारण मनुष्य नहीं, अपितु भगवान विष्णु का अवतार हैं और वे अपने क्रोध को खत्म कर सिया–राम को आशीर्वाद देते हैं।

यह नृत्य–नाटिका सीता और राम दोनों अयोध्या आकर अपने पिता दशरथ और अपनी माँ कौशल्या को देखने के दृश्य के साथ खत्म हो जाती है। यह एक लघु नृत्य–नाटिका है। उसकी अवधि तीस मिनट की है। परंतु इसके अंतर्गत घटनाएँ सुंदर रूप से घटित की जाती हैं। शास्त्रीय नृत्य इसमें प्रयोग होते हुए भी प्रेक्षक को समझना

मुश्किल नहीं है। क्योंकि संकीर्ण मुद्राएँ इसमें प्रस्तुत नहीं होती और सभी घटनाएँ और व्यक्तिगत पात्रों का परिचय दिया जाता है। यह अत्यंत सरल है, इस नृत्य–नाटिका को देखने के लिए बहुधा हिंदू लोग दर्शक होते हैं। वास्तव में उन लोगों को कथा की जानकारी भी है। इस सीता स्वयंवर की निर्देशक संगीत की कलाकारिणी होने के कारण सभी घटनाएँ और अवस्था को सुंदर रूप से गीतों के माध्यम से वर्णन किया गया है। यह गीत भी कर्नाटक संगीत के राग से निर्मित है।

अभिनय, संगीत, गीत के अलावा बिजली (light) उस नृत्य–नाटिका की सुंदरता बढ़ा देती है और घटनाएँ अच्छी तरह संप्रेषण करने में मदद करती हैं। तमिल नृत्य–नाटिका देखने के लिए तमिल लोग ही शामिल होते हैं एवं इन्हें ध्यान में रखकर ही रामायण प्रस्तुत की जाती है। इन लोगों के मन में इस नृत्य–नाटिका के कारण अपने आराध्य देव राम के प्रति अत्यंत भक्ति भावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। ये नृत्य–नाटिका देखने के लिए सिंहली लोग शामिल नहीं होते हैं, इसके लिए उन्हें भाषा की समस्या भी आती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Senevirathna H.L. 'Experimental Drama in Sri Lanka', Sunday Daily News, 29-10-2003

2. Abysinha, P.M.P. Valmiki Ramayana, D. M. Gunasena Publisher, Colombo, 2018.

3. Kariyawasam tissa, Sinhala Natya Vikashanaya 1867-1911, Godage Publisher, Colombo, 2011

4. Agrawal Rameshwar, Kamba Ramayan our Ramcharitmnas, Kalpana Publisher, Meerat, 1973

5. Dashrat Oja, Natya Samiksha, National Publisher, house, Varanasi, 2010

6. Kaluarachchi Ariyarathna, Opera Balle, gita Natya sinha Ntya, Author Publication, 2010

– लेक्चरर डिपार्टमेंट ऑफ इंडियन एंड एशियन डांस फैकल्टी ऑफ डांस एंड ड्रामा,
युनिवर्सिटी ऑफ द विजुअल एंड परफॉर्मिंग आर्ट्स, कोलंबो–7

❑❑❑

उर्दू कविता में राम कथा प्रसंग

डॉ. शेख़ अब्दुल ग़नी

रामायण को आदिकाव्य कहा जाता है, क्योंकि इससे संस्कृत काव्यधारा का प्रवर्तन हुआ। रामायण ऐसा ग्रंथ है जिस पर भारत की साहित्यिक संपदा आश्रित है। रामायण का सांस्कृतिक महत्व अधिक है, क्योंकि समस्त भारतीय समाज इससे प्रभावित हुआ है। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में जीवन के आदर्शभूत तथा शाश्वत मूल्यों का निर्देश किया है जो आज भी प्रासंगिक हैं। रामायण का महत्व इससे भी मालूम होता है कि रामायण की कथा के प्रसंग, पात्रों के चरित्र–चित्रण की विशेषताओं का वर्णन उपमा के रूप में अथवा प्रतीकात्मक रूप में समस्त भारतीय साहित्य में दिखाई देता है। जैसे श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में और सीता को पतिव्रता एवं आदर्श महिला के प्रतीक रूप में और लक्ष्मण को आज्ञाकारी भ्राता के रूप में वर्णन किया गया है।

भारत की विभिन्न भाषाओं में रामायण का पुनः कथन एवं अनुवाद हुआ है। जैसे तेलुगु में 'मोल्ला रामायण' कन्नड में 'कम्ब रामायण' आदि। इतना ही नहीं अरबी, फ़ारसी, उर्दू में भी रामायण के अनुवाद उपलब्ध हैं।

उर्दू आधुनिक भारतीय भाषा है। उर्दू में भी रामायण के अनेक पद्य, गद्यानुवाद उपलब्ध हैं। उर्दू कविताओं में हमें रामायण के अनेक प्रसंग मिलते हैं। उन्हीं प्रसंगों का संक्षिप्त वर्णन यहाँ दिया जा रहा है, जिनसे उर्दू कवियों की भावनाओं से परिचय मिलता है। साहित्य में भावात्मक एकता का महत्वपूर्ण स्थान है और यह एकता हमारी संस्कृति की विशेषता है। अर्थात् भाषा कोई भी हो लेकिन उसमें बहने वाली धारा एक है।

राष्ट्रीय कवि अल्लामा इक़बाल (1877–1938) फ़ारसी और उर्दू के महान कवि थे। इनके द्वारा लिखा गया 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदुस्तान हमारा' गीत हमारा राष्ट्रगान है। इक़बाल संस्कृत भाषा और साहित्य से परिचित थे, तभी तो इनके साहित्य में संस्कृत साहित्य की अभिव्यक्ति मिलती है। इन्होंने गायत्री मंत्र का उर्दू में अनुवाद किया है। इक़बाल भर्तृहरि से बहुत प्रभावित थे। वह संस्कृत भाषा जानते थे। इसका प्रमाण हमें उनके कुछ पत्रों से मिलता है जो उन्होंने महाराजा किशन प्रसाद को लिखे थे। महाराजा किशन प्रसाद हैदराबाद के निज़ाम शासन में प्रधानमंत्री पद पर थे। इनके पत्रों को अतिया बेगम फैजी जी ने अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'इक़बाल' में प्रकाशित किया है। इन पत्रों से पता चलता है कि इक़बाल गीता और रामायण का उर्दू में अनुवाद करना चाहते थे। लेकिन यह कार्य अधूरा रह गया। फिर भी इन्होंने अपनी कविता 'राम' में रामायण के मुख्य पात्र राम की विशेषताओं का वर्णन करते हुए और उनके प्रति आदर सम्मान व्यक्त करते हुए उन्हें 'इमाम–ए–हिंद' अर्थात् 'भारत के आध्यात्मिक गुरु' की उपाधि से संबोधित किया है–

लबरेज़ है शराब–ए–हक़ीक़त से जाम–ए–हिंद
सब फ़लसफ़ी हैं ख़ित्त मग़रिब के राम–ए–हिंद
यह हिंदियों कि फिकरे फ़लक रस का है असर
रिफ़त में आसमाँ से भी ऊँचा है बाम–ए–हिंद
इस देश में हुए हैं हजारों मुल्क सिरिश्त
मशहूर जिनके दम से है दुनिया में नाम–ए–हिंद
है राम के वजूद पे हिंदुस्तान को नाज़
अहले नजर समझते हैं इसको इमाम–ए–हिंद
एजाज़ इस चराग़–ए– हिदायत का है यही
रोशन तराज़ सहर है ज़माने में शाम–ए–हिंद
तलवार का धनी था, शुजाअत में फ़र्द था
पाकीज़गी में, जोशे मोहब्बत में फ़र्द था

इक़बाल ही नहीं अपितु अनेक उर्दू कवियों ने रामायण के कथानक एवं पात्रों का वर्णन अपनी कविताओं में किया है। कुछ उदाहरण देखिए–

उर्दू के प्रसिद्ध कवि अब्दुस्समद यार खाँ सागर निज़ामी ने अपनी कविता 'राम' में राम का प्रशंसात्मक वर्णन किया है–

ज़िंदगी की रूह था रूहानियत की शान था
वह मुजस्सिम रूप में इनसान का इरफान था।
हिंदियों के दिल में बाक़ी है मोहब्बत राम की
मिट नहीं सकती क़ियामत तक हुकूमत राम की।

नफ़ीस ख़लीली ने 'स्वयंवर' शीर्षक से एक दीर्घ कविता लिखी है, जिसमें सीता स्वयंवर का वर्णन है। राजा जनक के दरबार में चुनौती स्वीकार करते हुए राम धनुष उठाते हैं। इस दृश्य की सुंदर अभिव्यक्ति देखिए–

अंगड़ाइयाँ लेते हुए
उठे अजब अंदाज से
इक गुल हुआ शेर आ गया
इक खौफ़ सब पर छा गया
घूरा उसे देखा उसे
थर्रा गया ताका जिसे
शेरों में यह ताकत कहाँ
इस जोर से मोड़ी कमाँ
दस–बीस टुकड़े हो गए
कुछ उड़ गए कुछ खो गए
दिल में 'सिया' उतरा गई
इतरा गई शरमा गई
दिल में खुशी सबके हुई
सब बोल उठे जय राम की।

कवयित्री ताहिरा बानू सईद ने अपनी नज़्म 'सीता' में जहाँ सीता के प्रति आदर सम्मान की अभिव्यक्ति की है, वहीं राम के आध्यात्मिक पक्ष पर भी प्रकाश डाला है। जैसे–

उसने पति के रूप में देखा ख़ुदा का रूप
सूरत में राम की नज़र आया ख़ुदा का रूप
लंका की कैद में भी थी धुन राम नाम की
दिल में थी याद, लब पे थी रट राम राम की

मेहदी नजमी ने रामायण राम पर अनेक कविताएँ लिखी हैं। उनकी नज़्म 'अयोध्या' के निम्न पद्य देखिए जिसमें राम के वनवास पर अयोध्यावासियों के दुख का वर्णन किया गया है।

जाते हैं बन को राम ज़माना है सोगवार
है बुढ़ा बाप दर्द जुदाई से बेक़रार
कहती है रो के सारी रिआया ना जाइए
चौदह बरस को जानिबे सहरा न जाइए

मोहम्मद इम्तियाज उद्दीन ने 'रामायण' के शीर्षक से एक मसनवी कही थी, जिसके आरंभिक बोल देखिए–

ख़ुदा के नाम को हर सांस में विरदे ज़बां कर लूँ
उसी के इश्क से रौशन ज़मीं को आसमाँ कर लूँ
दिखाऊँ मसनवी में राम के किरदार के जौहर
उसी की सीरत पाकीज़ा ज़ेब दास्तां कर लूँ।

प्रोफ़ेसर हनीफ़ कैफ़ी ने अपनी नज़्म 'महर जहांताब राम' में राम को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कुछ इस तरह कहा है–

राम वह महर जहांताब है जिसके दम से
पारह पारह हुआ शीराज़ा ज़ुल्मत का तिलिस्म
तीरगी दूर हुई रोशनियाँ फैल गईं
आलम ए अफ़रोज़ वो सब रोशनियाँ आज भी हैं।
आज भी बज़्में जहाँ में है चिरागां उनसे

प्रगतिशील कवि कैफ़ी आज़म ने कहा है–

चंद रेखाओं में सीमाओं में
जिंदगी कैद है सीता की तरह
राम कब लौटेंगे मालूम नहीं
काश रावण ही कोई आ जाए।

उर्दू कवियों ने राम और वनवास जैसे रूपकों का सुंदर प्रयोग किया है। प्रगतिशील कवि जानिसार अख्तर कहते हैं–

उजड़ी उजड़ी हुई है हर आस लगे
ज़िंदगी राम का बनवास लगे।

असद रज़ा ने भी अपनी नज़्म 'कौशल्या के राम' में इस तरह वर्णन किया है–

कुर्बानियों को करता है जिनकी जहाँ सलाम
ईसार और सदक व सफा के हैं जो इमाम
मंदिर में घर में जपते हैं जिनका करोड़ों नाम
दशरथ के हैं पिसर वही कौशल्या के राम।

उर्दू के प्रसिद्ध कवि रघुपति सहाय फिराक गोरखपुरी ने अपनी रुबाइयों में सीता और राम का प्रतीक रूप में प्रयोग किया है–

रश्के दिले कैकई का फ़ितना है बदन
सीता के बिरह का कोई शोला है बदन
सीता पे स्वयंवर में पड़ा राम का अक्स
या चाँद से मुखड़े पे है ज़ुल्फ़ों का धुआँ।

डॉक्टर सलाम संदेलवी ने भी रामायण के प्रतीकों का सुंदर वर्णन किया है। जिससे संपूर्ण कथावस्तु सामने आ जाती है। राजा जनक का धनुष लाना, सीता स्वयंवर, रामचंद्र जी का मृग के पीछे जाना, रावण का सन्यासी के भेष में आना, सीता की कुटिया के पास आकर भीख माँगना आदि दृश्यों का वर्णन देखिए–

आकाश पे–बादल के ये टुकड़ों की चमक
बलखाती हुई क़ोस व क़ज़ह की ये लचक
या भारी धनुष राजकुमारों के बीच
लाए हैं स्वयंवर के लिए राजा जनक
तारों से वो आकाश का चेहरा रौशन
वो चाँद के पास अब्रे सिय का दामन
या माँग रहा है हाथ फैलाए भीख
सीता से कुटी के पास आकर रावण।

पंडित बृज नारायण चकबस्त उर्दू के प्रसिद्ध कवि हुए हैं। उन्होंने रामायण के कथानक के एक अंश को आधार बनाकर 'रामायण का एक सीन' नाम से दीर्घ कविता लिखी है। यह अयोध्याकांड का संदर्भ है। इसमें वनवास जाने से पहले राम माँ कौशल्या से विदाई लेने जाते हैं। माता से वार्तालाप होता है। एक तरफ माँ की ममता और दूसरी तरफ आज्ञाकारी पुत्र का ऐसा आदर्श चित्र, सुंदर अभिव्यक्ति चकबस्त ने की है–

रुखसत हुआ वह बाप से लेकर खुदा का नाम
राहे वफा की मंजिल अव्वल हुई तमाम।
मंजूर था जो माँ की ज़ियारत का इंतेज़ाम
दामन से अश्क पोंछ के दिल से किया कलाम।
इज़हार ए बेकसी से सितम होगा और भी
देखा हमें उदास तो ग़म होगा और भी।
दिल को संभालता हुआ आखिर वो नौ–निहाल
खामोश माँ के पास गया सूरते ख़याल।
देखा तो एक दर में है बैठी वो खस्त हाल
सकता सा हो गया है ये है शिद्दते मलाल।
तन में लहू का नाम नहीं ज़र्द रंग है
गोया बशर नहीं कोई तस्वीरे संग है।

इस नज़्म में मनुष्य की भावनाओं का और जीवन की अनुभूतियों का वास्तविक चित्रण है। इतना ही नहीं राष्ट्र के प्रति चकबस्त की भावनाएँ आज भी प्रासंगिक एवं युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणादायक हैं। उनकी कविता के दो पद्य देखिए–

मिटने वालों की वफा का यह सबक याद रहे
बेड़ियाँ पाँव में हों और दिल आज़ाद रहे
बा़गबाँ दिल से वतन को ये दुआ देता है
मैं रहूँ या न रहूँ यह चमन आबाद रहे।

इस तरह हम देखते हैं कि उर्दू कविता भी राम कथा प्रसंगों से ओत–प्रोत है। जिसकी ओर संकेत मात्र मेरा उद्देश्य है। इससे सदभावना एवं भावात्मक एकता का विकास संभव है, साथ ही साथ भारतीय आदर्श 'वसुधैवकुटुम्बकम' की भावना का विकास भी संभव है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. इक़बाल, कुल्लियाते इक़बाल, एजुकेशन बुक हाउस, अलीगढ़ 2003

2. प्रोफ़ेसर अब्दुल सत्तार दलवी, इक़बाल का ममदूह– अज़ीम संस्कृत शायर मुफ़क्किर भर्तृहरि, दायरतुल अदब, मुंबई, 2004

3. असद रज़ा, 'मुस्लिम शोर के कलाम में इमामुल हिंद राम', उर्दू दुनिया, दिसंबर 2018, उर्दू भाषा विकास परिषद्, नई दिल्ली।

4. संजयकुमार, 'चकबस्त की शाहकार नज़्म– रामायण का एक सीन'. उर्दू दुनिया, दिसंबर 2018, उर्दू भाषा विकास परिषद्, नई दिल्ली

– 1–3–255, पहाड़ी नगर, जिला–यदादरी भुवनगिरी–तेलंगाना , भुवनगिरी –508116

❑❑❑

राम भक्ति संप्रदाय के कवि और चैतन्य दर्शन

डॉ. शशिकांत मिश्र

अखिल ब्रह्मांड के नियंता के प्रति पूर्ण समर्पण ही भक्ति है। उस निर्गुण–निराकार की खोज ही भक्ति है। चाहे वह राम भक्ति हो या कृष्ण भक्ति, दोनों धाराओं की परिणति उस संसार के पालनकर्ता से आत्मसाक्षात्कार है। सृष्टि के हर जीव का अंतिम उद्देश्य उस आनंद स्वरूप से मिलन है, क्योंकि हर जीव तो उस आनंद सागर का अंश है। राम भक्ति संप्रदाय तथा चैतन्य दर्शन के संबंध में बात करने से पहले हमें 'भक्ति' क्या है, इस पर थोड़ी नजर डाल लेना उचित होगा।

'भक्ति' अपने आपमें एक महान तथा विशिष्ट अर्थ देने वाला शब्द है। इसके बारे में बताना या उसे परिभाषित करना, आसमान की ऊँचाई को नापना और सागर की गहराई के बारे में बताने के समान है। यह अनुभव करने की चीज है। इसे गूंगे का गुड़ कहा गया है। इसका संबंध मनुष्य के मन से है। मनुष्य भक्ति के बिना नहीं रह सकता। बादल जब पानी से भर जाता है तो उसे बरसना पड़ता है और फूल जब सुवास से भर जाते हैं, उन्हें हवाओं को अपनी सुगंध लुटा देनी होती है। जब कोई दीया जलता है तो वह आलोक देता ही है। मनुष्य के अंदर भी एक लहर अनंत काल से बहती हुई आई है; यह है प्रेम की लहर। मनुष्य फूल या दीया की तरह अपने मन में उठनेवाली प्रेमरूपी लहरों को प्रकट करने के लिए छटपटाता है। उसे एक प्रिय की आवश्यकता रहती है। जब उसकी छटपटाहट चरम सीमा पर पहुँच जाती है तब वह एक आनंद का अनुभव करने लगता है और यही आनंद ही भक्ति है। 'भक्ति मीमांसा' में मन के उल्लास विशेष को भक्ति कहा गया है –'भक्तिर्मनस उल्लास विशेषः।'[1] मधुसूदन सरस्वती के अनुसार मन की समग्र वृत्तियों का भगवान की ओर छटपटा कर प्रवाहित होना भक्ति है।[2] रूपगोस्वामी ने 'भक्तिरसामृतसिंधु' में श्रीकृष्ण के प्रति ऐसे अनुराग या प्रेम को उत्तम भक्ति कहा है, जो अन्य अभिलाषाओं से शून्य हो; ज्ञान और कर्म से अनावृत्त हो –

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।[3]

भक्ति के धरातल पर मनुष्य को स्वतंत्रता का एहसास होता है। उसमें प्रेम रूपक दो पंख होते हैं, जो उसे ऊपर की ओर ले चलते हैं। जब प्रेम रूपक पंख हो जाता है यानी मनुष्य पूर्णरूपेण सारे बंधनों से दूर चला जाता है; तब उसके मन में आनंद की महोदधि उमड़ने लगती है। सारांशतः यह कहा जा सकता है कि भक्ति मन की उपज उस गंगा की धारा है जो भक्त की सारी प्रवृत्तियों को अपनी शीतलता से शांत कर आगे बढ़ जाती है और भक्त को उस ब्रह्म से साक्षात कराती है, जहाँ पर भक्त को उसके जन्म की सार्थकता की उपलब्धि हो पाती है।

जहाँ तक हमारे विषय का संबंध राम भक्ति साहित्य और चैतन्य दर्शन से है, चैतन्य दर्शन और कुछ नहीं, बल्कि गौड़ीय दर्शन ही है, क्योंकि चैतन्य महाप्रभु का संबंध गौड़ प्रदेश (बंगाल) से होने के कारण उनके अनुयायियों ने चैतन्य के

दर्शन को गौड़ीय दर्शन भी कहा है। इनका सिद्धांत 'अचिंत्य भेदाभेद' रहा है। गौड़ीय दर्शन की सैद्धांतिक स्थापना चैतन्य महाप्रभु के शिष्य रहे छह गोस्वामियों में से जीव गोस्वामी ने की थी, वहीं दूसरी ओर चैतन्य महाप्रभु के अन्य शिष्य रूप गोस्वामी ने अपनी रचना 'भक्तिरसामृतसिंधु' के माध्यम से इसके प्रचार–प्रसार को और बल दिया था। साहित्य में भक्ति को रस रूप में मान्यता भी इससे मिली थी। सच्चाई तो यह है कि गौड़ीय दर्शन या चैतन्य दर्शन का प्रभाव मुख्यतः कृष्ण भक्ति संप्रदायों पर रहा और गौणतः राम भक्ति संप्रदायों पर। किंतु राम भक्ति संप्रदाय के कवि समकालीन होने पर वे गौड़ीय दर्शन के भक्ति तत्वों से अवश्य प्रभावित रहे हैं।

इतिहास साक्षी है कि भक्ति वाङ्मय में अंतिम प्रचारक रहे कलिकाल के कृष्ण अवतारी चैतन्य महाप्रभु की भक्ति का जादू मूलतः उस समय के समस्त भक्तों पर छाया हुआ था। महाप्रभु की भक्ति ने समस्त भक्तों के मन को कलुष मुक्त कर धौतपूत बना दिया था। हम यह भी कह चुके हैं कि गौड़ीय दर्शन का प्रभाव मुख्यतः कृष्ण भक्ति संप्रदायों पर और गौणतः राम भक्ति संप्रदायों पर रहा है। जहाँ तक राम भक्ति संप्रदाय पर गौड़ीय संप्रदाय के प्रभाव की बात है तो इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि तुलसीदास अष्टछाप के समकालीन थे और यहाँ पर यह निवेदन किया जाता है कि जब अष्टछाप के आचार्य तथा कवि गौड़ीय दर्शन से प्रभावित थे तब उनके समकालीन तुलसीदास भी गौड़ीय दर्शन के भक्ति तत्वों से प्रभावित हुए होंगे। इसका ज्वलंत साक्षी तुलसीदास की रचनाएँ हैं। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि तुलसीदास ने कृष्ण भक्ति संबंधी रचना भी रची है और 'कृष्ण गीतावली' उसका एक अच्छा उदाहरण है।

गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति गौड़ीय संप्रदाय की तरह मधुरा भक्ति थी, किंतु तुलसीदास की मधुरा भक्ति दास्य भक्ति के अंतर्गत थी। अतः यह मानना होगा कि राम का रूप कृष्ण के समान मधुर भक्ति रस के अनुकूल नहीं था। उपासकों की मधुर भावना को जो उत्संग–उद्दीप्तता कृष्ण की विविध माधुरियों से मिलता है वह राजीवलोचन राम के भोलेपन से नहीं। जो भी हो, ''राम भक्ति की मधुरोपासना पर प्रत्यक्षतः कृष्ण भक्ति संप्रदायों का प्रभाव था, उसमें चैतन्य और उससे प्रेरित सखी भावोपासक राधावल्लभ संप्रदाय और निम्बार्क संप्रदाय का प्रभाव था।''[4] इस संदर्भ में नरेशचंद्र वंसल जी ने यह बताया है कि राम भक्ति में मधुरोपासना का संप्रदाय रूप में उद्भव तो निश्चित रूप से कृष्ण भक्ति की मधुरोपासना का परवर्ती था। उन्होंने डॉ. करुणापति त्रिपाठी के मत को स्वीकारते हुए यह लिखा है कि ''श्री करुणापति त्रिपाठी ने ठीक ही कहा है कि राम भक्ति शाखा में मधुरोपासना का सांप्रदायिक स्तर पर प्रवेश कृष्ण भक्ति की मधुरोपासना के बाद की चीज है।''[5]

मुख्यतः दास्य भाव की भक्ति में शृंगार की मात्रा कम होती जाती है। तुलसीदास की भक्ति भावना में दास्य भक्ति प्रमुख होने के कारण इनके रामकाव्यों में राम के सौंदर्यशील की परिधि संकुचित हुई दृष्टिगोचर होती है। अतः उस समय चैतन्य संप्रदाय की प्रेमभक्ति ने राम की ओर भक्तों को संप्रेषित किया। नरेशचंद्र बंसल जी ने 'राससर्वस्व' के आधार पर यह बताया है कि कृष्ण की रासलीला तुलसीदास के बाद के राम भक्त कवि अग्रदास को प्रिय थी। उक्त कृति में इस संदर्भ में एक पद प्राप्त होता है –

अद्भुत आनंद आज भयो।
रास अनुकरण ब्रजवासिन मिलि कोनों मो चित्त लाभ भयो।''[6]

अतः अग्रदास की राम भक्ति उपासना शैली मुख्यतः सखीभाव की थी, न तो तुलसीदास की तरह दास्य भाव की। ध्यातव्य है कि अग्रदास जी की पदावली में माधुर्य भक्ति न सिर्फ राम भक्ति संप्रदाय तक सीमित थी, बल्कि कृष्ण भक्ति का गुणगान भी उन्होंने किया है।[7] इस संदर्भ में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने विश्वास के साथ यह कहा है कि ''हिंदी साहित्य की राम भक्ति धारा के रसिक भक्तों पर अप्रत्यक्ष रूप से चैतन्य संप्रदाय के आचार्यों की चिंतन पद्धति और भाव साधना विषयक साहित्य का प्रभाव पड़ा है।''[8] अगर तुलसी की नवधा भक्ति विषयक पदों को आधार बनाया

जाएगा तो इनमें भी गौड़ीय संप्रदाय के परोक्ष प्रभाव की झाँकी मिल पाएगी। ध्यान रहे कि गौड़ीय संप्रदाय के दर्शन में भागवत में वर्णित नवधा भक्ति को स्वीकारा गया है, किंतु 'कीर्तन' को अधिक प्रमुखता दी गई है। तुलसीदास ने भी गौड़ीय दर्शन में वर्णित कीर्तन के तत्वों के समान भाव वाले पद लिखे हैं, जो अग्रलिखित हैं–

कलियुग जोग न जन्य न ज्ञाता। एक आधार राम गुन गाता।।
सब भरोस तजि जो भजि रामहिं। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहिं ।।
सोई भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रकट कलि माहीं।[9]

ध्यातव्य है कि तुलसी राम से, राम 'नाम' को महाप्रभु चैतन्यदेव की तरह विशिष्ट तथा श्रेष्ठ मानते थे । 'विनयपत्रिका' में उन्होंने यह बताया है कि[10]–

राम राम रमु, राम राम रटु, राम नाम जपु जीहा।
तथा –
राम जपु राम जपु राम जपु बावरे।
घोर भव तीर निधि नाम निजु नाव रे।

तुलसी की दार्शनिक विचारधारा के अनुशीलनोपरांत यह ज्ञात होता है कि तुलसी के विचार गौड़ीय दर्शन में वर्णित दार्शनिक विचारों से भिन्न नहीं हैं। उनके एक पद में वर्णित माया और जीव का वर्णन देखिए –

मम माया संभव संसारा।
जीव चराचर विविध प्रकारा।
सब मम प्रिय सब मम उपजाते।।[11]

स्मरणीय है कि गौड़ीय दर्शन में जैसे आत्मा को अविनाशी माना गया है तथा यह कहा गया है कि माया बंधन में पड़ा जीव, कृष्ण को पा जाए तो उसके कष्ट मिट जाते हैं। तुलसीदास भी वैसा ही कहते हैं –

सद्‌गुरु बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न विषय कै आसा।
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्‌धामति पूरी।
येहि बिधि भलेहि कुरोग नसाहीं। नाहिं न जतन कोटि नहिं जाहीं।।[12]

तुलसीदास फिर यह कहते हैं कि ईश्वर–जीव में कुछ भेद नहीं है फिर भी माया कृत एक झूठा भेद ज्ञात होता है। ईश्वर के समान यह जीव नित्य है और जन्म–मरण के बंधन में नहीं पड़ता। जीव चेतन है, वह प्रत्येक घट में है। घट उत्पन्न होता है और फिर नष्ट हो जाता है परंतु चेतन जीव नित्य ही रहता है – जिस प्रकार प्रत्येक घट में सूर्य का प्रकाश रहता है। किंतु उस घट के नष्ट हो जाने पर सूर्य नष्ट नहीं होता, वह नित्य ही रहता है। ईश्वर का अभिन्न अछेद्‌य रूप जो है, वही सब घटो में एक रूप से स्थित है। जो आत्मा इंद्रियों को चेतन करती है, वह ईश्वर का ही रूप है –

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा।
प्रगट सो तनु सब आगे सोवा।
जीव नित्य के हि लगि तुम्ह रोवा।[13]

जीव के मायावश और मायाधीश के बारे में गौड़ीय दर्शन आचार्य यह बताते हैं कि –''मायाधीश मायावश ईश्वरे जीव भेद।"[14] इसी से युक्त पद तुलसीदास ने भी रचे हैं।"[15]

जहाँ गौड़ीय दर्शन में परकीया भाव को प्रधानता दी गई है, वहाँ राम भक्ति संप्रदाय में दास्यभाव और सख्यभाव को प्रधानता दी गई है। कृष्णदास कविराज यह कहते हैं –

रागानुगा मार्गे तारे भजे जेइ जन।
सेई जन पाय ब्रजे ब्रजेंद्रनंदन।।[16]

वहाँ तुलसीदास ने उसी भाव की बात कही है, किंतु थोड़ी भिन्नता के साथ–

सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्‌धांत विचारि।।[17]

ध्यातव्य है कि गौड़ीय संप्रदाय में भक्ति को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है यानी ज्ञान और कर्म से भक्ति को श्रेष्ठ माना गया है।[18] कहा गया है कि भक्ति की प्राप्ति के पश्चात् ज्ञान और कर्म उसके अधीन हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार की घोषणा राम भक्त कवि तुलसीदास ने की है– "तेहि अधीन ज्ञान विज्ञाना।"[19] अतः ज्ञान भक्ति के सामने तुच्छ और बेकार है। जितने भी भक्त हैं उनकी भक्ति के

कारण भगवान उनके वश में हो जाते हैं। भक्ति से युक्त नीच से नीच प्राणी भी भगवान के लिए प्रिय है। ध्यान रखें कि उपर्युक्त बात निश्चित रूप में तुलसीदास ने परोक्ष रूप में गौड़ीय दर्शन से अनुप्राणित होकर कही है। तुलना करके देखिए –

दास्य सख्य वात्सल्य शृंगार चारि रस/चारि भावे भक्त जन कृष्ण तार वश।
(चै. च. आदिलीला, परि 3, पृ.17)

अब देखिए तुलसीदास का पद –

भगतिवंत अति नीचौ प्रानी/गोहिं प्रान प्रिय असि मम बानी।
(रा.च.मा. 3/ 86 पृ. 536)

अंततः तुलसीदास ने भगवत् प्रेम को ही भगवान की प्राप्ति का सच्चा साधन बताया है। यह महाप्रभु चैतन्य की भी अपनी विशेषता है। गौड़ीय दर्शन के अंतर्गत इस प्रेमभक्ति के वर्णन पर ज्यादा जोर दिया गया है। तुलसीदास कहते हैं कि योग, जप, दान, तप इत्यादि के रहते हुए भी राम उस पर उतनी कृपा नहीं करते जितनी उस पर करते हैं जो केवल प्रेम करता है। इसलिए जो चतुर हरि भक्त हैं वे मुक्ति का निरादर करके भक्ति की ओर उन्मुख होते हैं–

उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम/राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम।।[20]

उन्होंने गौड़ीय आचार्यों की तरह प्रेमभक्ति जल के बिना मन का मैल नहीं जाने की बात कही है –

प्रेम भगति जल बिनु खगराई/अभिअंतर मल कबहुँ न जाई।।[21]

उपर्युक्त विशद वर्णनोपरांत यह कहा जा सकता है कि राम भक्ति काव्यों में माधुर्य भक्ति आदि का वर्णन गौड़ीयाचार्यों का प्रभाव माना जाना चाहिए। वास्तविकता यह है कि राम भक्ति शाखा की रसिक धारा ने वृंदावन के इस संप्रदाय की रस पद्धति और उपासना विधि को अनेक रूप में अपनाया था। डॉ. भगवती प्रसाद सिंह और डॉ. माधव अपनी पुस्तकों में इस ओर संकेत करते हैं। डॉ. माधव ने अपनी पुस्तक 'राम भक्ति साहित्य में मधुरोपासना' में चैतन्य संप्रदाय द्वारा निरूपित रस–सिद्धांत के आधार पर राम भक्ति की मधुरोपासना का जो विवेचन तथा मूल्यांकन किया है, इससे ज्ञात होता है कि राम भक्ति शाखा की रसिक काव्यधारा का रस–सिद्धांत चैतन्य संप्रदाय का अनुवर्ती था।[22] डॉ. बसंल ने भी डॉ. माधव की पुस्तक के आधार पर यह बताया है कि "दोनों संप्रदायों की माधुर्य भक्ति, सखाओं और सखियों के भेद, यूथेश्वरियों की कल्पना एवं युगल विलास लीलाओं के वर्णन में बड़ी एकरूपता है।"[23]

यहाँ यह बता देना उचित होगा कि तुलसीदास ने 'कृष्ण गीतावली' में मधुर रस की परिकल्पना की है। भले ही यह मधुर रस की परिकल्पना इतनी उन्मुक्त नहीं, इतनी स्वच्छंद नहीं है, फिर भी उनकी पूर्व रचनाओं से थोड़ी आगे बढ़ी हुई जरूर नज़र आती है। 'कृष्ण गीतावली' के शृंगार वर्णन में थोड़ी रसिकता दृष्टिगोचर होती है। इस संदर्भ में प्रेमस्वरूप यह कहते हैं कि ''तुलसी के सामने कृष्ण भक्ति के विविध मधुर संप्रदायों की मधुर भक्ति की धारा प्रवाहित हो रही थी। तुलसी जहाँ वात्सल्य के चित्रण में कृष्ण काव्य से प्रभावित हुए, वहाँ माधुर्य चित्रण में भी कृष्ण काव्य की मधुर धारा से प्रभावित हुए।"[24] अतः यहाँ यह विश्वास किया जा सकता है कि तुलसी गौड़ीय दर्शन की मधुराभक्ति से प्रभावित हुए होंगे, क्योंकि जिस समय तुलसी रचनाएँ रच रहे थे उस समय वृंदावन ही गौड़ीय गोस्वामियों के माधुर्य रस का सरोवर–सा था। स्मरण कराएँ कि 'कृष्ण गीतावली' में तुलसी ने गोपी विरह को कृष्ण भक्ति के सूरदास के 'भ्रमरगीत' के समान चित्रित किया है। हो सकता है कि उन पर गौड़ीय दर्शन के प्रभाव संभव हो। पहले हमने बताया है कि 'माधुर्य रस' के लिए तुलसी कृष्ण भक्ति संप्रदायों से प्रभावित हैं। दूसरी बात यह है कि सूरदास कृत 'भ्रमरगीत' में वर्णित विप्रलम्भ शृंगार पर गौड़ीय दर्शन का प्रभाव है। 'कृष्ण गीतावली' में वर्णित विरह वर्णन का भाव सूरदास कृत 'भ्रमरगीत' के भाव सा लगता है। इसमें सूरदास के विरह वर्णन की भाँति तुलसी ने विरह का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है –

ऊधो! प्रीति करि निरमोहियन सों को न भयो दुख दीन?/सुनत समुझत कहत हम सब

भई अति अप्रबीन।।
अहि कुरंग कंज चकोर चातक मीन/बैठ इनकी पांति अब सुख चहन मन मतिहीन।
निठुरता अरु नेह की गति कठिन परति कही न/दास तुलसी सोच नित प्रेम जानि मलीन।।[25]

दूसरा पद देखिए, जिसमें तुलसीदास की विरह–गोपिकाएँ उद्धव को कहती हैं–

ऊधौ या ब्रज की दशा विचारो/ता पाछे यह सिद्धि अपनी जौगकथा विस्तारों।[26]

कहते हैं कि सच्ची प्रियतमा अपने प्रिय की प्राप्ति हेतु सर्वस्व त्यागने को तैयार रहती है। रास्ता कितना भी दुर्गम क्यों न हो, उस पर चलने को उद्यत हो जाती है। यही दशा आज तुलसीदास की विरहिणी गोपियों की है। ये कृष्ण को निकट पाने के लिए सब कुछ सहने को तैयार हैं। यहाँ तक कि कूबरी को भी वृंदावन में ला सकती हैं, जिससे कि कृष्ण मथुरा छोड़कर यहाँ आ जावें–

सब मिलि साहस करिय सयानी/ब्रज आनियहिं मनाइ पायँ परि कान्ह कूबरी रानी।
बसैं सुवास, सुपास होहिं सब फिरि गोकुल राजधानी/महरि महर जीव हिं सुख जीवन खुलहिं मोद मनि खानीं।
तजि अभिमान अनख अपनो हित कीजिए मुनिबर बानी/देखिबो दरस दूसरे हुँ चौथेहुँ बड़ो लाभ, लघु हानी।
पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जग जानी/तुलसी सो तिहुँ भुवन गायबी नंदसुवन सनमानी।।" [27]

डॉ. बंसल ने राम भक्त उपासकों के गौड़ीय दर्शन के आचार्यों से प्रभावित होने के संबंध में एक महती सूचना दी है। उन्होंने यह बताया है कि राम भक्ति में 'महाभाव' का शास्त्रीय निरूपण 'प्रीति पंचासिका' में मिलता है। पूर्व कथित है कि मंजरी उपासना गौड़ीय संप्रदाय की अनोखी सूझ है। राम भक्ति संप्रदाय के भक्त रामचरणदास ने अपने पट्ट शिष्य युगलप्रिया जी को चौसठ तत्वों का उपदेश दिया था। अंततः इन पर गौड़ीय दर्शन आचार्य श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी और रूपगोस्वामी के क्रमशः 'हरिभक्ति विलास' तथा 'भक्तिरसामृत सिंधु' का प्रभाव माना जाता है।[28] यही नहीं, षोड़श मंजरी भावोपासना का जो आख्यान यहाँ संगठित हुआ है उनमें चैतन्य–संप्रदाय की मंजरी भावना ही नहीं; रस मंजरी, गुण मंजरी, रति मंजरी जैसे मंजरी नामों की उद्धरणी भी कर दी गई है। यहाँ तक कि ग्रंथों का नाम भी चैतन्य संप्रदाय के प्राचीन ग्रंथों का अनुकरण मात्र है। कृपानिवास जी कृत 'रामरसामृत सिंधु' रूप गोस्वामी कृत 'भक्तिरसामृत सिंधु' के अनुकरण पर रचा गया ज्ञात होता है।[29] डॉ. माधव ने राम भक्ति संप्रदाय के आचार्यों पर संपूर्ण रूप से गौड़ीयाचार्यों के प्रभाव को स्वीकारा है और यहाँ तक कह डाला है कि "चैतन्य संप्रदाय की साधना में जो स्थान जीव गोस्वामी का है और जिस प्रकार जीव गोस्वामी ने भक्ति, प्रीति आदि षट् संदर्भ द्वारा चैतन्य वैष्णव साधना के रहस्य का उद्घाटन एवं विश्लेषण किया है, ठीक उसी पद्धति पर छह संदर्भों का विशद ग्रंथ मधुराचार्य जी ने लिखा है।"[30] ध्यान रहे कि मधुराचार्य जी द्वारा वर्णित सखी, दासी व्याख्यान गौड़ीय संप्रदाय की मान्यतानुसार है। दूसरी बात यह है कि गौड़ीय संप्रदाय की अष्टयाम सेवा भावना तथा मानसी सेवा भावना का भी यथावत् अनुकरण, मधुराचार्य जी की रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। यहाँ विचारणीय यह है कि डॉ. गोपीनाथ कविराज ने राम भक्ति की रस साधना को रूप–सनातन गोस्वामी की रस साधना से प्रेरित बताया है।[31]

डॉ. बंसल ने यह खोज निकाला है कि स्वामी जनकराज किशोरी शरण ससिक अली कृत 'सिद्धांत मुक्तावली' अष्टयाम भावना और रस साधना का प्रमुख ग्रंथ है। इस कृति में जो उद्धरण मिलते हैं उससे "भक्तिरसामृतसिंधु का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है –

भाव भक्ति तब जानिए यह जिय होय सुभाय।
क्षमा विरक्ति अमानता काल वृथा नहिं जाय।।
मिलन आसरजु वद्ध चित पुनि उत्कंठा जान।
आसक्ति सद्गुण कथन प्रीति बसत अस्थान।।
नाम गा (न) में रचि सदा नवलक्षण होई।
सिय रघुनंदन मिलन को अधिकारी लखु सोई।।[32]
(सिद्धांत मुक्तावली)

तुलना कीजिए–

क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानषून्यता।
आशाबंधः समुत्कंठा नाम गाने सदा रुचिः।[33]

राम भक्ति संप्रदाय के विस्तारपूर्वक वर्णनोपरांत यह कहा जा सकता है कि राम भक्ति संप्रदाय में तुलसीदास, अग्रदास से लेकर बाद के 18वीं शताब्दी तक के राम भक्त कवियों पर गौड़ीय दर्शनाचार्यों का प्रभाव निश्चित रूप में रहा है। यह हम नहीं बल्कि राम भक्ति साहित्य के प्रबुद्ध ज्ञाताओं ने स्वीकार किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भक्ति मीमांसा, प्रथम अध्याय, प्रथम पाद–2
2. भक्ति रसायन–1/3
3. भक्तिरसामृतसिंधु–1/11
4. चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य, पृ–414
5. चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य, पृ–414
6. हिंदी वैष्णव साहित्य में रस परिकल्पना, पृ–417
7. हिंदी साहित्य; द्वितीय खंड, पृ–305
8. रामचरितमानस, उत्तरकांड, पृ –164
9. विनय पत्रिका, पद सं.65
10. विनय पत्रिका, पद सं.66
11. रामचरितमानस 3/86, पृ –536
12. रामचरितमानस 3/122 पृ–563
13. रामचरितमानस, किष्किंधा कांड–11, पृ–360
14. चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला, परि 6, पृ–132
15. रामचरितमानस, उत्तरकांड, 117
16. चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला, परि 8, पृ–153
17. रामचरितमानस, उत्तरकांड–119, पृ–560
18. चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला, परि 22 पृ–279
19. रामचरितमानस, अरण्यकांड–16, पृ–330
20. रामचरितमानस, लंकाकांड–117, पृ–482
21. रामचरितमानस
22. राम भक्ति साहित्य में रसिक संप्रदाय, पृ–118
23. चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य, पृ–118
24. हिंदी वैष्णव साहित्य में रस परिकल्पना, पृ–386
25. श्रीकृष्ण गीतावली, छंद सं.55
26. श्रीकृष्ण गीतावली, छंद सं.33
27. श्रीकृष्ण गीतावली, छंद सं.48
28. राम भक्ति में रसिक संप्रदाय, पृ–404
29. चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य, पृ–420
30. राम भक्ति साहित्य में मधुरोपासना, पृ–173
31. राम भक्ति में रसिक संप्रदाय की भूमिका, पृ–4
32. चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य से उद्धृत, पृ–423
33. हिंदी भक्तिरसामृतसिंधु, पूर्व भाग, तृतीय भावलहरी, पृ–97–98

– विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग एवी कॉलेज ऑफ आर्ट्स, साइंस एंड कॉमर्स दोमलगुडा,
हैदराबाद–500029

* * *

रामचरितमानस में मनोवृत्तियों के उदात्तीकरण की उद्‌भावनाएँ

डॉ. दीपिका विजयवर्गीय

रामचरितमानस काल के भाल पर अपनी विशिष्टता की जो अमिट छाप छोड़ने में सार्थक सिद्‌ध हुआ है, उसके अनेकानेक कारणों में उसका समाज–दर्शन भी एक प्रमुख कारण है। साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध सदा से चला आ रहा है। महामनीषी तुलसी ने समाज की धड़कन को बड़ी सूक्ष्मदृष्टि से परखा और पहचाना। उन्होंने समाज के दुष्कर्मों को उद्‌घाटित करके उसे चेतनमय बनाने का बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया। कलियुग के माध्यम से सामाजिक दुर्व्यवस्था का यथार्थ प्रस्तुतीकरण उनकी पैनी दृष्टि का प्रतिफलन है।

तुलसी का पूर्ण विश्वास है कि मनुष्य का अंतःजीवन, बाह्‌य–जीवन, समष्टि–जीवन तथा समाज की सुखमयता तभी संभव हो सकती है जब मानव संकीर्ण चिंतनधारा का परित्याग करके समदर्शित्वभाव को अपनाकर प्रत्येक कार्य में उदात्त आध्यात्मिक दृष्टि को धारण कर ले। यहाँ यही दृष्टिकोण उसके व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन के सभी प्रकार के विरोधों में सामंजस्य स्थापित करके वैषम्य में साम्य की प्रतिष्ठा कर सकता है तथा इससे ही मानव–जाति में प्रेम, शांति, सौहार्द एवं ऐक्य की स्थापना हो सकती है।

संसार में सत्, असत् शक्तियाँ संघर्षशील रहती हैं। सत्साहित्य सत्शक्तियों की विजय घोषित करता है अथवा उस विजय के प्रति लोकमानस में विश्वास दृढ़ करता है। लोकनायक तुलसी ने अपने युग में लोकचेतना के अधोगमन को खुली आँखों से देखा। इसकी अभिव्यक्ति रामचरितमानस में प्रकारांत से अनेक स्थलों पर हुई है।

> *बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लपट पर धन परदारा।।*
>
> *जे जनमें कलिकाल कराला। करतब वायस वेष मराला।।*
>
> *चलत कुपंथ वेद मग छाड़े। कपट कलेवर कलिमल भाड़े।।*
>
> *बचक भगत कहाई राम के। किकर कचन कोह कामके।।*[1]

महाकवि तुलसी ने अपने युग में लोकचेतना के इस ह्रास को अनुभूत किया तथा उसके उदात्तीकरण की अनेक उद्‌भावनाओं को मानस में प्रस्तुत किया। लंकाकांड में तुलसी ने एक ओर राम को नैतिक शक्ति, धर्म पथगामी एवं कर्त्तव्यनिष्ठ चित्रित किया है, दूसरी ओर मदांध एवं युद्‌धोन्मादी, पाश्विक प्रवृत्तियों से युक्त रावण को प्रस्तुत किया गया है। ऐसे में विभीषण यह अनुभव करता है कि पशुबल के मुकाबले के लिए भौतिक साधनों की आवश्यकता होती है। इसलिए उसके मन में शंका उत्पन्न हुई–

> *रावण रथी विरथ रघुवीरा। देखि विभीषण भयउ अधीरा।।*
>
> *नाथ न रथ, नहि पदत्राना। केहि विधि जितब बलवाना।।* [3]

राम ने उसे समझाया कि आत्मबल व नैतिक शक्ति के आगे पशुबल टिक नहीं सकता–

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्पंदन आना।।

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।

बल विवेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।।

ईस भजनु सारथी सुजाना। विरति चर्म संतोष कृपाना।।

दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर विग्यान कठिन कोदंडा।।

अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना।।

कवच अभेद विप्र गुर पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा।।

सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहं न कतहुं रिपु ताकें।।[3]

तुलसी ने इस प्रसंग की उद्भावना से मनोवृत्तियों के उदात्तीकरण का मार्ग प्रस्तुत किया है। यहाँ पर राम का कथन है कि जिससे जय होती वह रथ दूसरा ही है। शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिए हैं। सत्य और शील (सदाचार) उसकी मजबूत ध्वजा और पताका हैं। बल, विवेक, दम (इद्रिंयों का वश में होना) और परोपकार–ये चार उसके घोड़े हैं, जो क्षमा, दया और समता रूपी डोरी से रथ में जोड़े हुए हैं। ईश्वर का भजन ही (उस रथ को चलाने वालों) चतुर सारथी है। वैराग्य ढाल है और संतोष तलवार है। दान फरसा है, बुद्धि प्रचंड शक्ति है, श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है। निर्मल (पापरहित) और अचल (स्थिर) मन तरकस के समान है। शाम (मन का वश में होना), (अहिंसादि) यम और शौचादि नियम, ये बहुत–से बाण हैं। ब्राह्मणों और गुरु का पूजन अभेद्य कवच है। इसके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं है। ऐसा धर्ममय रथ जिसके साथ हो उसके लिए जीतने को कहीं शत्रु ही नहीं है।

धैर्य

विकार के हेतु की विद्यमानता पर भी जो व्यक्ति मन में विकार नहीं लाता, वही धैर्यशील होता है। धर्म–कर्म के अनुष्ठान में कामादि विकारों से मन में विकृति का आना जाना स्वाभाविक होता है, किंतु उस विकास की भावना को दबाकर धर्मशील मनुष्य सदा धैर्य परायण रहता है। तुलसीदास ने इस गुण का वर्णन इस प्रकार से किया है––

ते अधीर अछत विकार हेतु जे रहत मनसिज बस किए।[4]

मानस में इस गुण के दर्शन अनेक स्थानों पर होते है। कौशल्या–चरित्र तो इसका अनुपम उदाहरण है। वाल्मीकि की कौशल्या जहाँ किसी भी प्रकार राम को वन–गमन की आज्ञा न देकर निज स्वार्थवश अपने पास ही रखना चाहती है, वहाँ तुलसी की कौशल्या दशरथ की विकलावस्था के समय भी धैर्यपूर्वक ही राम को समझाती है–––

धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद वचन कहति महतारी।।[5]

स्वयं राम ने नारद के प्रति संतों के लक्षणों का बखान करते हुए धैर्य नामक धार्मिक गुण का प्रतिपादन किया है––

सावधान मानद मदहीना। धीर धर्मगति परम प्रबीना।।[6]

धर्मशील राम में जहाँ शौर्य और धैर्य दोनों गुणों की पूर्णता के दर्शन होते हैं वहाँ अधर्मरत रावण के चोरी तथा कपट के साधन से सीता को हरण करने में इन दोनों गुणों का अभाव सिद्ध होता है!

सत्य

वैदिक काल से लेकर समस्त धार्मिक ग्रंथों में सत्य को धर्म का अत्यंत महत्वपूर्ण स्तंभ माना गया है। उपनिषदों ने 'सत्यमेव जयते नानृतम'[7] की घोषणा से सत्य का अवलंबन तथा असत्य का परित्याग 'धर्म' बताया है। वाल्मीकि में सत्य को परम धर्म मानते हुए उसी को परमबह्म माना है।[8]

तुलसीदास भी सत्य को ही परम धर्म मानकर उसी में सब धर्मों का विलय मानते थे। सुमंत्र के प्रति राम के उपदेश में उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहलवाया है–

सिवि दधीच हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा।।
रंति देव बलि भूप सुजाना। धरम धरेउ सहि संकट नाना।।
धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना।।[9]

शील

भर्तृहरि ने शील को परम भूषण की संज्ञा देते हुए इसे धर्म का प्रमुख अंग माना है। समस्त प्राणियों के साथ मन, वाणी तथा कर्म अद्रोह की भावना रखना तथा उन पर अनुग्रह करना एवं दानशीलता का भाव प्रदर्शित करना ही 'शील' कहा जाता है। 'विनय पत्रिका' में तुलसी ने राम को परमशीलवान कहते हुए उनके भजन के आगे योग के अष्टांगों को भी तुच्छ कहा है।[10]

बल

धार्मिक आदर्शों में भी बल का विशेष महत्व होता है। बलशीलता के कारण ही ऐहिक तथा पारलौकिक कर्म किया जाना संभव होता है। इसलिए इसमें शरीर, बुद्धि तथा आत्मा तीनों के बल को गिना जाता है।

विवेक

सत् तथा असत् को पहचानकर सत् को ग्रहण करना ही 'विवेक' कहलाता है। लौकिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकार के धर्मों में इसका विशेष महत्व है। राम परम विवेकी थे। सीता ने सुमंत्र द्वारा राजा के संदेश को सुनकर उत्तर देते समय राम को इसी विशेषण से संबोधित करते हुए कहा था–

प्रभु करुणामय परम विवेकी। तनु तजि रहित छांह किमि छेंकी।।[11]

रावण में उचितानुचित के विचार के अभाव से विवेक गुण का नहीं होना प्रतीत होता है। वह धर्मात्मा विभीषण, हितकामिनी मंदोदरी तथा प्रिय मारीच आदि द्वारा प्रबुद्ध करवाए जाने पर भी विवेकहीन ही रहता है। इसी कारण इसका ह्रास होता जाता है।

परहित

अठारह पुराणों के सरधर्म का निष्कर्ष बताते हुए महर्षि वेदव्यास ने परोपकार को समस्त पुण्यों का मूल तथा पर–अपकार को समस्त पापों की जड़ कहा है। भर्तृहरि ने भी अपने नीतिशतक में परहित की महत्ता का विशद विवेचन करते हुए इसे धर्म का अंग घोषित किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी व्यास के सदृश परहित को अनुपम धर्म मानते हुए कहा है–

परहित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।[12]

परहित की भावना मन, वाणी तथा कर्म तीनों द्वारा ही व्यक्त होती है। संत पुरुषों की यही एक पहचान है कि वे परोपकारी होते हैं–

पर उपकार वचन मन काया। संत सहज स्वभाउ खगराया।।[13]

परहित तो प्रकृति का धर्म है। प्रकृति की वस्तुएँ भी अपना अस्तित्व केवल परहित के लिए रखती हैं–

संत विटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह के करनी।।[14]

क्षमा

सर्वथा शक्ति–सामर्थ्य होते हुए भी अपराधी को दंड न देकर उसके अपराध को क्षमा करके उसका सुधार कर देना धार्मिक दृष्टिकोण से महान् महिमाशाली गुण माना जाता है। मानस में राम–परशुराम–संवाद में परशुराम के अत्यंत कठोर वचन कहने पर भी राम उन्हें क्षमा कर देते हैं। जब परशुराम को राम की शक्ति का आभास हो जाता है तो वह इन्हीं शब्दों से क्षमायाचना करते हुए प्रार्थना करते हैं–

अनुचित बहुत कहेउं अग्याता। छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता।।[15]

इसके विपरीत रावण में इस गुण का पूर्णतया अभाव है। वह देवताओं तक को भी क्षमा नहीं करता।

दया/कृपा

अपने आश्रितों पर निज–कर्त्तव्य को समझते हुए कृपा भाव रखना एक उच्च आदर्श माना जाता है। अहेतु की कृपा तो परम धर्म का ही प्रतीक होती है। राम में इसी अहेतु की कृपा के ही दर्शन होते हैं जब वे सुतीक्ष्ण के आश्रम के पास ऋषियों के अस्थिसमूह को देखकर करुणार्द्र हो जाते हैं।

निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुवीर नयन जल छाए।।[16]

बुद्धि

वस्तुतः बुद्धि अंतःकरण की दासी है जो प्रायः प्रलोभनों के कारण आत्माभिमुखी न रहकर मन की अनुचरी बन जाती है और धर्म के स्थान पर अधर्म का पक्ष लेना आरंभ कर देती है। धार्मिक आदर्शों में इसे सात्विक अवस्था में लाकर आत्माभिमुख करना अभीष्ट होता है। गीता में सात्विक बुद्धि का लक्षण बताते हुए उसे प्रवृत्ति–निवृत्ति, कार्य–अकार्य, भय–अभय तथा बंधन और मोक्ष की ज्ञात्री कहा गया है।[17] गोस्वामी तुलसीदास ने मानस के उत्तरकांड में ज्ञानदीपक का वर्णन करते हुए रिद्धि–सिद्धि आदि को अहितकारी समझकर उनकी ओर अपेक्षावृत्ति का प्रदर्शन करने वाली सयानी बुद्धि का इस प्रकार से वर्णन किया है–

होई बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितवन अनहित जानी।।[18]

विज्ञान/ज्ञान

बुद्धि के निर्मल होने से ज्ञान की उपलब्धि होती है। केवल वाक्ज्ञान मात्र से भवबंधन का टूटना संभव नहीं होता। जिस ज्ञान से मोह बंधन टूट जाए और काम, क्रोध तथा अन्य प्रबल विकार मिटकर मनुष्य परमात्मा के साक्षात्कार करने में समर्थ हो जाए, वही 'विज्ञान' कहलाता है।[19] तुलसीदास ने मोक्ष की प्रबलता के संबंध में कहा है कि–

जनमु मरनु जहं लगि जग जालू। संपति विपति करमु अस कालू।

धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहं लगि व्यवहारू।

देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहिं। मोह भूल रमारथु नाहीं।।[20]

काम, क्रोध और लोभ तीनों की प्रबलता के संबंध में वे कहते हैं–

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरू लोभ।

मुनि विग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ।।[21]

इन तीनों शत्रुओं को जीतकर तथा मोहनिशा को समाप्त कर अनासक्ति–भाव से परमात्मा को जानना ही गोस्वामी जी के मत में ज्ञान है जबकि उस ज्ञान को प्राप्त करके भी भक्ति का त्याग न करना विज्ञान। यही ज्ञान–विज्ञान तुलसी की धार्मिक नीति के आधार स्तंभ हैं–

यह विचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहुं ग्यान भगति नहिं तजहीं।

अमलमन/निर्मलता

सांसारिक विरति तथा तदनुवर्तिनी सात्विक बुद्धि से ज्ञान–विज्ञान के उदय हो जाने पर मन में निर्मलता आ जाती है तथा फिर वह कभी अशांत नहीं होता। 'धर्ममय' राम के चरित्र में मन की निर्मलता तथा उसकी शांतावस्था अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची हुई है। पुराणों में विषयों के राग को मन की मलिनता तथा उसके प्रति विरति को निर्मलता की संज्ञा दी गई है। गोस्वामी तुलसीदास भी विषयों को मन की काई कहते हुए उससे छुटकारा ही चाहते हैं–

काई विषय मुकुर मन लागी।

विनय पत्रिका में तो तुलसीदास ने इस मल से छूटने का उपाय बताते हुए कहा है–

रामचरन–अनुराग–नीर बिनु मल अतिनास न पावै।

रामचरण–अनुराग ही 'प्रेमा–भक्ति' है जो इस मल को दूर करने का पवित्रतम साधन तुलसी ने माना है।

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुं न जाई।

इस प्रकार से मन को निर्मल बनाकर अंतःकरण तथा अंतः इंद्रियों को वश में करने से 'राम' भाव की प्राप्ति होती है, जिससे मनुष्य साक्षात् धर्ममय हो जाता है। राक्षसों में जहाँ शम, दम (इंद्रियों को वश में रखना) आदि का अभाव होता है वहाँ सात्विक भाव वाले जीवों में इन गुणों की प्रधानता रहती है। तुलसीदास ने भी चित्त को धर्म–कार्य में स्थिर रखने वाले कर्मों के साधन यम तथा शौच–संतोष आदि क्रियाओं का पालन करके उन्हें ईश्वरार्पण करने वाले साधन नियम को धर्म का महत्वपूर्ण अंग माना है।

समजम नियम फूल फल ज्ञाना।

तुलसीदास जी पुनः संतों में इन गुणों का अस्तित्व बताते हुए कहते हैं–

सम दम निगम नीति नहिं डोलहिं। परष वचन कबहूं नहिं बोलहिं।

जहाँ गोस्वामी तुलसीदास ने मानव के उपरोक्त चारित्रिक गुणों के उदात्त पक्ष को उद्घाटित किया है, वहाँ उन्होंने मानस में असद् वृत्तियों को भी उद्घाटित कर उन वृत्तियों से यथासंभव मुक्त रहने का भव्य मार्ग भी प्रस्तुत किया है।

गोस्वामी तुलसीदास का यह दृढ़ विश्वास था कि विषय वासनाओं के भोगों के प्रति इंद्रियों का अटूट के प्रति अनुराग होने से मन में दुःखजन्य भटकन बनी रहती है। इंद्रियों की लिप्साओं का यह मोहभ्रम रविकर–वारि के समान मिथ्या होते हुए भी नष्ट नहीं हो पाता 'आत्म ज्ञान एवं विवेक' द्वारा इस विभ्रम के निवारण का प्रयास तो होता है परंतु सफलता की प्राप्ति दुसाध्य ही बनी रहती है।[22] इस विषयासक्ति की दुखद परिणति से भी तुलसी सजग करते हैं–

रविकर–नीर बसै अति दारून मकर रूप तेहि माहीं।

बदनहीन सो ग्रसैचराचर पान करन जै जाहीं।[23]

विषयवासनाओं में रत मन की दशा उस कुत्ते जैसी है जो हड्डी सूँघते हुए अपने ही तालु के रक्त का पान कर प्रसन्न होता है।

प्रस्तुत मानव के अवचेतन रूपी सिंधु में समाहित वासनामयी माया एक ऐसी राक्षसी है जो इंद्रियों को उनकी सूक्ष्म तन्मात्राओं (छाया) द्वारा पकड़ कर उनका भक्षण करती रहती है। इसके प्रपंच की परख और पहचान हनुमान का आदर्श प्रस्तुत करके करवाई गई है।

गोस्वामी तुलसीदास जी मानव मन की दुर्बलताओं का निरूपण कर, उनके उदात्तीकरण के प्रयास का भव्य संदेश समाज को देते हैं। इन तामसी मनोवृत्तियों के परिहार से सात्विक मनोवृत्तियों का उदय स्वयं ही हो जाता है तभी मानव को शाश्वत आनंद की उपलब्धि होती है, तब समस्त समाज सुख और शांति से रहता है। आज भी मनुष्य अनेकानेक दुष्वृतियों का शिकार हो मन व जीवन की सुख–शांति से वंचित हो रहा है, ऐसे में रामचरितमानस उनके जीवन में आदर्श स्थापित कर सुख–शांति की ओर अग्रसर करने में सक्षम है। राम का जीवन जन–मानस के लिए सदा से ही प्रेरक रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रामचरितमानस, बालकांड, पृ. 17, दोहा–12
2. रामचरितमानस, लंकाकांड, पृ. 834, दोहा–80
3. रामचरितमानस, लंकाकांड, पृ. 834–835, दोहा–80
4. पार्वती मंगल–15
5. रामचरिमानस, अयोध्याकांड, दोहा–45
6. रामचरिमानस, अरण्यकांड, दोहा–45
7. मुंडकोपनिषद–3–1–6
8. वाल्मीकी रामायण– 2, 14
9. रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा–95 3–5

10. विनय पत्रिका, दोहा–45

11. रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा–97

12. नीतिशतक, अर्हहरि, दोहा–75

13. रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा–41

14. रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा–121

15. रामचरितमानस, उत्तरकांड, दोहा–125

16. रामचरितमानस, अरण्यकांड, दोहा–9, 8

17. प्रवृत्तिं व निवृत्त्विं च कार्यकार्ये भया भये
बन्धं मोक्ष च यावेन्ति बुद्धिं सा पार्थ सात्विकी
(भगवद् गीता 18–30)

18. रामचरितमानस, उत्तरकांड–118

19. येन ज्ञानेन सवेन्ति तज्ज्ञान निश्चितंचमे विज्ञानंच दे तदैवेतत्तक्ष्ज्ञादनु भवेद यथा।
(अध्यात्य रामायण 3–4–39)

20. रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दो–92

21. रामचरितमानस, अरण्यकांड, दो–38

22. विनय पत्रिका, 111/3

23. अस्थि पुरातन छुपित स्वान अति ज्यों भरिमुख पकड़्यों जिनतालुगत रूधिर पान करि मन संतोष धन्यो।

– सह–आचार्य, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

* * *

रामायण और भारतीय संस्कृति

प्रो. जयंतकर शर्मा

‘रामायण’ राम कथा का संक्षिप्त विश्वकोश और भारतीय संस्कृति का झरना है जो आने वाले अनंत काल तक मानव समाज को अपने पावन जल से सराबोर करती रहेगी। महाकाव्य में प्रत्येक आदर्श चरित्र अपने स्वयं के अर्थ के साथ एक–एक उत्कृष्ट उदाहरण हैं और वे हमारे सामने इस इक्कीसवीं सदी में ही नहीं बल्कि आने वाले अनंत काल तक प्रासंगिक, तार्किक और आधुनिक दिखाई देते रहेंगे। इनका प्रभाव इतना महान और गहरा है कि इस आधुनिक वैज्ञानिक, तकनीकी तथा सूचना–युग में भी प्रासंगिक प्रतीत होते हैं। हम ऐसे समय में हैं जब भारतीय संस्कृति के मूल्यों और नैतिकता पर आधुनिक समाज में उनकी प्रासंगिकता पर सवाल उठाए जा रहे हैं। समाज तकनीकी रूप से उन्नत हो गया है। एक ओर तो वैज्ञानिक ज्ञान का विस्फोट हो रहा है, लेकिन दूसरी ओर हम क्रमिक पतन को देखते हैं। व्यक्तिवाद और उपभोक्तावाद को बढ़ावा दिया जा रहा है और इन सभी ने विभिन्न सामाजिक– सांस्कृतिक समस्याओं को जन्म दिया है। आज हर चीज का व्यवसायीकरण हो गया है। मूल्यों और नैतिकता के अभाव में मनुष्य के ’मानव’ कहे जाने का कारण ही लुप्त होता जाता है और वह पशु के स्तर पर आ गया है। जीवन के सभी क्षेत्रों में वैश्विक विकास के बावजूद, मनुष्य के लिए अभी भी एक चुनौती बनी हुई है। वह चुनौती व्यक्तिगत स्तर पर है कि धर्म और अधर्म के बीच अंतर कैसे करें और फिर धर्म का पालन करें। यहाँ रामायण वह संदर्भ बन जाती है जिसे कोई भी इनसान समझ सकता है और उसका अनुसरण कर सकता है। यह सिर्फ एक ऐतिहासिक कहानी नहीं है जो एक बार घटित हुई, बल्कि हमेशा घटित हो रही है। आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि को विकसित करके इसे किसी भी समय अपने अंतरतम स्तरों में देखा जा सकता है। श्रीराम धर्म की मानवीय अभिव्यक्ति हैं। धर्म को जानने की प्रक्रिया में, कोई भी श्रीराम का जीवन एवं चरित्र का अनुसरण करने के लिए एक दृष्टांत और मार्गदर्शक प्रकाश पा सकता है। रामायण का मिशन पृथ्वी पर सर्वत्र धर्म की प्रतिष्ठा करना है।

व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके कर्मों से प्रकट होता है। मानसिक, मौखिक और शारीरिक चरित्र क्रिया में ही प्रदर्शित होता है। इसलिए, व्यक्ति का धर्म व्यक्ति की प्रत्येक क्रिया से संचालित होता है। अतः धर्म शब्द बहुत व्यापक है। यह न तो धर्म (Religion) है और न ही दर्शन, हालाँकि यह उनसे उपजा हुआ तत्व है। इसमें कर्तव्यों, जिम्मेदारियों, अधिकारों, धार्मिक अनुष्ठानों, सामाजिक दायित्वों, धर्मनिरपेक्ष कानूनों, परंपराओं आदि को शामिल किया गया है। राधाकृष्णन के अनुसार, ”धर्म वह बल है जो मानव जीवन को बचाता है और

बनाए रखता है"। धर्म मानव क्रिया का मानक मानदंड है, जिसके अनुसार व्यक्ति को अपने जीवन को सँवारना होता है। यह चार तत्व–समूहों के द्वारा जीवन के चार गुना उद्देश्यों जैसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के संबंध में एक व्यक्ति के पूरे कर्तव्य को अपने जीवन के चरणों जैसे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास के भीतर शामिल करता है। जीवन के चार नैतिक मानक धर्म, अर्थ, काम और लोकाचार हैं, जिनका ज्ञान होना किसी को भी धार्मिक जीवन जीने के लिए बहुत आवष्यक है। मनुष्य की तीन आकांक्षाओं– धर्म, अर्थ और काम में से, 'काम' को धर्म में निहित अर्थ पर आधारित होना चाहिए। वाल्मीकि इस बात से अवगत हैं कि 'काम' बहुत शक्तिशाली है। लेकिन वह सलाह देते हैं कि काम (कामनाओं) और क्रोध में निहित सभी बुरी आदतों को त्याग देना चाहिए। पूरी रामायण में धर्म की प्रकृति के बारे में चर्चा है।

रामायण में वर्णित धर्म और कुछ नहीं बल्कि कर्म या कर्तव्य है। कर्म सिद्धांत भारतीय संस्कृति का मूल आधार रहा है। धर्म का पालन करने का अर्थ है कर्तव्यों के प्रति सही तरीके से प्रतिबद्धता। रामायण में बताया गया है कि उन दिनों लोग दैनिक (नित्य) और सामयिक (नैमित्तिक) प्रदर्शन कर रहे थे। अर्थात् दृढ़ विश्वास के साथ नियत कर्मों में ब्रती होना। रामायण के अनुसार कर्म सुख और दुख का मूल कारण है। हम राम के चरित्र में धर्म और कर्म में कोई अंतर नहीं पाते हैं। महाकाव्य में पात्रों द्वारा संबंधित स्थितियों के आलोक में तर्क दिखाकर धर्म की व्याख्या की गई है, जो आधुनिक समय में बहुत प्रासंगिक है। रामायण की सहायता से चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त किया जा सकता है। आधुनिक समाज को महाकाव्य में निहित धर्म का पालन करने की आवष्यकता है। राम की कहानी हमें त्रिगुणात्मक धर्म यानी व्यक्ति, परिवार और समाज से संबंधित आचार संहिता सिखाती है। व्यक्ति, परिवार और समाज के कर्तव्यों को समझने के लिए हर संभव प्रयास करना पड़ता है। रामायण व्यक्ति की वास्तविक पहचान, परिवार के वास्तविक महत्व और समाज की पवित्रता की बात करती है।

वाल्मीकि ने पवित्रता और सत्य पर सारा बल दिया है। वे सत्य को धर्म मानते हैं तथा इन दोनों अवधारणाओं के बीच कोई अंतर नहीं देखते हैं। वाल्मीकि कहते हैं कि सत्य ही इस संसार की प्रत्येक वस्तु का स्वामी है। सत्य में धर्म हमेशा स्थापित होता है। हर चीज की जड़ में सच्चाई होती है। सत्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। सत्य सर्वोच्च है और धर्म का आधार सत्य में है, सत्य में इसका जीवन है और इसके अलावा कुछ भी नहीं है। वाल्मीकि ने रामायण में धर्म के कार्यात्मक पहलुओं को यह दिखाने के लिए प्रस्तुत किया है कि यह किसी व्यक्ति के जीवन में कैसे कार्य करता है। इस संबंध में रामायण सार्वभौमिक नैतिक व्यवहार के लिए एक प्रस्तुत दिशानिर्देश बन जाती है। उनके अनुसार सत्य ही इस संसार की प्रत्येक वस्तु का स्वामी है और सत्य से ही धर्म की स्थापना होती है। वाल्मीकि मानते हैं कि जो लोग सत्य–धर्म के प्रति समर्पित हैं, उन्हें मृत्यु का कोई भय नहीं होता। उन्होंने महाकाव्य को न केवल गाने या पढ़ने के लिए रचा, बल्कि आने वाली पीढ़ियों को प्रस्तुत करने के लिए, जीवन का एक व्यावहारिक दर्शन तथा सत्य को अपनाकर मौजूदा परिस्थितियों में पवित्र जीवन कैसे व्यतीत किया जाए, उसकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कराया। इसमें एक व्यस्त मानव के लिए एक व्यावहारिक संदेश है कि कैसे अपने दैनिक जीवन को व्यतीत करे ताकि वह न केवल यहाँ अपनी जरूरतों को पूरा कर सके बल्कि वह भी प्राप्त कर सके जिससे वह जीवित है।

मानवीय चिंतन में व्यक्तित्व व आदर्श जिन राहों पर आधारित है, सही मायने में वे सारे श्रीराम के चरित्र में प्रतिबिंबित होते हुए हम पाते हैं। श्रीराम

कर्मयोगी, अनाशक्त व स्थितप्रज्ञ हैं। समानता उनकी कर्मधारा का सर्वश्रेष्ठ तत्व है। राक्षसवृत्ति व दुष्टों से समाज की रक्षा करना तथा लोगों में निष्ठा की प्रतिष्ठा उनके धरावतरण का प्रमुख उद्‌देश्य रहा है। महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम को धर्म का विग्रह यानी धर्म के साक्षात् प्रतीक के रूप में परिचित कराया है (रामो विग्रहवान् धर्मः)। महर्षि ने चरित्र को ही मानवता की कसौटी माना है। मनुष्य अपने चारित्रिक गुणों से ही देवत्व अथवा असुरत्व को प्राप्त करता है। चरित्र का पूर्णविकास मर्यादा पुरुषोत्तम राम में दृष्टिगोचर होता है। रामायण में मानवता का आदर्श प्रतिपादित करने वाले वाल्मीकि भारतीय संस्कृति के संस्कारक मनीषी है। उनके इस अमर ग्रंथ में मानवता के लिए चिरंतन संदेश है। उनकी वाणी में सनातन आदर्शों की परिणति है और उनके स्वरों में मानव संस्कृति का मधुर संगीत भरा है। महर्षि ने रामायण रच कर आदर्शों का प्रकाश विकीर्ण कर मानवता को लोक कल्याण के पथ पर प्रसस्त किया है। अमर कार्य के रूप में वाल्मीकि कृत 'रामायण' अनायास ही हमारे श्रुति–पटल पर अंकित हो जाती है,जो भारतीय संस्कृति की अक्षय धरोहर और मानवता के आदर्शों की मनोरम मंजूषा के रूप में राम कथा की गूँज को सर्वत्र फैलाते हुई उस भविष्यवाणी को अक्षरशः सत्य सिद्‌ध कर रही है–

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद्रामायणकथालोकेषु प्रचरिष्यति।।
यावद्रामायणकथात्वत्कृता प्रचरिष्यति।
तावदूर्ध्वमधश्च त्वम्मल्लोकेषु निवत्स्यसि।।
(श्रीवाल्मीकि रामायण 1.2.36–37)

ब्रह्मा जी ने श्रीवाल्मीकि मुनि को यह वरदान दिया कि जब तक इस धराधाम पर पहाड़ और नदियाँ रहेंगी, तब तक इस लोक में रामायण की कथा का प्रचार रहेगा। जब तक तुम्हारी रची हुई रामायण की कथा का लोकों (और अलोकों अर्थात् वैकुंठ, साकेत इत्यादि नित्य विभूति) में प्रचार रहेगा, तब तक तुम (तुम्हारा यश भी) मेरे बनाए हुए लोकों में और उनके भी उर्ध्व लोक (वैकुंठ, साकेत) में निवास करोगे (स्थिर रहेगा)।

'रामायण' वह कल्पवृक्ष है जिसके वाचन से सकल मनोकामनाओं की पूर्ति हो जाती है। इस कल्पवृक्ष का मूल है बालकांड। ऊपर का भाग अयोध्याकांड है। अरण्यकांड इस कल्पवृक्ष की शाखाएँ है। किस्किंधाकांड इस वृक्ष के पत्ते एवं सुंदरकांड पुष्प तथा युद्‌धकांड इस कल्पवृक्ष का मीठा फल है। यहाँ श्रीराम ने राक्षसों का वध कर सीता का उद्‌धार किया। वैसे ही उत्तरकांड में ऊँचे विचार व चिंतन का भंडार है, अतः यह रामायण का मस्तिष्क है। गोस्वामी तुलसीदास ने पूरी रामायण को निचोड़ कर इस उत्तरकांड जैसे पात्र में संगृहीत व सुरक्षित रखा है।

मूल्य भारतीय मानसिकता का अभिन्न अंग है। रामायण मानवीय मूल्यों का महत्व सिखाती है तथा लोगों को मूल्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षित करती है और यह व्यक्ति को सत्य, कर्तव्य, धर्म, प्रेम, अहिंसा, शांति आदि को पहचानने के लिए सक्षम बनाती है जो वर्तमान समाज के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। भारत के पास रामायण के सार्वभौमिक ज्ञान के माध्यम से समय की प्रवृत्ति को बदलने के लिए प्राचीन उपकरण मौजूद हैं। सामासिकतापूर्ण विश्व के आदर्शों को सदियों पुरानी कहावत 'वसुधैव कुटुम्बकम' में व्यक्त किया गया है, संपूर्ण विश्व हमारा परिवार है। कवि वाल्मीकि ने हिंदू परिवार की संरचना की ताकत और कमजोरी को पूरी तरह से उजागर किया है। आर्य परिवार की दो प्रमुख विशेषताएँ– इसकी संयुक्त संरचना और पितृसत्तात्मक संगठन रामायण के समय में अक्षुण्ण पाया जाता है। परिवार की ताकत स्नेह–बंधन है जो सदस्यों को एक साथ रखती है। यह बंधन वास्तव में, परिवार–संस्था की उत्पत्ति है। महाकाव्य रामायण में भाईचारे की अवधारणा अनूठी है। रामायण में अयोध्या, किष्किंधा और लंका से संबंधित तीन

परिवारों को दर्शाया गया है। इन सभी परिवारों में भाईचारे की अवधारणा को अलग–अलग रूपों में देखा जा सकता है। राम अपने सभी भाइयों से प्रेम करते थे। लक्ष्मण राम की आत्मा है। सीता कहती हैं कि लक्ष्मण राम को स्वयं से अधिक प्रिय हैं। राम भरत को कुलीन कहते हैं और शत्रुघ्न के प्रति स्नेही हैं। संपूर्ण रामायण महज एक धार्मिक व्याख्यान नहीं है वरन् मानवीय मूल्यों पर आधारित है। कौशल्या–नंदन सारे विश्व को तृप्ति दिलाएँगे,धरती का पोषण होगा, संसार सुख–चैन से रहेगा–उसी उद्देश्य से महर्षि वशिष्ठ ने उनका नामकरण किया था 'राम'। 'भरत' नाम में सार्थकता है। भरत यानी जिससे शांति व तृप्ति मिलती है। कैकयी–नंदन भरत की भाँति श्रीमदभागवत का जड़ भरत तथा शकुंतला–पुत्र भरत सभी ने अपनी जगह पर भारत को गौरव दिलाया है। सुमित्रा–नंदन लक्ष्मण श्रीराम के अनुयायी हैं, समस्त सद्गुणों के आधार हैं, वैसे ही शत्रुघ्न, शत्रु जयी व विकारशून्य हैं। रामायण के ये तीन भाइयों ने मनुष्यों के तीन शत्रुओं काम–क्रोध–मोह से संग्राम किया है, ताड़का, सूर्पणखा एवं मंथरा–क्रोध, काम व लोभ की प्रतीक हैं। राम ने ताड़का को मारा। लक्ष्मण ने मायावी कामुक तथा व्यभिचारी सूर्पणखा की नाक काट कर उपयुक्त दंड दिया और शत्रुघ्न ने गृह–शत्रु मंथरा के विनाश के लिए प्रयास किया था। काम व क्रोध को नियंत्रण करना या विनष्ट करना आसान है परंतु अपने भीतर स्थित लोभ अथवा मोह रूपी शत्रु को मारना बड़ा कठिन है। इसी तरह त्याग पर भाषण देना सहज है पर इसका जीवन में निर्वाह करना अत्यंत कठिन काम है। परंतु श्रीराम ने अपने प्रत्येक कर्मों से इसे प्रामाणिक करके दिखाया है।

रामायण के पन्नों में देशभक्ति की भावना का सशक्त चित्रण हुआ है। देशभक्ति और राष्ट्रवाद की भावना केंद्रीय चरित्र राम के इर्द–गिर्द कई प्रकरणों में प्राप्त होती है। अयोध्या में भगवान राम और उनके तीन भाइयों की दुनिया, बंदरों की दुनिया यानी किष्किंधा और लंका के राक्षस राजा रावण की दुनिया– जैसे कम से कम तीन उदाहरणों पर प्रकाश डाला जा सकता है। हमारी भारतीय संस्कृति और मान्यता इन दो ठोस स्तंभों पर टिकी है। हम सब एक ही धरती पर रहते हैं। वही आकाश हम सब के ऊपर है। हम एक ही हवा में साँस लेते हैं और वही पानी पीते हैं। दुर्भाग्य से, लोग एकता के सिद्धांत की अनदेखी करते हुए बहुलता की कल्पना करते हैं। रामायण अनेकता में एकता के सिद्धांत पर केंद्रित है। आज हमें अनेकता में एकता और इस एकता के पीछे की दिव्यता को देखने की जरूरत है। अहिंसा का गुण सभी धर्मों का सार है जिसे प्रसिद्ध कहावत 'अहिंसा परमोधर्म' के माध्यम से व्यक्त किया गया है। महान ऋषि वाल्मीकि द्वारा प्रसिद्ध श्लोक 'माँ निषाद प्रतिष्ठा...' का उच्चारण हिंसा के विरोध के माध्यम से उच्च नैतिक व्यवस्था को प्रकट करता है।

भारत में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ सभी प्रकार के धर्मों के लिए सम्मान रूप में लिया जा सकता है। गांधी जी ने इसी की वकालत की थी, दुर्भाग्य से लोग इसे गंभीरता से नहीं लेते। धर्मनिरपेक्षता के दो पहलू हैं– 'सर्व धर्म समभाव' का सकारात्मक पहलू (सभी धर्मों को समान मानना) और नकारात्मक पहलू 'धर्मनिरपेक्षता' (सभी धर्मों से अलगाव)। भारत दोनों पहलुओं का अनुसरण करता है। लेकिन गांधी जी के लिए धर्मनिरपेक्षता की उनकी अवधारणा 'सर्वधर्मसमभाव' पर आधारित है। गांधी जी के अनुसार रामायण केवल हिंदुओं से संबंधित नहीं है। रामायण में निहित कर्तव्य, सत्य, भाईचारे आदि गुणों पर विश्व के सभी धर्मों ने समान रूप से बल दिया है। इस प्रकार गांधी जी के लिए रामायण की एक सार्वभौमिक अपील थी और एक व्यावहारिक मूल्य भी। लोकतंत्र आधुनिक समाज द्वारा विकसित सरकार की नई व्यवस्था है जो सार्वभौमिक रूप से लोकप्रिय है।

रामायण त्रेता युग की कथा होने पर भी आधुनिक गणतंत्र के मूल्यों को उसमें देखा जा सकता है। श्रीराम राजा होते हुए भी एक राजतंत्र राष्ट्र में जनतंत्र को सम्मान देते थे। जाति, वर्ण, गोत्र नियमों से ऊपर उठकर एक राजा किस तरह जनमत को सम्मान देता है, रामायण के राम राज्य–सिद्धांत में पाया जा सकता है। प्रशासन में प्रजाओं की हिस्सेदारी, मंत्री परिषद में जनमत को सम्मान देना, राजा की नियुक्ति में जनता की सहायता आदि जनतंत्र की विशेषताएँ राम राज्य में पाई जाती हैं। सीता वनवास व शंबुक–बध का प्रसंग उसके उदाहरण हैं। यहाँ आकर एकतंत्र जनतंत्र से भी आगे बढ़ जाता है। श्रीराम ने अपने राज्य में जनता के समर्थन पर आधारित लोकतांत्रिक सरकार का एक अनुकरणीय और आदर्श रूप स्थापित किया, जिसमें वर्ग और पंथ का कोई भेद नहीं था। 'महाकाव्य' का गहन अध्ययन न केवल उच्च स्तर की सभ्यता को प्रतिबिंबित करेगा, बल्कि अयोध्या राज्य में प्रचलित सार्थक प्रशासनिक व्यवस्था को भी प्रस्तुत करेगा। अयोध्या में प्रशासनिक व्यवस्था लोगों को अधिकतम सुख प्रदान करने के लिए बनाई गई थी। राजा धार्मिक थे और पूरी तरह से अपनी प्रजा के कल्याण के लिए चिंतित रहते थे। राजा को आठ मंत्रियों वाले परिषद द्वारा सहायता प्रदान की जाती थी जो कार्यकारी परिषद थी और प्रशासन उसके परामर्ष से किया जाता था। राजा की आठ ऋषियों की एक परिषद द्वारा सलाह और देख–रेख की जाती थी, जिनकी एकमात्र संपत्ति अनासक्ति (वैराग्य) और ज्ञान थी। ऋषियों ने उचित समय पर राजा को नियंत्रित भी किया। सभी मामलों में ब्रह्मांड के स्वामी (धर्म) की नैतिक संहिता सर्वोच्च थी। रामायण में राज्य के सप्तांग व्यवस्था का निदर्शन प्राप्त होता है, जिसमें राज्यांगो के विषय में विस्तृत विचार–विमर्ष किया गया है।

अप्रमंतो बल कोशे दुर्ग जनपदे तथा,
भावेथा गृहं राज्या हि दुरार्क्षतम मातम।
कोशश्च मित्रान्यात्मा भूमिय समवेतानी सर्वाणि
रतराज्यमहद्श्नुते।

(वाल्मीकि रामायण 4/24/1–2)

इसी प्रकार अयोध्याकांड के एक स्थल पर यह उल्लेख किया गया है कि धर्मानुसार प्रजा का पालन करने वाले नीतिज्ञ और शासन दंडधारी को स्वर्ग की प्राप्ति होती है–

राजा तू धर्मेण हि पालयित्वा महामति दण्डधरः
प्रजानाम।
अनाप्य कुत्सानाम वसुधाम यथावादितश्चयुतः
स्वर्गुपेती विद्वान्।।

(वा.रा. 2–101–1)

'रामायण' के चरित्रों, प्रसंगों और घटना क्रम से लगता है कि इसकी रचना समाज निर्माण का एक आदर्श प्रस्तुत करने के उद्देश्य से हुई है। परशुराम संवाद ब्राह्मण के वर्चस्व को झुकाकर क्षत्रियों के वर्चस्व की स्थापना का प्रतीक है। शिव–धनुष जैसी एक असाधारण वस्तु को तोड़ने पर भी राम के मन में पराक्रम के अहंकार का संकेत मात्र भी नहीं है। श्रीराम ने परशुराम के दुर्वचनों से विचलित न होकर एक प्रबुद्ध विद्वान व युगस्रष्टा के प्रति जो सम्मान प्रदर्शन करना चाहिए, इसका निर्वहन किया है। क्रोध से उद्वेलित भाई लक्ष्मण को शांत करा कर परशुराम के प्रत्येक प्रश्न का यथार्थ उत्तर राम ने दिया है। विवाह जैसे पवित्र अवसर पर यदि राम समुचित विचार से काम न लेते तो स्थिति भयावह हो सकती थी। वाल्मीकि ने यहाँ राम के चरित्र को अतिमानवीय बना दिया है। शिव–धनुष राम की शक्ति, सीता की अनुरक्ति, परशुराम की भक्ति, जनक की प्रतिज्ञा, विश्वामित्र की गरिमा तथा रावण की पराजय का प्रतीक है।

तात्विक दृष्टि से रामायण के चरित्र अत्यंत उच्चकोटि के हैं। राम वनवास के लिए निषादराज जब कैकेयी को दोषी ठहराता है तब राम संसार के सुख–दुख का तत्व–ज्ञान लक्ष्मण को समझाते हैं। राम कहते हैं, किसी की निंदा मत करो क्योंकि

कोई वस्तु या व्यक्ति किसी के सुख–दुख के कारण नहीं बनते। सुख–दुख तो अपने अंतर की बात है। बाह्य वस्तुओं में सुख–दुख नहीं होता। श्रीराम के ये विचार सामाजिक परिवर्तन के लिए बहुत ही उपयोगी हैं। राम वनवास के माध्यम से दर्शाया गया है कि होने वाले राजा को अपने देश के भूगोल और ग्राम जंगलों का ज्ञान हो और वह आदिवासियों सहित सभी मेहनती वर्ग से समरसता स्थापित करे। अरण्यकांड में श्रीराम ने भारद्वाज, वाल्मीकि और अगस्त्य ये तीन महान ऋषियों से तीन वर माँगे थे– महर्षि भारद्वाज से रास्ता, महर्षि वाल्मीकि से वास–स्थल तथा महर्षि अगस्त्य से राक्षसों के वध का मंत्र। महर्षि भारद्वाज का आश्रम तीन नदियों का संगम स्थल प्रयाग था – जो ज्ञान, भक्ति व कर्म के संगम पर निवास करते हैं उन्हें जिज्ञासा करने पर उपयुक्त मार्ग दर्शन मिल सकता है। समाज में नए पंथ की सृष्टि करना आसान है पर उस पर चलते रहना बड़ा कठिन होता है। वैदिक मार्ग पर चलने के लिए हमारी संस्कृति हमें निर्देश करती है। गोस्वामी तुलसीदास ने चित्रकूट आश्रम का वर्णन बड़े ही दार्शनिक ढंग से किया है। चित्त को समझना चित्रकूट है। श्रीराम का इस अंचल में आना समाज के दलितों तथा पतितों के उद्धार का था। अरण्यकांड में भी चरित्र की प्रमुख भूमिका रही है। राम स्वयं अपने हाथों से फूलों की माला बनाकर सीता को भेंट करते हैं अर्थात् राम ने यहाँ सीता के चरित्र को प्रमुखता दी है। चित्रकूट में जंगली फल–मूल से गुजारा करते हुए भी आपस में स्नेह भरे व्यवहार को कायम रखते हैं। यही भारतीय संस्कृति में सच्चा दाम्पत्य जीवन है। पति–पत्नी का सहबंधन आपसी सम्मान व विश्वास से चलता है। पत्नी को पति में परमेश्वर के दर्शन होते हैं तो पति को भी पत्नी में देवी–दर्शन होने चाहिए। मानव का शरीर पंच तत्वों से बना है। इसी तरह पंचवटी में पंचतत्वों का मेल है। इस पंचवटी में राम, लक्ष्मण व सीता के आगमन से यह पल्लवित, पुष्पित व फलित होती है अर्थात् ज्ञान, भक्ति और वैराग्य– ये तीनों यदि जीवन में आ जाए तो हमारा जीवन धन्य हो जाएगा। सूर्पणखा माया की प्रतीक है। यह प्रत्येक के जीवन में आती है। सबको आकर्षित भी करना चाहती है पर इससे बचना चाहिए। राम ने टेढ़ी आँख से भी उसकी ओर नहीं देखा, अपनी दृष्टि को शुद्ध रखा क्योंकि साधना की दृष्टि महत्वपूर्ण होती है।

भातृभाव, निर्लोभ, सत्यनिष्ट जैसे महनीय गुणों के आगार भरत का चरित्र रामायण में अपने में एक आदर्श है। राम, लक्ष्मण,भरत तथा शत्रुघ्न तीन अलग–अलग माताओं के पुत्र होकर भी सदैव साथ–साथ रहते हैं। सत्य, पराक्रम एवं समस्त सद्गुणों से युक्त भरत साक्षात् भगवान विष्णु के स्वरूपभूत पायस के चतुर्थांश से भी न्यून भाग से प्रकट हुए थे। आंतरिक व बाह्य दोनों पक्षों से भरत का व्यक्तित्व महनीय है। भरत के मधुर भाव, शत्रुओं पर विजय प्राप्ति करने वाले पराक्रमी पुरुष सिंह, मातंग–सकाश, विशाल आकार वाले थे। अत्यधिक बुद्धिमान एवं सूर्यमंडल में निश्चल एवं स्थिर, प्रभा सदृश स्थिर बृद्धि वाले थे। उनकी बुद्धि सदैव ही दान और यज्ञ कर्म में लगी रहती थी। अवस्था में छोटे होने पर भी ज्ञान में बड़े हैं। पराक्रमोचित गुणों से संपन्न होने पर भी वे स्वभाव से बड़े कोमल हैं। राम उन्हें स्वयं से भी अधिक राजोचित गुणों से युक्त मानते हैं। भरत संपूर्ण स्त्री जाति का सम्मान करते हैं। यही कारण है कि यह ज्ञात होने पर कि सब कारणों का मूल मंथरा है, शत्रुघ्न के द्वारा इस पर क्रोध प्रकट करने पर भरत यह कहकर कि –'अयोध्या सर्वभूतानां प्रमदा क्षम्यतमिति' अर्थात् स्त्रियाँ सभी प्राणियों के लिए अवध्य होती हैं, शांत करा देते हैं। भरत का चरित्र उदात्त है। उनमें राज्य के प्रति लोभ बिल्कुल नहीं था। श्रीराम के चरणों में मस्तक रखकर अपना राज्य स्वीकार करने के लिए बहुत ही आग्रह किया और स्वयं को उनका शिष्य एवं दास कहकर उनसे

अपनी कृपा सदैव रखने के लिए कहा कि यहाँ हमेशा शाश्स्वत धर्म का पालन होता आया है कि ज्येष्ठ पुत्र के रहते छोटा पुत्र राजा नहीं हो सकता। उनके स्वभाव में विनयशील, क्षमाशील, गुरुजनों का सत्कार करने वाले सत्यप्रतिज्ञ एवं समस्त कल्याणकारी गुणों का आगार पाया जाता है।

हनुमान जी के चरित्र के बिना रामायण अधूरी है क्योंकि हनुमान ही रामायण के आधार स्तंभ हैं। वाल्मीकि ने भी बड़ा ऊँचा स्थान दिया है। उन्होंने प्रभु की प्रत्येक आज्ञा का निष्ठापूर्वक पालन किया है। सागर लंघन, गंधमार्दन लाना तथा लंका दहन आदि कठिन कार्य किए। श्रीराम के आज्ञा– वाहक, कर्मकुशल तथा सच्चे सेवक के रूप में हनुमान जाने जाते हैं। अपने जीवन को दाँव पर लगाकर हर–एक कार्य को संपन्न किया है। कर्मप्रवणता, निष्ठापरकता, सहनषीलता आदि गुणों से युक्त निष्ठावान सेवक की आज भी समाज को आवश्यकता है। चरित्र की दृष्टि से रामायण का प्रत्येक पात्र अपने में परिपूर्ण हैं। मुख्य पात्र श्रीराम से संबंध प्रत्येक पात्र– समुद्र, वशिष्ठ, विश्वामित्र, दशरथ, सुमंत्र, भारद्वाज, अगस्त्य, अत्रि, सुग्रीव, हनुमान, अंगद, जंबवान, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, सीता इत्यादि सभी अपने चारित्रिक गुणों के कारण आदर्श एवं यशस्वी माने जाते हैं। आज के आतंकवादी और अलगाववादी ताकतों सर्वोपरी देशवासियों को हनुमान, जटायु, जंबवान जैसे चरित्रों से सबक लेना चाहिए।

प्रत्येक राष्ट्र का आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास उसकी राष्ट्रीय एकता में छिपा रहता है। भावनात्मक एकता के अभाव में राष्ट्र की दुर्गति होती है। राष्ट्र की एकता का मेरुदंड उसकी संस्कृति होती है। भौतिक पराजय को तो निष्ठा, साहस और पराक्रम से विजय में परिवर्तित किया जा सकता है पर संस्कृति के नष्ट हो जाने पर उसके उद्धार की कोई आषा नहीं रहती। इसलिए किसी धर्म, जाति, वर्ग या संप्रदाय की अवमानना न करके रामायण में राष्ट्र को भीतरी टूटन से बचाने का अभूतपूर्व आत्मविश्वास का संयोजन किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर राजनीति की एक बड़ी विडंबना यह है कि उसने अपने निहित स्वार्थ के कारण एकता के बजाय भेद के बीज बोए और राष्ट्रीय जीवन में नए प्रकार के वर्ग संघर्ष को जन्म दिया जिसका आधार अर्थ न होकर धर्म, मजहब, संप्रदाय आदि रहे। रामायण के आदर्श को अपना कर सत्तालोलुपता, ईर्ष्या, द्वेष, संघर्ष, अशांति, हिंसा आदि पर विजय प्राप्त की जा सकती है और 'वेलफेयर स्टेट' की स्थापना की जा सकती है। किसी देश की सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना का मूलाधार शिक्षा है। सांस्कृतिक विकास के लिए यदि रामायण युगीन शिक्षा प्रणाली पर विचार करें तो पाएगें कि उस समय आश्रम ही शिक्षा के केंद्र थे। ये आश्रम देश के कोने–कोने में स्थित थे। 'रामायण' में शृंगऋषि आश्रम, विश्वामित्र आश्रम, अगस्त्य आश्रम, गौतम आश्रम आदि आश्रमों का उल्लेख किया गया है। ये आश्रम हमारी प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के प्रमाण हैं। यहाँ सबको समान रूप से शिक्षा दी जाती थी, आज की तरह दोहरी शिक्षा व्यवस्था नहीं थी।

रामायण में संयुक्त परिवार प्रथा का समर्थन किया गया है। राम–सीता के साथ भरत–मांडवी, लक्ष्मण–उर्मिला एवं शत्रुघ्न–श्रुतिकीर्ति के सौहार्दमय आदर्श दाम्पत्य जीवन रामायण में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त बहुओं का सासों के साथ आत्मिक लगाव का सजीव चित्रण हुआ है और संयुक्त परिवार का आदर्श प्रस्तुत कर छिन्न–भिन्न होती संयुक्त परिवार व्यवस्था को सम्मान देने का प्रयास किया गया है। एकता के आदर्श को व्यक्ति अपने परिवार से सीखता है और उसका पालन भी करता है। जो व्यक्ति परिवार में नियमों का पालन नहीं करता, वह समाज या देश के नियमों को भी नहीं अपना सकेगा। जो व्यक्ति एक परिवार को एक नहीं रख सकेगा, वह देश को एक नहीं रख सकेगा। राम संयुक्त परिवार के स्नेही सदस्य के

प्रतिनिधि हैं। रामायण के इस संयुक्त परिवार व्यवस्था को अपनाकर सामाजिक कई समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

राम जैसे आदर्श पात्रों के माध्यम से दया, प्रेम, ममता, त्याग, क्षमा जैसे भाव जगाकर लोक मर्यादा की रक्षा की गई है। प्रजापालक राम के आचरण का दिव्य प्रभाव अनुभूत होता है, अहिल्या, शवरी, गीध, केवट, विभीषण जैसे समाज के तिरस्कृत और उपेक्षित प्राणियों को राम ने ऊपर उठाया है। राम राज्य में शूद्र तो थे किंतु आज की तरह उपेक्षित नहीं थे, शबरी शूद्रा थी किंतु राम ने उसके घर जाकर उसके हाथ से बेर ग्रहणकर खाने में कोई संकोच नहीं किया। निषाद भी शूद्र था किंतु उसकी सेवा तथा प्रेम से प्रभावित होकर उसके हाथ से कंदमूल ग्रहण किया। चित्रकूट में भरत और वशिष्ठ ने भी निषादराज को गले लगाया था।

रामायण के चरित्रों, प्रसंगों और घटनाक्रम से लगता है कि इसकी रचना समाज निर्माण का एक आदर्श प्रस्तुत करने के उद्देश्य से हुई है। दषरथ से चली आई बहुपत्नी प्रथा को राम के चरित्र में तोड़ा गया है, किष्किंधा में अनुज की पत्नी को अपनी पत्नी बनाने की भी प्रथा को राम समाप्त करते हैं। रामायण के युग में सीता का अर्थ कृषि था। प्रकृतिवादी राम का विवाह सीता से होता है। वन में वे व्यापारवादी प्रवृत्ति यानी सोने के लालच में सीता से दूर चले जाते हैं। मौका पाकर वणिकवादी रावण सीता का अपहरण कर लेता है। मध्यकालीन यूरोप में फिजियोक्राट (प्रकृतिवादी) और मार्केटलिस्ट (वणिकवादी) विचारधाराओं का संघर्ष अर्थशास्त्र के इतिहास में मिलता है। भारत में यह संघर्ष उससे बहुत पहले आरंभ हो चुका था। सोने की लंका और रावण वणिकवादी प्रवृति के प्रतीक हैं। वे तत्कालीन भौतिक प्रगति की उच्चतम कल्पना का प्रतिनिधित्व करते हैं।

भारत के सांस्कृतिक विकास का रथ इस कथा की धुरी पर निरंतर आगे बढ़ा है। यूनान में ईसा पूर्व छठी सदी में हुए होमर के महाकाव्य 'इलियड' के अनेक चरित्र और–घटनाक्रम रामायण से मिलते–जुलते हैं। रामायण से प्रेरणा लेकर भवभूति ने 'उत्तर रामचरित' लिखा जो 'रामायण' के उत्तरकांड का नाट्य रूपांतर है, इसके पश्चात् लिखा गया भास का 'प्रतिभा नाटकम' भी राम कथा पर आधारित है। कालिदास के रघुवंश' के एक अंक में भी राम कथा का अंश आया है। राम कथा में एक कसी हुई कहानी है। इसमें भरपूर नाटकीयता भी है। इन गुणों ने साहित्यकारों को नाटक लिखने के लिए प्रेरित किया है। राम कथा को जनमानस में लोकप्रियता प्रदान करने में मंच की अनन्य भूमिका रही है। रामायण विविध कहानियों का आगार है, जिसमें मानवीय आदर्श, हमारी संस्कृति व परंपरा का भरपूर पालन किया गया है। राम कथा पर आधारित विविध कहानियों से हमारे बच्चे भरपूर आनंद लेते हैं। 'रामायण' के चौबीस हजार श्लोकों में बँधी हुई कहानियों से बच्चों को इन मूल्यों से अवगत कराया जा सकता है। राष्ट्रीय जनक महात्मा गांधी पर रामायण का गहरा प्रभाव पड़ा है। उन्होंने रामायण के सिद्धांतों का अनुकरण व पालन अपने जीवन में किया है। उनके सत्य, अहिंसा, अछूतोद्धार, दया तथा त्याग के प्रयोगों में राम के गुणों का अनुसरण था। इन्हीं सारे गुणों से बापू युगपुरुष से देवपुरुष बन जाते हैं। इसीप्रकार रामायण के आदर्शों व सिद्धांतों को अपनाकर सामाजिक परिवर्तन किया जा सकता है। धार्मिक दृष्टि से रामायण को महाभारत की अपेक्षा अधिक प्रशस्त माना गया है। गायत्री मंत्र के चौबीस अक्षरों का संघटन इसके चौबीस सहस्र श्लोकों में किया गया है। स्कंदपुराण के उत्तर खंड के पाँचवें अध्याय में रामायण का धार्मिक महत्व निरूपित किया गया है।

रामायणमादिकाव्यं सर्ववेदार्थसम्मतं,
सर्वापापहरं पुण्यं सर्वदुखनिबर्हणम।

गुप्तकाल के अंत तक राम कथानायक मानव थे। देवता या ईश्वर के रूप में मान्यता उन्हें उस

समय तक नहीं मिली थी। विष्णु के दस अवतारों की धारणा गुप्त सम्राट के काल यानी छठी सदी में विकसित हुई। दस अवतार की सबसे पहली मूर्ति ललितपुर के पास देवगढ़ की दशावतार मंदिर में पाई जाती है। मूर्ति के रूप में राम का सर्वप्रथम अंकन इसी में मिलता है अर्थात् यहाँ तक आते–आते राम के चरित्र का दैवीकरण हो गया था। उनकी पूजा शुरू हो चुकी थी। सनातन धर्म में राम के प्रति पहली भक्ति भावना ईसा की प्रथम सहस्राब्दी के अंत तक अपने शैशव में थी। उसे लोकप्रियता का पहला उल्लेखनीय संबल दक्षिण भारत में रामानुज के रूप में मिला। अगला सोपान उत्तर भारत में रामानंद बनें। उनकी शिष्य परंपरा में हुए कवियों ने भक्तिकाल का निर्माण किया और गोस्वामी तुलसीदास जैसा समर्थ कवि मिला।

राम कथा के साथ रामलीला जुड़ी हुई है। तुलसी ने 'रामचरितमानस' की रचना अपनी रामलीला को कथासूत्र और संवादों के उद्देश्य से की थी। उस समय तक रामलीला लोकप्रिय लोकमंच के रूप में स्थापित हो चुकी थी। सम्राट अकबर ने इलाहाबाद में रामलीला कराने के उद्देश्य से वहाँ के महंत को जमीन दी थी। 'मानस' की रचना संबत 1631 यानी सन् 1574 में पूरी हुई। इसी वर्ष अकबर ने राम और सीता की छवियों का सिक्का भी जारी किया था। आज रामलीला का मंच भारत का सबसे बड़ा लोकमंच है। संगीत और नाटक परस्पर पूरक हैं। अतः राम कथा पर आधारित काव्य रचनाओं के साथ संगीत भी जुड़ा हुआ है। भजन, कीर्तन व आरतियों के जरिए अनगिनत शैलियों का और वाद्ययंत्रों का विकास हुआ है।

राम कथा को चित्रकला का विषय बनने का आरंभ रामायण के रचनाकाल से हो चुका था। छापाखाना प्रचलित हो जाने पर चित्रों का विकास आगे बढ़ा है। राम कथा को चित्रात्मक रूप देने का श्रेय आधुनिक युग में चित्रकार राजा रविवर्मा को जाता है। ए.वी. पंडित ने भी राम कथा पर चित्र बनाए हैं। गुजरात में अंजड के एक अंग्रेज अफसर ने अपने घर की दीवारों पर मुसलिम कलाकारों से राम कथा की पेंटिंग्स बनवाई थी। राम कथा के लोकप्रिय चित्रों में राम दरबार, धनुष यज्ञ, बलि–वध, अशोक–वाटिका में सीता, लंका दहन, अश्वमेध का घोड़ा रोकते लव–कुष प्रसंग की अनेक शैलियाँ प्राप्त होती हैं। सर्वाधिक प्रचलित हनुमान के विविध चित्र हैं। उनमें हनुमान को द्रोणगिरि पर्वत लाते, सीना चीरकर हृदय में 'राम' लिखा हुआ तथा राम–लक्ष्मण को कंधे पर ढोने के चित्र प्रमुख हैं। राम कथा का चित्रण लोक शैलियों के चित्रकारों के हाथों भी हो रहा है। मिथिला का विख्यात मधुबनी पेंटिंग्स का केंद्रीय विषय राम कथा है। वास्तुकला की दृष्टि से राम मंदिर अधिकतर सादे हैं। राम मंदिर की संख्या अपेक्षाकृत कम है पर हनुमान के मंदिरों की संख्या इतनी अधिक है, उतने संभवतः किसी अन्य देवी–देवता के मंदिर की नहीं है।

वाल्मीकि ने उपरोक्त चर्चाओं के अलावा महाकाव्य में आयुर्वेदिक चिकित्सा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में कई जानकारियाँ दी हैं। महाकाव्य में वर्णित जड़ी–बूटियों और पौधों को उनके चिकित्सा–गुणों से संबंधित वैज्ञानिक मूल्यांकन की वर्तमान प्रवृत्ति से सत्यापित किया गया है। महाकाव्य में प्रयुक्त कुछ छंदों में पौधों, जड़ी–बूटियों, शल्य चिकित्सा उपकरणों आदि से संबंधित चिकित्सा विज्ञान की दक्षताएँ हैं। महाकाव्य में दवाओं की सौ से अधिक प्रजातियाँ पाई जाती हैं और इन जड़ी–बूटियों में विभिन्न रोगों के औषधीय गुण होते हैं। रामायण महाकाव्य पर्यावरण जागरूकता के बारे में प्रचुर जानकारी देता है। वैश्विक कल्याण के लिए पारिस्थितिक संतुलन प्राप्त करने हेतु 'महाकाव्य' का योगदान काफी सराहनीय है। भूगोल का विशद वर्णन हमें इस खोज में आवश्यक सामग्री प्रदान करता है। सामाजिक–राजनीतिक प्रासंगिकता के अलावा पौराणिक कथाओं, इतिहास, भूगोल, पुरातत्व, नृविज्ञान और विज्ञान की अनेकों सामग्रियाँ प्राप्त

होती हैं। राम–सेतु का भारतीय संस्कृति का इससे गहरा नाता है। यह 48 किमी. लंबा पुल जो भारत के रामेश्वरम को श्रीलंका के मन्नार द्वीप से जोड़ता है। इसका विशद वर्णन रामायण में मिलता है। महाकाव्य के अनुसार रामसेतु का निर्माण 21 प्रकार की लकड़ियों और हल्के पत्थरों (6/22/54–60) से किया गया था। यह राम की सेना में सबसे महान सिविल अभियंता नल की विज्ञता का परिचायक था, और इसे पूरा करने में पाँच दिन लगे थे। अमरीकी अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन नासा ने इसकी उम्र करीब 17 लाख 50 हजार साल आँकी है। लेकिन वर्तमान में मुख्य आकर्षण सेतु नहीं बल्कि उसके भीतर विकिरण करने वाले तत्वों का अस्तित्व है। राम–सेतु के पास थोरियम जमा होने की जानकारी रामायण में इसके 9 श्लोकों में परोक्ष रूप से वर्णित है। (5/01/91, 99, 101, 102,104,105,106,137 और 139)।

हिंदू ही नहीं कई मुसलिम साहित्यकार व मनीषियों की कलम से राम कथा की इंद्रधनुषी छटा देखने को मिलती है। यहाँ तक कि धार्मिक कट्टरता के केंद्रबिंदु रहे बादशाह औरंगजेब का भाई दाराशिकोह भी सीता–चरित्र से बहुत प्रभावित था और यह भी कहा है– "तनेश रा गैरहन उरियां न दीदम। यूँ जन अंदर तनश तन जान न दीदा"। अर्थात् – ए सीता, तेरे शरीर पर जो वस्त्र है वह भी तेरे पवित्र शरीर को नहीं देख सकते जैसे आत्मा शरीर के भीतर है पर शरीर उसे नहीं देख पाता। 'रामायण' की लोकप्रियता के प्रमाण इसके फारसी अनुवाद हैं। सर्वप्रथम फारसी में रामायण का अनुवाद सन् 1534 में 'रामायन फैजी', 1589 में 'वदीयूनी का रामायण' और बाद में जहाँगीर के शासन काल सन् 1600 में 'रामायण मनीषी' शीर्षक से हुआ था। इसके अलावा दर्जनों मुसलिम कवियों ने रामायण से प्रभावित होकर राम कथाएँ लिखी हैं। इसके अलावा राम कथा का प्रथम वर्णन बौद्ध साहित्य 'दशरथ जातक' में प्राप्त होता है। इतना ही नहीं हिंदू परिवारों में बच्चे–बच्चियों के अधिकतर नाम राम कथा के पात्रों और चरित्रों के नाम पर रखे जाते हैं। आज भी लोग अभिवादन के लिए ‘राम–राम’, ‘जय रामजी’, ‘जय सियाराम’ आदि कहकर किया करते हैं। यहाँ तक कि भिखारी भी भीख राम के नाम पर माँगता है।

हमारी सामाजिक और सांस्कृतिक भावनाएँ और मूल्य अनादिकाल से श्रीराम और रामायण पर आधारित हैं। आजादी के ठीक सात साल बाद एक सांस्कृतिक प्रतिनिधिमंडल सोवियत रूस गया था। अधिवेशन में एक रूसी लेखक ने भारतीय प्रतिनिधिमंडल से भारत की सबसे खास बात के बारे में पूछा। लेकिन भारतीय प्रतिनिधिमंडल द्वारा दिया गया जवाब उन्हें संतुष्ट नहीं कर सका। एक उज़्बेकी लेखक ने रामायण को भारत की विशेषता बताया। रामायण भले ही एक काल्पनिक रचना हो लेकिन ऐसी कल्पना साहित्य की दुनिया में कहीं नहीं मिलेगी, उन्होंने बताया था।

रामायण ने ऐसे आदर्शों और मूल्यों की स्थापना की जिनके द्वारा हिंसा, अहंकार, शत्रुता, वर्ग संघर्ष, अन्याय, स्वार्थ आदि पर विजय प्राप्त कर कल्याणकारी राज्य की स्थापना की जा सकती है। आज बहुत से लोग रामायण पढ़ते हैं लेकिन बहुत कम लोग इसका सार समझते हैं। लोगों की रुचि केवल सूचना में होती है, परिवर्तन में नहीं। वे अपना समय किताबी और सतही ज्ञान प्राप्त करने में लगाते हैं, लेकिन व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने में असफल होते हैं। विभिन्न ग्रंथों को पढ़कर उन्हें व्यवहार में लाना चाहिए तथा उनमें निहित संदेश को ग्रहण करना चाहिए। केवल पाठ्य सूचना किसी काम की नहीं है। परिवर्तन होने पर ही बुद्धि खिलेगी। हालाँकि, हमारे समय में भी यह हमारा अनुभव है कि रामायण ने आधुनिक संचार माध्यमों के माध्यम से लोगों का ध्यान खींचा। वास्तव में, हम वर्तमान समाज में रामायण की आवश्यकता को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर

भी सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद मानव समाज को आतंकवाद, वैमनस्य, असहिष्णुता और हिंसा आदि द्वारा प्रताड़ित किया जा रहा है। इस प्रकार, यह महाकाव्य अभी भी समाज के लिए प्रासंगिक है और जब तक मानव समाज मौजूद है हमेशा रहेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राम कथा ने भारतीय संस्कृति की विकास यात्रा में बद्धमूल होकर संस्कृति की सभी विधाओं को समृद्ध किया है। यह परंपरा आज भी जारी है क्योंकि भगवान राम सर्वव्यापक व सर्वकालीक हैं। आज इक्कीसवीं सदी में भी रामायण इतनी ही प्रासंगिक व उपयोगी सिद्ध होती है जितनी उस जमाने में थी। 'रामायण' ही महान भारतीय संस्कृति की प्रतीक है। हम जब राम को प्रतिमा न समझकर प्रतीक रूप से ग्रहण करेंगे, यथार्थ में राम ज्ञान के प्रतीक हो जाएँगे, लक्ष्मण बन जाएँगे कर्म के प्रतीक, सीता भक्ति की प्रतीक और हनुमान त्याग के प्रतीक लगेंगे। ज्ञान,कर्म, भक्ति व त्याग जब हृदय में खिलने लगेंगे, जीवन सफल हो जाएगा और भारतीय सामाजिक जीवन में यथार्थ रूप में राम राज्य की स्थापना हो जाएगी। इसी पर किसी मुसलिम कवि ने ठीक ही कहा था, 'रा' का मतलब है चलें सब लोग सीधी राह पर, 'म' का मंषा है कि मंजिल से कभी गाफिल न हों।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्रीमद्वाल्मीकि रामायण, गीताप्रेस, गोरखपुर
2. श्रीमद्वाल्मीकि रामायण, क्षेमराज श्रीकृष्णदास, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1990
3. श्रीमद्वाल्मीकि रामायण, चंद्रशेखर शास्त्री, सस्ता साहित्य पुस्तक माला, बनारस सिटी, संवत, 1992
4. स्कंदपुराण, केदारखंड, महेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव, अलीगंज, लखनऊ, 2007

– प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, गवर्नमेंट विमेंस कॉलेज, संबलपुर, ओड़िशा

❑❑❑

बंगाली संस्कृति और राम कथा: एक सांस्कृतिक विमर्श

प्रो. निरंजन कुमार

'कला, कला के लिए' कला, साहित्य और संस्कृति के अध्ययन की एक प्रचलित दृष्टि रही है जिसमें साहित्य और संस्कृति को समाज और सामाजिक गतिकी से निरपेक्ष मानकर उसका विवेचन किया जाता है। लेकिन इस दृष्टि की सीमा यह है कि साहित्यिक और सांस्कृतिक विमर्श समाज और सामाजिक गतिकी से निरपेक्ष नहीं होते। विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक घटनाएँ साहित्य के सृजन और उसके विमर्श को निस्संदेह प्रभावित करते हैं। साहित्यिक और सांस्कृतिक विमर्श किस तरह से राजनीतिक विमर्श का शिकार हो सकते हैं इसका एक अच्छा उदाहरण तब मिला जब भारत से लंबे समय से बाहर रह रहे प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. अमर्त्य सेन ने कोलकाता की जादवपुर यूनिवर्सिटी में एक भाषण में कहा था कि 'जय श्रीराम' बंगाली संस्कृति से जुड़ा हुआ नहीं है। और रामनवमी पूजा का बंगाल से कोई ज्यादा संबंध है यह एक नई आयातित वस्तु है। इसी तरह एक खास विचारधारा से जुड़े बौद्धिक–सांस्कृतिक संगठनों ने रामनवमी के त्योहार पर आरोप लगाया कि बंगाल में उत्तर भारतीय संस्कृति थोपने का प्रयास हो रहा है। प्रश्न उठता है कि क्या 'राम कथा' या 'राम साहित्य' का बंगाली जीवन–संस्कृति से कोई संबंध नहीं है? व्यापक स्तर पर यह भी एक सवाल है कि क्या राम कथा केवल उत्तर भारत में ही लोकप्रिय है? एक आनुषंगिक प्रश्न यह भी है कि क्या श्रीराम केवल हिंदुओं के सांस्कृतिक पुरुष हैं। सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के बाद अयोध्या में बन रहे भव्य राम मंदिर के परिप्रेक्ष्य में इन प्रश्नों की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है।

दरअसल पश्चिम बंगाल में जिस तरह के विमर्श को खड़ा किया गया उसमें भारतीय सांस्कृतिक विरासत और हिंदू धर्म के मर्म की एक गलत व्याख्या परोसी जा रही है। यहाँ विवाद का सांस्कृतिक–भूगोल (cultural geography) बंगाल तो रहा, लेकिन विमर्श का परिप्रेक्ष्य बंगाल से बाहर निकलकर अखिल भारतीय और सार्वदेशिक हो गया है। सबसे पहले बंगाल और श्रीराम के संबंध पर ही विचार कर लिया जाए। राम की पहली या आदिकथा वाल्मीकि रामायण में मिलती है। लेकिन राम को बंगाल के बाहर का और अप्रत्यक्ष रूप से हिंदी भाषी क्षेत्र का इष्टदेव या सांस्कृतिक पुरुष बताने वालों को यह जान लेना चाहिए कि भारतीय आर्य भाषा परिवार की भाषाओं में संस्कृत–अपभ्रंश के बाद सबसे पहली पूर्ण राम कथा या रामायण बंगाल में ही रचा गया था।

बांग्ला भाषा में कृत्तिवास रामायण या कृतिबासी रामायण या 'श्रीराम पाँचाली' की रचना पंद्रहवीं शती के बंग–भाषा के आदिकवि कृत्तिवास ओझा ने की थी। यहाँ यह तथ्य भी अत्यंत महत्वपूर्ण है कि राम कथाओं में सबसे लोकप्रिय ग्रंथ गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के रचनाकाल से लगभग सौ वर्ष पूर्व ही कृत्तिवास रामायण का

आविर्भाव हो चुका था। कृत्तिवास ओझा छंद, व्याकरण, ज्योतिष, धर्म और नीतिशास्त्र के प्रकांड पंडित थे। साथ ही राम–नाम में उनकी परम आस्था थी। उनके द्वारा रचित 'कृत्तिवास रामायण' बंगाल में अत्यंत लोकप्रिय है। वहाँ बड़ी श्रद्धा और भक्ति से इसका पाठ किया जाता है। बंगाल में कृतिबासी रामायण की वही लोकप्रियता है, जो हिंदी क्षेत्रों में रामचरितमानस की है। अमरीका के मोंटाना यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर रूथ वनिता अपने एक अध्ययन में बताती हैं कि अंग्रेजों के आने के पहले संपूर्ण पूर्व–आधुनिक बंगाल में कृतिबासी रामायण सबसे अधिक लोकप्रिय पुस्तक रही है, और इक्कीसवीं सदी में भी बंगाल के हिंदुओं के घर–घर में यह मौजूद होता है।

हिंदी–गुजराती प्रदेश में रचित राम कथाओं का प्रभाव बंगाली राम कथाओं पर कितना पड़ा यह तो नहीं पता, लेकिन श्रीराम को बंगाली संस्कृति में एक बाहरी बताने वाले आलोचकों और बुद्धिजीवियों को जरूर जानना चाहिए कि कृतिबासी रामायण के कई प्रसंगों का प्रभाव अन्य भारतीय भाषाओं की राम कथाओं पर पड़ा है। वाल्मीकि रामायण से प्रभावित होते हुए भी कृतिवास ने उसे बंगाल समाज–संस्कृति की रीति–नीति, आमोद–प्रमोद और अनुष्ठान आदि के आख्यानों से सुसज्जित करके इसे बंगालवासियों की अभिरुचि के अनुरूप बना दिया है। एक उदाहरण इस प्रसंग में समीचीन होगा। जब रावण से युद्ध करते समय राम निराश हो रहे थे तब राम को शक्ति (दुर्गा) की पूजा की सलाह दी गई थी, फिर राम ने शक्ति (दुर्गा) की आराधना की और रावण पर विजय पाई। कृतिवास की यह नितांत नई और एक मौलिक उद्भावना थी, वाल्मीकि के 'आदि रामायण' से अलग 'राम की शक्तिपूजा' की इस बांग्ला कथा को बाद में अन्य भाषाओं के साहित्य में भी अपने–अपने तरीके से रचनाकारों ने चित्रित किया है। बल्कि राम द्वारा शक्ति– आराधना की इस कथा के आधार पर हिंदी में तो महाकवि निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' नामक एक प्रसिद्ध काव्य–कृति ही रच दी, जिसकी रामविलास शर्मा और नामवर सिंह सरीखे प्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारकों और साहित्यकारों तक ने भूरी–भूरी प्रशंसा की और जो संघ लोक सेवा आयोग के प्रतिष्ठित सिविल सेवा परीक्षा के पाठ्यक्रम में भी पिछले तीन दशकों से शामिल है।

यही नहीं, बंगाल के चैतन्य महाप्रभु ने मध्यकाल में ही बंगाल में 'हरे रामा–हरे कृष्णा' को गुंजायमान कर दिया था। स्वयं गुरुदेव रवींद्रनाथ श्रीराम के चरित्र से बहुत प्रभावित थे। पद्मविभूषण से सम्मानित प्रसिद्ध शिक्षाविद भबतोष दत्त अपनी पुस्तक 'रवींद्रनाथ टैगोर ऑन द रामायण एंड द महाभारत' में लिखते हैं कि "टैगोर की दृष्टि में राम कथा मनुष्य के उच्चतम आदर्श स्थापित करती है।" रवींद्रनाथ अपने नृत्य–नाटिका 'रक्त करबी' की भूमिका में, अथवा काव्य–रचना 'अहल्यार प्रति' में श्रीराम के चरित्र को आनंद, शांति और महानता का पर्याय बताते हैं। यहाँ यह जानना प्रासंगिक होगा कि यद्यपि लगभग सभी भारतीय भाषाओं में राम कथाएँ लिखी गईं, लेकिन बंगाल में इसकी लोकप्रियता का आलम यह रहा कि हिंदी के अतिरिक्त सबसे अधिक राम कथाएँ बांग्ला भाषा में ही मिलती हैं। तब, श्रीराम क्या सिर्फ उत्तर भारत के हैं?

दरअसल दुर्गा या राम या शिव को लेकर यहाँ जो वैचारिक, सांस्कृतिक अथवा सांप्रदायिक भेद की दीवार खड़ी की जा रही है उसके पीछे कई वजहें हैं। एक स्थूल और प्रत्यक्ष कारण है राजनीतिक वर्चस्व की लड़ाई जो संस्कृति के धरातल पर भी लड़ी जा रही है। दूसरा कारण है भारतीय चिंतन और दर्शन की आधी–अधूरी समझ जिसमें विभिन्न देवी–देवताओं को अलग–अलग खाँचों में बाँट कर देखा जाता है। दरअसल यह पश्चिम के एकेश्वरवादी चिंतन का प्रभाव है जो वैष्णव (विष्णु, राम या कृष्ण के आराधक), शाक्त (शक्ति या दुर्गा के उपासक) और शैव (शिव के पूजक) को अलग–अलग बल्कि एक दूसरे का विरोधी मानते हैं। जबकि तुलसीदास ने स्पष्ट लिखा है कि *शिव द्रोही मम दास कहावा, सोई नर मोहि सपनेहु नहीं भावा*, अर्थात् राम कहते हैं कि जो शिव का द्रोही है, वह मुझे सपने में भी प्रिय नहीं है चाहे वह मेरा दास क्यों न हो। इसी तरह एक तरफ श्रीराम दुर्गा को माँ के समान मानकर

उनकी पूजा करते हैं जो दूसरी तरफ बंगाली संस्कृति में दुर्गा के पति कहलाने वाले शिव के इष्ट देव स्वयं श्रीराम हैं। शिव और राम के अभिन्न संबंध की इस तरह की अनेक कथाएँ या मिसालें पूरे देश में मिल जाएँगी। यहाँ तक कि सुदूर तमिलनाडू के रामेश्वरम में इसकी एक और बानगी देखी जा सकती है जो हिंदुओं का एक अत्यंत पवित्र तीर्थ और चार धामों में से एक है। यहाँ स्थापित शिवलिंग को श्रीराम के आराध्य देव के रूप में मानकर पूजा होती है। और तो और, इस जिले का नाम भी रामनाथपुरम है। इसी तरह अयोध्या, उत्तर प्रदेश अथवा उत्तर भारत के लोग जिस भाव से राम की पूजा करते हैं, उसी भाव से ये उत्तर भारतीय कोलकाता के दक्षिणेश्वर में काली, अथवा गुवाहाटी में कामाख्या या जम्मू के वैष्णो देवी (सब शक्ति के ही रूप) की आराधना करते हैं। कृत्तिवास ओझा ही नहीं, उनके अतिरिक्त बंगाल के चैतन्य महाप्रभु ने भी तुलसी के आविर्भाव के पहले ही बंगाल में 'हरे रामा– हरे कृष्णा' को गुंजायमान का दिया था। फिर यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि वृंदावन में कृष्ण (राम या विष्णु का ही रूप) की आराधना के लिए आने वालों में बंगालवासी सर्वाधिक हैं। फिर राम क्या सिर्फ उत्तर प्रदेश (अयोध्या) अथवा उत्तर भारत के ही हैं? यह प्रश्न इसलिए समीचीन हो उठता है कि बंगाल के अतिरिक्त पूर्व में तमिलनाडू के विमर्शकारों और बुद्धिजीवियों ने भी कुछ इसी तरह का सवाल करते हुए सीधे राम के अस्तित्व पर ही सवाल उठाए थे।

अयोध्या के श्रीराम ईश्वर तो हैं ही लेकिन इसके अतिरिक्त वे एक सांस्कृतिक पुरुष भी हैं जिनसे पूरा भारतवर्ष युगों–युगों से प्रभावित हुआ है। सभी क्षेत्रों, भाषाओं, जातियों और धर्मों के लोगों ने अपने–अपने तरीके से रामायण अथवा राम कथा रचा है। वाल्मीकि के आदि रामायण (संस्कृण भाषा में) के बाद महर्षि वेदव्यास रचित महाभारत में भी 'रामोपाख्यान' के रूप में यह कथा वर्णित हुई है। फिर बौद्ध परंपरा में श्रीराम से संबंधित दशरथ जातक, अनामक जातक तथा दशरथ कथानक नामक तीन जातक कथाएँ उपलब्ध हैं। जैन साहित्य में भी राम कथा संबंधी कई ग्रंथ लिखे गए, जिनमें विमलसूरि कृत 'पउमचरियं' (प्राकृत भाषा में) अथवा स्वयंभू कृत 'पउमचरिउ' (अपभ्रंश भाषा में), रामचंद्र चरित्र पुराण (संस्कृत में) इत्यादि प्रमुख हैं। अन्य भारतीय भाषाओं की बात करें तो हिंदी में कम से कम 11, मराठी में 8, बांग्ला में 25, तमिल में 12, तेलुगु में 12 तथा ओड़िया में 6 'रामायण' या कहें कि प्रमुख राम कथाएँ मिलती हैं। छिटपुट कथाओं की तो गिनती ही नहीं है। इसके अतिरिक्त गुजराती, मराठी, मलयालम, कन्नड, असमिया ही नहीं मिज़ो, उर्दू, अरबी, फारसी आदि भाषाओं तक में भी राम कथा लिखी गई।

राम कथा के संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि ब्राह्मण या अन्य स्वर्ण जातियों के अतिरिक्त पिछड़ी और दलित जातियों के संतों–मनीषियों ने भी राम को अपनी रचना का विषय बनाया। संत कबीर (एक जुलाहा और मुसलमान) मेरा मन रामहि आहि कहते हैं तो संत रैदास (चर्मकार समाज से) जब मन मिलो राम–सागर सों की धुन लगते हैं। यही नहीं मुसलमान रचनाकारों में भी राम उतने ही लोकप्रिय रहे। तुलसी के समकालीन रहीम कवि राम के आदर्श को नमन करते हुए लिखते हैं, *रामचरित मानस विमल, संतन जीवन प्राण, हिंदुआन को वेद सम, यवनहीं प्रकट कुरान*। मोहम्मद इक़बाल जैसे उर्दू के मशहूर शायर ने भी श्रीराम की शान में कविता लिखी थी जिसमें उन्होंने श्रीराम को हिंदू धर्म का प्रतीक न मान कर पूरे भारत की सांस्कृतिक धरोहर के प्रतीक के रूप में पहचाना है। इक़बाल लिखते हैं–

है राम के वजूद पे हिंदोस्ताँ को नाज़
अहल–ए–नज़र समझते हैं उसको इमाम–ए–हिंद

इक़बाल का कहना है कि हिंद का प्याला सत्य से भरा हुआ है और जितने भी दार्शनिक पश्चिम (मगरिब) में हैं, वे भारत के श्रीराम का विस्तार मात्र हैं।

राम कथा का विस्तार भारत की सीमाओं को लाँघकर विदेशों में भी फैला हुआ है। तिब्बती रामायण, पूर्वी तुर्किस्तान की खोतानीरामायण,

इंडोनेशिया की ककबिन रामायण, जावा का सेरतराम, सैरीराम, रामकेलिंग, पातानी राम कथा, इंडोचायना की रामकेर्ति, रामकीर्ति, खमैर रामायण, बर्मा (म्यांम्मार) की यूतोकी रामयागन, थाईलैंड की रामकियेन आदि रामचरित्र का बखूबी बखान करती हैं। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीराम वह मर्यादा पुरुषोत्तम हैं जो देश व काल से परे हैं। और हम भारतीयों के जीवन–संस्कृति में तो रचे–बसे हुए हैं। इसीलिए हर भारतीय की अपनी–अपनी एक 'राम–कहानी' होती है। इसीलिए मिलने पर 'राम–राम' या 'जै रामजी की' कहना एक धार्मिक अभिवादन से ज्यादा एक सांस्कृतिक एवं लौकिक अभिवादन है। 'जय श्रीराम' भी इसी की एक कड़ी है जो पापुलर कल्चर (Pouplar Culture) की देन है। हिंदी सिनेमा और खासतौर से रामानंद सागर के रामायण सीरियल के माध्यम से 'जय श्रीराम' का अभिवादन भी आम जनमानस में फैल गया। इस संदर्भ में जेएनयू में इतिहास केंद्र में पूर्व शोधकर्ता साकिब सलीम सही लिखते हैं कि हमें यह समझने की जरूरत है कि श्रीराम केवल हिंदू धर्म के भगवान नहीं है बल्कि इस मिट्टी के धरोहर हैं, और धरोहर को बाँटना न तो मुमकिन है और न अक्लमंदी। राम कथा के प्रामाणिक शोधकर्ता फादर कामिल बुल्के के अनुसार जिन आदर्शों, जीवन–मूल्यों और सामाजिक समरसता की प्रतिष्ठा के लिए श्रीराम संघर्ष करते हैं वे पूरे भारतीय जीवन–संस्कृति में रचे–बसे हैं। कामिल बुल्के के अनुसार श्रीराम वह सांस्कृतिक पुरुषोत्तम हैं, जो हर देश–काल में पूज्य हैं। 'कृतिबासी रामायण' या रवींद्रनाथ ठाकुर, श्रीराम के बारे में इन्हीं विचारों की पुष्टि करते हैं, श्रीराम के नाम पर गलतफहमी फैलाने वालों को यह बात समझ लेनी चाहिए।

– हिंदी विभाग, कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

मानवीयता और जीवन–मंगल का महाकाव्य : रामचरितमानस

डॉ. आलोक रंजन पांडेय

रामचरितमानस आज भारत के लगभग हर घर में पढ़ा जानेवाला धर्मग्रंथ है जो मनुष्य को न केवल जीवन की राह बताता है अपितु विभिन्न परेशानियों के समय मनुष्य को सही रास्ता दिखाता है तथा उनका उचित निराकरण भी करता है। हम जिस दोराहे पर खड़े हैं, वहाँ से आगे अगर सिर्फ हमें कुछ दिखाई पड़ता है तो वह अंधविश्वास, अनास्था, आकांक्षा, अंधकार, अनिश्चितता और किंकर्तव्यविमूढ़ता। ऐसी स्थिति होने का प्रमुख कारण आज का भौतिकवादी जीवन व समाज है। भारतीय मानस आज इस कदर से द्वंद्व का जीवन जी रहा है जिसमें उसे दूसरों के लिए तो छोड़ो अपने लिए भी सोचने का अवकाश नहीं रह गया है इस दृष्टि से देखे तो तुलसीदास के नायक मर्यादा पुरुषोत्तम राम सभी के कल्याणकारक हैं। आज का मानव समाज जिन विसगतियों और विडंबनाओं का सामना कर रहा है उन से निजात पाने के लिए राम राज्य विशेष रूप से प्रासंगिक है। रामचरितमानस की रचना के संदर्भ में खुद तुलसीदास जी रामचरितमानस की एक चौपाई में लिखते हैं कि एक रात जब वे सो रहे थे तब उन्हें सपना आया। सपने में भगवान शंकर ने उन्हें आदेश दिया कि तुम अपनी भाषा में काव्य रचना करो। तुरंत ही तुलसीदास जी की नींद टूट गई और वे उठ कर बैठ गए। तभी वहाँ भगवान शिव और पार्वती प्रकट हुए और उन्होंने कहा–

तुम अयोध्या में जाकर रहो और हिंदी में काव्य रचना करो। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारी रचना सामवेद के समान फलबती होगी। भगवान शिव की आज्ञा मानकर तुलसीदास जी अयोध्या आ गए। वहाँ आकर उन्होंने संवत् 1631 (1574ई.) को रामनवमी के दिन ‘रामचरितमानस’ की रचना प्रारंभ की। इस रचना को लिखने में उन्हें 2 वर्ष, 7 महीने व 26 दिन लगे, इतने लंबे समय तक निरंतर तुलसीदास जी भगवान राम के चरित्र का गुणगान करते रहे, जिसके परिणामस्वरूप इस ग्रंथ की समाप्ति संवत् 1633 (1576ई.) के अगहन मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को सातों कांड के साथ पूर्ण हुई।

वैसे तो भगवान श्रीराम के जीवन का वर्णन अनेक ग्रंथों में मिलता है, लेकिन गोस्वामी तुलसीदास द्वारा लिखी गई, ‘श्रीरामचरितमानस’ उन सभी ग्रंथों में अतुलनीय है साथ ही यह ग्रंथ भारतीय संस्कृति को पहचान भी देता है। इस ग्रंथ में ‘रामलला, के जीवन का जितना सुंदर वर्णन किया गया है उतना अन्य किसी ग्रंथ में पढ़ने को नहीं मिलता। यही कारण है कि श्रीरामचरितमानस को सनातन धर्म में विशेष स्थान प्राप्त है। ”भक्ति आंदोलन का प्रादुर्भाव वर्ग, वर्ण, जाति, धर्म और संप्रदाय से परे जाकर मनुष्य सत्य की उद्घोषणा के साथ हुआ। उनकी भक्ति में सामाजिक विषमता और भेदभाव के लिए जगह नहीं। उनकी गली प्रेम के द्वार तक ले जाती है और सबकी हितकारिणी है। यह भक्ति आंदोलन वर्ण व्यवस्था को तोड़ता था। ऐसा न होता तो नाभादास, रैदास, कबीरदास, सूरदास, तुलसी, रहीम, रसखान सब एक ही पंक्ति

में न खड़े किए जाते।"[1] भक्ति आंदोलन समूचे भारतवर्ष में न जाने कितने कवियों और समाज के लिए चिंतन करने वाले लोगों को आगे लाया। सिर्फ़ हिंदी क्षेत्र में ही नहीं अपितु दक्षिण भारत से लेकर उत्तर भारत व पूर्वोत्तर भारत के अनेक कवियों ने भक्ति आंदोलन का जो अखिल भारतीय स्वरूप सामने रखा उसने समाज को नई दिशा दी, समाज में प्रगतिशील मूल्यों को स्थापित किया। इस कड़ी में सगुण या निर्गुण जैसी धाराएँ आईं लेकिन सबका उद्देश्य एक ही रहा और वह था मानवीय मूल्यों की स्थापना करना। इसमें आप चाहें प्रेमाश्रयी धारा को देखें या सूफ़ी धारा को, कृष्ण के प्रेम को देखें या तुलसी की मर्यादा को, सब जगह मानवीयता के धरातल को मज़बूत करने के ही उपाय दिखाई देते हैं। "तुलसी की भक्ति का घनिष्ठ संबंध मानवीय सहानुभूति और करुणा से है। इसलिए वे उसके द्वारा उच्चकोटि के मानवतावाद की प्रतिष्ठा करते हैं।"[2]

तुलसीदास के काव्य में मानवीय पीड़ा की सफल अभिव्यक्ति मिलती है। वे मानवीय दर्द को समझकर मानवीय मूल्यों की आधारभूमि तैयार करते हैं। वे एक ऐसे राज्य की स्थापना की बात करते हैं जहाँ सब आदर्श की ओर जाता हुआ दिखाई देता है। वे गढ़ते हैं जहाँ सब सुखी हैं, सब प्रसन्न हैं, वह एक आदर्श राम राज्य है–

अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरूज सरीरा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना।।[3]

जिस तरह के समाज व राज्य की कल्पना हम करते हैं, वह समाज तुलसीदास उसी समय बुन रहे थे। तुलसीदास ने राम के रूप में सत्ता व अयोध्या की जनता के रूप में आदर्श जनता के रूप की स्थापना की। तुलसीदास ने जिन ग्रंथों की रचना की उनमें रामचरितमानस को सबसे प्रौढ़ ग्रंथ माना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं कि यह एक कवि को हिंदी को प्रौढ़ साहित्यिक भाषा सिद्ध करने के लिए काफ़ी है। उस पर उनका मानस उनकी कृतियों में श्रेष्ठतम है जो हिंदी साहित्य की कालजयी कृतियों में से एक है।

तुलसीदास जी का मानस कलियुग के दोषों को नष्ट कर सबका मंगल करने वाला ही नहीं है, यह तो निरंतर बहने वाली वह निर्मल एवं पवित्र नदी है जिसमें माँसाहारी रावण जैसे मगरमच्छ और शूर्पनखा जैसी मछलियाँ भी हैं परंतु फिर भी ब्रह्मानंद के आकांक्षी उसमें उतरते हैं, गोता लगाते हैं और अपने हृदय– पात्र में भरकर 'जय–जय सुरनायक जन सुखदायक' या 'नमामि भक्त वत्सलं' अथवा 'भए प्रकट कृपाला दीन दयाला' का गायन तन्मय होकर करते हैं। 'मंगल भवन अमंगल हारी' तो पिंजरे के तोता–मैना भी गाते हैं। इससे ज्यादा तुलसीदास और मानस की प्रासंगिकता का सबूत और क्या हो सकता है? महाकवि तुलसीदास ने मानस में दुर्गुणों को समाप्त करने के अनेक उपाय बतलाए हैं। वे अपने साहित्य से सभी के लिए कल्याणकारक संतप्रवृत्ति के समाज की रचना करने में सफल हुए हैं। उनका संपूर्ण सृजन विशेषतः रामचरितमानस आज ही नहीं, भविष्य में भी उसी प्रकार सदुपयोगी तथा प्रासंगिक रहेगा। जो लोग सत्य और प्रेम सामीप्य का रसानंद पान करना चाहते हैं, शबरी और अहिल्या की भाव विह्वलता उनके विश्वास को दृढ़ करती है–

कबहु तो दीनदयाल के भनक परेगी कान।

सत्य और प्रेम का निवास पर्णकुटी में हो या निषादराज के यहाँ; कोल, भील, किरात, वानर, रीछों के साथ हो अथवा ऋषि–मुनियों के आश्रमों में चित्रकूट व पंचवटी में, वहाँ सभी जीव अपने वैर भाव को नष्ट कर देते हैं। 'रामचरितमानस' हमें जीवन के हर सोपान पर नवीन सीख देने वाला, एक अद्वितीय चिंतन क्षमता का विकास करने वाला महाकाव्य है। एक आदर्श व्यक्तित्व कैसा होता है, एक आदर्श कार्य व्यवहार कैसा होना चाहिए? हमें कब कैसे और कहाँ किस प्रकार का कार्य करना है अथवा नहीं करना है, यह विवेक चिरकाल से रामचरितमानस हमें कराता आया है। रामचरितमानस का प्रत्येक पात्र हमें एक विशिष्ट सीख देता है। चाहे वह सीख श्रीराम के माध्यम से एक आदर्श मर्यादावादी राजा व एक आदर्श पुत्र के रूप में हो या लक्ष्मण के माध्यम से एक आदर्श

भाई के रूप में हो। चाहे हनुमान के रूप में मित्रवत सेवक।

तुलसी जनता की परिस्थितियों से पूर्ण रूप से परिचित थे। उन्होंने हनुमान जी के माध्यम से दुखी व पीड़ित भारतीय जनता में हर्ष व उत्साह उत्पन्न किया। उन्होंने हनुमान जी के माध्यम से यह उदाहरण प्रस्तुत किया कि यदि किसी विशिष्ट कार्य के लिए मन में श्रद्धा, हृदय में उत्साह व अपने आराध्य के प्रति सच्ची निष्ठा हो तो वह कार्य विघ्नरहित यथाशीघ्र संपन्न होता है। जैसे हनुमान जी ने लंका में प्रवेश करने से पूर्व पूर्णनिष्ठा और उत्साह के साथ आराध्य राम पर अटूट विश्वास रखकर उनकी स्तुति की–

प्रबिसि नगर कीजै सब काजा। हृदय राखि
कौसलपुर राजा।।
गरल सुधा रिपु करहीं मिताई, गोपद सिंधु
अनल सितलाई।।[4]

किसी भी रचनाकार की कृति केवल अपनी युगीन परिस्थितियों में ही समीचीन होती है। लेकिन महाकवि तुलसीदास जी का संपूर्ण काव्य वर्तमान में भी उतना ही प्रासंगिक है जितना कि उनके खुद के समय था। उनका संपूर्ण काव्य बालक, युवा और बुजुर्ग सभी को एक विशेष प्रेरणा देता रहा है और हमेशा देता रहेगा। रामचरितमानस की रचना द्वारा उन्होंने भारतीय संस्कृति और समाज को एकजुटता तथा मजबूती प्रदान की। यह मानव मूल्यों की दृष्टि से समूचे विश्व का श्रेष्ठतम महाकाव्य है। यह नवीनता, मौलिकता और गहनता की दृष्टि से अप्रतिम है। इसमें व्यापकता और गहराई, यथार्थ एवं आदर्श तथा सूक्ष्मता एवं विराटता का अद्भुत संश्लेषण हुआ है। यह एक राष्ट्रीय महाकाव्य है जो भगवती भागीरथी के समान सबका हित साधने के लिए रचा गया है। इसलिए रामचरितमानस को लोकहितकारी महाकाव्य भी कहा जाता है। यह मानव जीवन के वृहत्तर मूल्यबोध का कभी न खत्म होने वाला आविष्कार है जिसमें सरल और आदर्श जीवन की प्रतिष्ठा की गई है।

रामचरितमानस भारतीय वाङ्मय का अनूठा महाकाव्य है जिसमें भारत की साहित्यिक संपदा और सांस्कृतिक परंपरा को व्यापक एवं पूर्ण अभिव्यक्ति मिली है। हमारी सहज माननीय संस्कृति और परंपरागत मान्यताओं को नीर, क्षीर, विवेकी तुलसी ने मानस को भारत की शताब्दियों पुरानी परंपराओं के साथ जोड़ा है। रामचरितमानस एक ऐसी कालजयी कृति है जिसके द्वारा हम न केवल साहित्य की रचनाशीलता के विभिन्न प्रतिमानों का अनुभव करते हैं बल्कि इस महान ग्रंथ में सुदीर्घ भारतीय परंपरा की विविधता का साक्षात्कार भी कराते हैं। यह विशिष्ट सांस्कृतिक परंपराओं और जीवन मूल्यों के लिए सारे संसार के बीच एक सेतु का काम भी करने में सक्षम है।

तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना का आधार आदि कवि वाल्मीकि के रामायण को बनाया था। वाल्मीकि ने रामायण को सिद्धरस काव्य के रूप में उपस्थित किया था और संस्कृत साहित्य का विकास किया। वाल्मीकि की यथार्थपरक सौंदर्य दृष्टि, अध्यात्म रामायण का भक्ति सौरभ, प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक की शृंगारिक चेतना, कालिदास की ऐतिहासिक महाकाव्य शैली के साथ विभिन्न लोककथात्मक रामकाव्य और विभिन्न अपभ्रंश कथा–काव्यों की चरित्रात्मक शैली का एक साथ संतुलित नियोजन मानस में करने का सफल प्रयास गोस्वामी जी ने किया है। इसी क्रम में तुलसी ने एक ओर परंपरा के प्रति अपने सम्मान और ज्ञान का परिचय दिया है तो दूसरी ओर बड़े ही कौशल के साथ परंपरा के वैविध्य को स्वीकार करते हुए भी उसके प्रभाव को दूर कर नया रंग चढ़ाने का प्रयत्न किया है।

संपूर्ण मानस इसी भगीरथ प्रयत्न का उदाहरण है। मानस के सात सोपान तुलसी की भक्ति और काल बोध के परिचायक हैं। इसमें सात खंडों के अंतर्गत जिस कथा वैविध्य के दर्शन होते हैं उसमें संसार के विभिन्न ज्ञान–विज्ञानात्मक विषयों का समाहार और अनेक कथाओं की सम्यक योजना हुई है। तुलसी ने अपनी बहुपठित एवं मौलिक प्रज्ञा के सहारे मानस के प्रबंधात्मक स्वरूप को सुसंगठित किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रामचरित की सामाजिकता और लोक–प्रसिद्धि

का वर्णन करते हुए अपनी पुस्तक में लिखा कि "तुलसी की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी प्रबंध–पटुता, जिसके बल से आज रामचरितमानस हिंदी समझने वाली हिंदू जनता का साथी हो गया है। तुलसी की वाणी मनुष्य जीवन की प्रत्येक दशा तक पहुँचाने वाली है, क्योंकि उसने रामचरित का आश्रय लिया है।"[5]

रामचरितमानस आदि से अंत तक एक मर्यादा काव्य है, और इसके अधिकांश पात्र मर्यादावादी जीवन मूल्यों की रक्षा के लिए प्रयत्नशील दृष्टिगत होते हैं। सभी पात्रों के चरित्रांकन में तुलसी ने जैसी विशिष्ट रचनात्मक दृष्टि का परिचय दिया है उसका अन्यतम उदाहरण उनके कथा नायक राम का शास्त्र प्रतिपादित धीरोदात चरित्र है। लोकरक्षक और मर्यादा पुरुषोत्तम राम विशिष्ट गुण के निधान हैं। वे एक साथ सौंदर्य, शील और शक्ति की त्रिवेणी हैं। इसी तरह राम के चरित्र में विनय और शील की पराकाष्ठा भी दिखाई देती है–

जो अनीति कछु भाषों भाई,
तैं मोहि वरजहु भय बिसराई।[6]

राम के उत्कर्षमय चरित्र में शील, शक्ति और सौंदर्य की इस योजना द्वारा तुलसी ने क्रमशः धर्मस्थापना, लोकरक्षक एवं लोकरंजन की अभिव्यंजना की है।

एक व्यक्ति से मिलकर समाज बनता है और समाज का विस्तार आज देश एवं विश्व के रूप में हो। आज जब समूचे विश्व में राज व्यवस्था को लेकर तमाम तरीक़े की अवधारणा प्रचलित है, अनेक शासन पद्धति हैं, उसमें एक आदर्श राज्य की स्थापना एवं उसका स्वरूप क्या होगा इस संदर्भ में तुलसीदास ने विस्तार से अपने रामचरितमानस में लिखा है। जब हम राम राज्य की बात करते हैं तो उसमें जो प्रमुख विशेषता हमें नज़र आती है वह है कि राम राज्य के अंतर्गत रहने वाली प्रजा में एकता की भावना का मौजूदा होना। यदि एकता की यह भावना मौजूद नहीं है तो हम उस समाज एवं वहाँ के लोगों की उन्नति को नहीं देख पाएँगे। उन्होंने राम राज्य के संदर्भ में लिखा है *बयरु न कर काहू सन कोई। रामप्रताप विषमता खोई।।*[7]

यदि किसी समाज में विषमता है तो वह विषमता बैर या शत्रुता का कारण बनती है। तुलसीदास इसी विषमता को हटाने की बात अपने आदर्श राम राज्य की अवधारणा के अंतर्गत करते हैं ताकि लोगों के अंदर यह भावना मिट जाए। एक आदर्श राज्य में प्रजा दीन दुखी दरिद्र नहीं होती है। इसी संदर्भ में तुलसीदास लिखते हैं–

रामराज राजत सकल धरम निरत नर नारि।
राग न रोष न दोष दुःख सुलभ पदारथ चारि।।

तुलसीदास जब आदर्श राम राज्य की बात करते हैं तो वे इस पर दो दृष्टियों से विचार करते हैं। एक ओर वे राज्यों को सचेत करते हैं कि वही राजा राज करने के योग्य हैं जो प्रजा के दुख दर्द में सहभागी बने, जो प्रजा के लिए काम करे। वहीं, दूसरी ओर वे प्रजा को भी इस बात की जानकारी देते हुए चलते हैं कि इसी तरीके के आदर्श राज्य के लिए प्रजा को मिलकर प्रयास करना चाहिए। तुलसीदास की यह अवधारणा वर्तमान लोकतांत्रिक परिवेश का बख़ूबी चित्रण करती हुई नज़र आती है। इस संदर्भ में उनका यह महाकाव्य लोकतांत्रिक मूल्यों को भी सदैव दर्पण दिखाने का कार्य करता रहेगा आज का समाज अपनी पारिवारिक जटिलताओं से ग्रस्त है, किंतु ऐसी कोई जटिल समस्या नहीं जिसका उत्तर तुलसी साहित्य में ना मिले। पिता–पुत्र, माता–पुत्र, भाई–भाई, भाभी–देवर, पति–पत्नी, सौत–सौत, दोस्त–दोस्त, साध्य–साधक, राजा–प्रजा आदि के जितने भी रिश्ते हैं उनमें होने वाले अनेकानेक विवादों, संघर्षों और विडंबनाओं का जीवंत चित्रण और फिर उनका अत्यंत संतोषकारी सुझाव प्रस्तुत करते हुए तुलसीदास मानो हमें तमाम पारिवारिक परिजनों से कहते हैं–

जहाँ सुमति तहाँ संपत्ति नाना,
जहाँ कुमति तहं बिपति विधाना।[8]

परिवार समाज की सार्थक इकाई है। वर्तमान समय में परिवार के स्वरूप और संरचना में बदलाव आया है। वे बदलाव नकारात्मक रूप में भी देखे गए हैं। तुलसीदास का काव्य पारिवारिक संरचना के आदर्श स्वरूप का भी उदाहरण हमारे सामने

प्रस्तुत करता है। इस महाकाव्य में भाई, पति, पत्नी, पिता, पुत्र, माता, स्वामी, आदि के रूप और सम्मिलित परिवार के आदर्श रूप का निरूपण यहाँ देखने को मिलता है। तुलसीदास कहते हैं–

अनुचित उचित विचार तजि जे पालहि पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहि अमरपति ऐन।।[9]

इस महाकाव्य में तुलसीदास ने सीता का पतिव्रत, कैकेयी का पश्चाताप, भरत का भ्रातृ प्रेम, लक्ष्मण की भ्रातृ सेवा, उर्मिला का त्याग, राम का पितृत्व आज्ञा पालन आदि कुछ ऐसे प्रसंग उपस्थित किए हैं जो मानव जाति को युग–युग तक पारिवारिक शांत, सौमनस्य और समरसता का संदेश देते रहेंगे। वर्तमान संदर्भों में पशु–पक्षियों के अधिकारों व उनके संरक्षण हेतु 'पेटा' जैसी बहुत सी संस्थाएँ आगे आ रही हैं। आज लोगों के अंदर भी पशु और वन–सरंक्षण को लेकर अत्यधिक जागरूकता दिखाई देती है। तुलसी ने अपने इस महाकाव्य में पशु–पक्षियों के साथ सहृदय व्यवहार का वर्णन किया है और दर्शाया है कि उनके साथ भी हमें मानवीय व्यवहार दर्शाना चाहिए। उन्होंने ऐसे स्थलों पर पूरी मार्मिकता उड़ेल दी है। यह महाकाव्य केवल मानव मात्र नहीं अपितु इस धरा पर समस्त प्राणि मात्र के लिए संवेदनात्मक मूल्यों को पोषित करने वाला अनूठा ग्रंथ है।

आज शिक्षा के प्रति छात्रों, अभिभावकों, शिक्षकों और शासकों में समान रूप से अनास्था व्याप्त है। आज विद्यालय हो या महाविद्यालयी शिक्षा केंद्र या कोई और शिक्षण संस्थान, सभी जगह चरित्र–निर्माण और ज्ञान–दान न कर वहाँ अधिकतर तामस गुणों के विकास के बारे में बताया जा रहा है जिससे छात्र में संवेदनशीलता की कमी दिखाई दे रही है। आज की शिक्षा पद्धति का मूल उददेश्य पैसा कमाना रह गया है। यह कम चिंता की बात नहीं है। आज समाज की शिक्षा व्यवस्था का जो अधोपतन हुआ है उसकी ओर गोस्वामी तुलसीदास जी ने बहुत पहले ध्यान दे दिया था। किस तरह आश्रम पद्धति की शिक्षा व्यवस्था के टूटते ही शिक्षा क्षेत्र में धन–लोलुपता, असंवेदनशीलता, स्वार्थपरायणता, उत्तरदायित्वहीनता, गैरजिम्मेदारी की भावना, अनुशासनहीनता एवं अध्ययन–अध्यापन के प्रति अनास्था आदि बातें स्वतः आ गई हैं। इस संबंध में तुलसीदास लिखते हैं–

गुर सिख बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहीं देखा
हरह शिष्य धन सोक न हरई सो गुरू घोर नरक महं मरई।।[10]

तुलसीदास के धर्म व अधर्म की कसौटी मानवहित है। तुलसी उन सभी को मनुष्यता के आधार पर अपनी करुणा का पात्र बनाते हैं जो प्रताड़ित और उपेक्षणीय हैं। उनके खल पात्र भी सद्‌गुणों से नितांत विहीन नहीं है। तुलसी सही मायने में मानवतावादी हैं। मनुष्य की श्रेष्ठता और क्षमता में उनका दृढ़ विश्वास है। 'बड़े भाग मानुष तन पावा'। उनके मानवीय मूल्य स्नेह, त्याग, करुणा, विनम्रता, तेजस्विता, आत्मत्याग, सहानुभूति और रामत्व से मिलकर निर्मित हुआ है। उनका संपूर्ण साहित्य लोकमंगल के लिए लिखा गया है जो पीड़ितों के प्रति अगाध सहानुभूति रखता है।[11] उन्होंने जिस श्रम और विचार से इस ग्रंथ की रचना की है, हिंदी के आलोचकों ने भी उसकी उतनी ही सही पहचान कर उस रचना के साथ न्याय किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल तुलसीदास जी के इस ग्रंथ की महत्ता को जनता के सामने लाकर और उसे वर्तमान संदर्भ के जीवन से जोड़ते हुए कहते हैं कि– रामचरितमानस उत्तर भारत की सारी जनता के गले का हार हो चुका है।[12] इस ग्रंथ का जनता का हार हो जाना और उनके कंठों पर सुशोभित हो जाना ऐसे ही नहीं हुआ है अपितु इसका अपना सामर्थ्य है जो यह उस स्थान पर विराज रहा है।

रामचरितमानस हिंदी साहित्य का एक ऐसा अमूल्य ग्रंथ है जो जीवन के विविध पहलुओं पर विचार करता हुआ एक सभ्य व आदर्श समाज की रचना को गति देता हुआ नज़र आता है। उसमें जीवन के जिन पहलुओं पर बातें की गईं हैं, वह आज भी लोगों का उचित मार्गदर्शन कर रहा है। उसकी प्रासंगिकता के लगातार बने रहने का कारण यही है कि वह जीवन के सभी पक्षों पर

सम्यक् दृष्टिकोण से मार्गदर्शन करता प्रतीत होता है। लोकमंगल की साधनावस्था से लेकर लोकमंगल की सिद्धावस्था का यह काव्य लोक के मंगल का विधान रचता है। इसमें संपूर्ण मानव जाति को अपने काव्य के केंद्र में रखकर तुलसीदास ने समूचे विश्व को मानवीयता का पाठ पढ़ाया है जो आगे आने वाले समय तक प्रासंगिक बना रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लोकवादी तुलसीदास : विश्वनाथ त्रिपाठी, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ 27

2. तुलसी एक पुनर्मूल्यांकन : सं–अजय तिवारी, आधार प्रकाशन, पृष्ठ–126

3. चौपाई–3, उत्तरकांड, रामचरितमानस, तुलसीदास

4. दोहा 4, सुंदरकांड, रामचरितमानस, तुलसीदास

5. गोस्वामी तुलसीदास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ–152

6. चौपाई–43, उत्तरकांड, रामचरितमानस, तुलसीदास

7. चौपाई–20, उत्तरकांड, रामचरितमानस, तुलसीदास

8. दोहावली, तुलसीदास, पृष्ठ–34

9. चौपाई–174, अयोध्याकांड, रामचरितमानस, तुलसीदास।

10. चौपाई–98, उत्तर कांड, रामचरितमानस, तुलसीदास।

11. कविता में उतरते हुए : दीपक जायसवाल, अनन्य प्रकाशन, पृष्ठ–42

12. त्रिवेणी : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, कला मंदिर, पृष्ठ–79

– हिंदी विभाग, रामानुजन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

रामायण और रामचरितमानस में 'राम'

डॉ. वेदप्रकाश

राम सत्य हैं, सनातन हैं, अनादि हैं। राम में सब हैं और राम सब में हैं। राम आराध्य हैं, आदर्श हैं, प्रेरणा हैं, प्रतीक हैं, मर्यादा हैं, मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, दया हैं, क्षमा हैं, सदाचार हैं, श्रद्धा हैं, विश्वास हैं, जीवन हैं, जिजीविषा हैं, धर्म हैं, नीति हैं, सामाजिक चेतना हैं, धार्मिक चेतना हैं, सांस्कृतिक चेतना हैं। राम प्रभात का स्वर हैं, भारतीयता का उद्घोष हैं। राम कर्तव्य हैं, शासन की आदर्श संकल्पना हैं, पिता हैं, पुत्र हैं, राजा हैं, शिष्य हैं, मित्र हैं, तारक हैं, पालक हैं, संहारक हैं, नेतृत्व हैं, शौर्य हैं, ब्रह्म हैं, शरणागत वत्सल हैं, लोक भावना की संजीवनी हैं तो अलौकिक ज्योतिपुंज भी हैं। राम यदि सूक्ष्म रूप में घट–घट वासी हैं तो विराट रूप में समस्त जड़–चेतन में भी व्याप्त हैं। सूत्र रूप में कहें तो राम अनंत हैं।

सर्वप्रथम आदिकवि वाल्मीकि ने इस अनंत के प्रति जिज्ञासा प्रकट करते हुए विद्या विशारद नारदमुनि के मुख से सुना और फिर उसे शब्दबद्ध किया। आदिकाव्य रामायण के प्रथम कांड के प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक से वाल्मीकि की जिज्ञासा प्रकट होती है और दूसरे श्लोक में वे लिखते हैं–

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान्[1]...

अर्थात् हे मुने! इस समय इस संसार में गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ, उपकार मानने वाला, सत्य वक्ता, दृढ़ प्रतिज्ञ, सदाचार से युक्त, समस्त प्राणियों का हित साधक, विद्वान, सामर्थ्यशाली, प्रियदर्शन, मन पर अधिकार रखने वाला, क्रोध को जीतने वाला, कांतिमान, किसी की भी निंदा न करने वाला, संग्राम में कुपित होने पर किससे देवता भी डरते हैं वाल्मीकि की यह जिज्ञासा सामान्य नहीं है, अपितु परम कौतुहल से परिपूर्ण है। परम कौतुहल के वशीभूत होकर ही नारदमुनि इन समस्त गुणों की दुर्लभता जानकर कहते हैं–

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुत...[2] अर्थात् इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न हुए एक ऐसे पुरुष हैं जो लोगों में राम नाम से विख्यात हैं। वे ही मन को वश में रखने वाले महाबलवान, कांतिमान, धैर्यवान और जितेंद्रिय हैं। वे बुद्धिमान, नीतिज्ञ, वक्ता, शोभायमान तथा शत्रु संहारक हैं। उनके कंधे मोटे और भुजाएँ बड़ी–बड़ी हैं, ग्रीवा शंख के समान और ठोढी मांसल है। उनकी छाती चौड़ी व धनुष बड़ा है। वे शुत्रओं का दमन करने वाले हैं। उनका मस्तक सुंदर है, ललाट भव्य और चाल मनोहर है। धर्म के ज्ञाता, सत्य प्रतिज्ञ तथा प्रजा के हित साधन में लगे रहने वाले हैं। प्रजापति के समान पालक, श्रीसंपन्न, धर्म के रक्षक, वेद–वेदांगो के तत्ववेत्ता, अखिल शास्त्रों के ज्ञाता, उदार हृदय वाले, समस्त लोगों के प्रिय, सबमें समान भाव रखने वाले, गंभीरता में समुद्र और धैर्य में हिमालय के समान हैं। रामायण में प्रथम सर्ग में ही लगभग बीस श्लोकों में नारदमुनि अपने ज्ञान से राम के विराट व्यक्तित्व का वर्णन करते हैं। राम कथा को संक्षेप में बताते हुए नारद जी प्रथम सर्ग के अंत में रामचरित के महत्व का भी प्रतिपादन करते हैं–

इंद पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् [3]... अर्थात् वेदों के समान पवित्र, पापनाशक और पुण्यदायक इस रामचरित को जो पढ़ेगा, वह सब पापों से मुक्त हो जाएगा।

ऋषि वाल्मीकि भारतीय ज्ञान परंपरा और ऋषि परंपरा के बड़े साधक हैं। उन्होंने अपनी साधना से विविध प्रकार का ज्ञान अर्जित किया। उन्हें विशेष क्षमतायुक्त व जिज्ञासु देखकर ही नारदमुनि उन्हें श्रीराम के विराट स्वरूप से परिचित करवाते हैं, तदनंतर सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा जी उन्हें अधिकारी जानकर श्रीरामचरित के वर्णन का आदेश देते हैं–

रामास्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम [4]... अर्थात् मुनिश्रेष्ठ तुम श्रीराम के संपूर्ण चरित्र का वर्णन करो। परम बुद्धिमान भगवान श्रीराम संसार में सबसे बड़े धर्मात्मा और धीर पुरुष हैं। तुमने नारद जी के मुँह से जैसा सुना है उसी के अनुसार उनके चरित्र का चित्रण करो। आदिकवि ने रामायण में कई स्थानों पर राम को धर्मात्मा, उदार, सच्चा मित्र, परदुखःकातर, विश्व का उत्पादक, ज्ञानियों में श्रेष्ठ, रघुनंदन, देवताओं में श्रेष्ठ विष्णु, आठवाँ रूद्र, तीनों लोकों का कर्ता, प्रभु, शत्रुओं को संताप देने वाले देव, सृष्टि के आदि, मध्य और अंत, सत्य, पराक्रमी, क्षमा, मधुसूदन आदि नामों से भी अभिहित किया है। रामायण के युद्धकांड में 117 वें सर्ग में 32 श्लोकों में देवताओं के साथ श्रीराम के पास पहुँचे ब्रह्मा जी उनकी भगवत्ता का प्रतिपादन करते हैं–

कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठों ज्ञानविदा विभुः....[5] अर्थात् श्रीराम! आप संपूर्ण विश्व के उत्पादक, ज्ञानियों में श्रेष्ठ और सर्वव्यापक हैं...... आप समस्त देवताओं में श्रेष्ठ विष्णु ही हैं। समस्त देवता नाना रूपों में श्रीराम की भगवत्ता का प्रतिपादन करते हैं। आदिकाव्य रामायण में आदिकवि ऋषि वाल्मीकि ने राम के चरित्र के विविध आयामों पर विस्तार से लिखा है, जिससे यह स्पष्ट है कि राम तत्व भारतवर्ष की सनातन परपरा का आधार है।

रामचरितमानस गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित एक ऐसा ग्रंथ है, जो जन भाषा में लिखा गया। इस ग्रंथ की रचना ऐसे कालखंड में हुई जब श्रद्धा–विश्वास खंडित हो रहे थे, सामान्य व्यक्ति को जीवन रक्षा का कोई संबल नहीं मिल रहा था। लोक में मर्यादा और आदर्शों के लिए कोई स्थान नहीं दिखाई दे रहा था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में कहे तो–देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने से हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया था, उसके सामने ही उसके देव मंदिर गिराए जाते थे, देव मूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं, और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे।[6] इसी क्रम में प्रकरण 4 में सगुण धारा, राम भक्ति शाखा के अंतर्गत गोस्वामी तुलसीदास का विश्लेषण करते हुए वे लिखते हैं– यद्यपि स्वामी रामानंद जी की शिष्य परंपरा के द्वारा देश के बड़े भाग में राम भक्ति की पुष्टि निरंतर होती आ रही थी और भक्त लोग फुटकल पदों में राम की महिमा गाते आ रहे थे, पर हिंदी साहित्य के क्षेत्र में इस भक्ति का परमोज्ज्वल प्रकाश विक्रम की 17वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी द्वारा स्फुरित हुआ... गोस्वामी जी के प्रादुर्भाव को हिंदी काव्य के क्षेत्र में एक चमत्कार समझना चाहिए। हिंदी काव्य की शक्ति का पूर्ण प्रसार इनकी रचनाओं में ही पहले पहल दिखाई पड़ा।... रामचरितमानस में तुलसी केवल कवि रूप में ही नहीं, उपदेशक के रूप में भी सामने आते हैं।[7] निश्चित रूप से गोस्वामी तुलसीदास भारतीय साहित्य परंपरा के बड़े कवि हैं, जिन्होंने लोक अनुभव से समझने का प्रयास किया कि लोक अवलंब कहाँ और कैसे हो? उन्होंने पाया कि तमाम निराशा, अवसाद, संकट एवं जड़ता में भी, आततायियों द्वारा विध्वंस के तांडव में भी जनमानस ईश्वरीय सत्ता में विश्वास करता है। जनमानस के इसी लोकानुभव, गुरु और संत कृपा से, राम कथा श्रवण से बना मानस के सहारे एवं साक्षात् भगवान शिव के आदेश से गोस्वामी जी रामचरितमानस में श्रीराम के विराट रूप की परंपरा और वर्तमान आवश्यकता अनुरूप पुनः सृजना करते हैं। यहाँ यह ध्यान रखना होगा

कि उनकी रचना का आधार वाल्मीकि रामायण ही है, उत्प्रेरक के रूप में भले ही युगीन परिस्थितियों का योगदान रहा हो। मानस के आरंभ में ही गोस्वामी जी राम के अवतरण के कारणों की चर्चा करते हैं। वे लिखते हैं–

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा।
जे लंपट परधन परदारा।।
मानहि मातु पिता नहि देवा।
साधुन्ह सन करवावहि सेवा।। [8]

अर्थात् पराए धन और परायी स्त्री पर मन चलाने वाले दुष्ट, और जुआरी बहुत बढ़ गए। लोग माता–पिता और देवताओं को नहीं मानते और साधुओं की सेवा करना तो दूर उलटे उनसे ही सेवा करवाते हैं। गोस्वामी जी के राम आदर्श और व्यवहार में पूरी तरह खरे उतरते हैं। वे स्वयं जिन व्यवहारों का पालन करते हैं, लोक के लिए वह अनुसरण बनता जाता है।

रामचरितमानस में राम रूप की विराटता सर्वव्यापक, निरंजन, निर्गुण, अजन्मा, ब्रह्म, कण–कण व्यापक के रूप में है, किंतु माता कौशल्या के रूप में भक्तों की इच्छा हेतु वे मनुज लीला करते हैं। जब वे प्रकट होते हैं तो दृश्य कुछ अलौकिक ही होता है–

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी। [9]

अर्थात् दीनों पर दया करने वाले, कौशल्या के हितकारी, कृपालु प्रभु प्रकट हुए। मुनियों के मन को हरने वाले, जिनके अद्भुत रूप को देखकर माता हर्ष से भर गई। नेत्रों को आनंद देने वाला, मेघ के समान श्याम शरीर था, चारों भुजाओं में अपने विशेष आयुध धारण किए हुए थे, दिव्य आभूषण और वनमाला पहने थे, बड़े–बड़े नेत्र थे। यहाँ ध्यान देने योग्य यह भी है कि तदयुग में जनता दीन दुखी थी, उन्हें उन पर दया करने वाले, प्रेम करने वाले, करुणा करने वाले, रक्षा करने वाले व्यक्तित्व की आवश्यकता थी। माता कौशल्या का हर्ष भक्त मन का हर्ष है, सामान्य जनता का हर्ष है, साधना में, तप में लीन राक्षसों के आतंक से दुखी संत समाज का हर्ष है। मानस के राम भवसागर से उद्धार करने वाले तो हैं ही, मुनियों का भय हरने वाले भी हैं। राजा दशरथ ने अपने पूर्व जन्म में कठोर तपस्या की थी, जिसके वरदान स्वरूप उनका अयोध्या में जन्म हुआ और राजा दशरथ के रूप में, ख्याति फैली। उनकी तपस्या से ही श्रीराम उनके पुत्र रूप में जन्में। भिन्न–भिन्न प्रकार की साधन संपन्नता के उपरांत भी दशरथ राम के बिना सब संपदा को व्यर्थ मानते हैं। यह एक प्रकार से आत्मा की लघु और परमात्मा की विराटता का ही द्योतक है। यह भी सत्य है कि परमात्मा से विलग होते ही आत्मा अस्तित्वहीन हो जाती है। राम के वनवास के उपरांत दशरथ की मृत्यु इस बात का प्रमाण है। राम राजपुरुष हैं, किंतु वनवास मिलने पर राजसी ठाठ और वस्त्र त्याग चुके हैं। वे जीवन मूल्य और उच्च आदर्शों से सुशोभित हैं। राम विराट इसलिए भी हैं क्योंकि वे प्रत्येक स्थिति में करुणा का निर्वाह करते हैं। केवट का विनय भी ठुकरा नहीं पाते–

सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे...[10]

अर्थात् केवट के प्रेम में लपेटे हुए अटपटे वचन सुनकर करुणानिधान श्रीराम जी, जानकी जी और लक्ष्मण जी की ओर देखकर हँसे।

रामचरितमानस के विविध प्रसंगों से यह स्पष्ट है कि गोस्वामी जी का देश, काल, वातावरण जिस आश्रय की इच्छा से व्याकुल था, राम उसका साकार रूप हैं। गोस्वामी जी राम रूप की व्यापकता की स्थापना करते हैं–

राम ब्रह्म व्यापक जग जाना।
परमानंद परेस पुराना।।[11]

अर्थात् श्रीरामचंद्र जी तो व्यापक ब्रह्म, परमानंद प्रभु और पुराण पुरुष हैं। इस बात को सारा जगत जानता है। यहाँ यह भी समझने की आवश्यकता है कि राम सांसारिक लोगों के जन्म–मरण रूपी रोग की अचूक दवा हैं और अनेक गुणों के समूह हैं। मानस के सुंदरकांड के आरंभ में ही गोस्वामी जी श्रीराम के विविध गुणों को कहकर उनका वंदन करते हैं–

शांत शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशांतिप्रदं...[12]

अर्थात् शांत, सनातन, अप्रमेय, निष्पाप, मोक्षरूप परमशांति देनेवाले, ब्रह्मा, शंभू और शेषजी से निरंतर सेवित, वेदांत के द्वारा जानने योग्य, सर्वव्यापक, देवताओं में सबसे बड़े, माया से मनुष्य रूप में दिखने वाले, समस्त पापों को हरने वाले, करुणा की खान, रघुकुल में श्रेष्ठ तथा राजाओं के शिरोमणि राम कहलाने वाले जगदीश्वर कि मैं वंदना करता हूँ। गोस्वामी जी के राम घट–घट वासी हैं। लोक जीवन में, लोकगीतों में इनके ध्यान अथवा वंदन के बिना कोई काम संभव नहीं। विद्यानिवास मिश्र ने अपने निबंध 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' में लिखा है– मोरे राम के भीजे मुकुटवा... बचपन में दादी–नानरी जाने पर यह गीत गातीं, मेरे घर से बाहर जाने पर, विदेश पर, विदेश में रहने पर भी वे यही गीत विह्वल होकर गातीं और लौटने पर कहतीं– मेरे लाल को कैसा वनवास मिला था।[13] विश्वनाथ त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक 'लोकवादी तुलसीदास' में तुलसी चिंतन के विविध आयामों को रेखांकित किया है। भूमिका भाग में उन्होंने लिखा है– तुलसीदास की लोकप्रियता का कारण यह है कि उन्होंने अपनी कविता में अपने देखे हुए जीवन का बहुत गहरा और व्यापक चित्रण किया है... उन्होंने वाल्मीकि और भवभूति के राम को पुनः स्थापित नहीं किया है, अपने युग के नायक राम को चित्रित किया है। उनके दर्शन और चिंतन के राम ब्रह्म हैं लेकिन उनकी कविता के राम लोकनायक हैं।[14] 'भक्ति काव्य की सामाजिक सांस्कृतिक चेतना' नामक पुस्तक में लेखक प्रेमशंकर 'राम मध्यकाल के जननायक' शीर्षक में लिखते हैं– मेरा विचार है कि तुलसी भक्ति के माध्यम से मध्यकाल के लिए जिस जीवन दर्शन की तलाश कर रहे थे, उसके व्यावहारिक पक्ष के लिए उन्होंने राम की सामाजिकता को बार–बार उजागर करने की चेष्टा की और अपने चरित्र नायक को अधिक से अधिक लोकोन्मुख किया। उनमें जो अलौकिकता है वह भी मध्यकालीन परिवेश की उपज है, पर राम की सामाजिकता को सामान्य जन स्वीकारते हैं, उन्हें अपना जननायक मानते हैं।[15] रामचरितमानस में ऐसे अनेक प्रसंग आते हैं, जब राम के पीछे जनसैलाब उमड़ पड़ता है। राम के दर्शन मात्र से गाँव–गाँव में आनद का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी लिखते हैं–

गाँव–गाँव अस होइ अनंदू।
देखि भानुकुल कैरव चंदू।।[16]

अर्थात् सूर्यकुलरूपी कुमुदिनी के प्रफुल्लित करने वाले चंद्रमा स्वरूप श्रीरामचंद्र जी के दर्शन कर गाँव–गाँव में आनंद हो रहा है। रामचरितमानस भारतवर्ष की सनातन परंपरा का एक बड़ा ग्रंथ है, जिसमें श्रीराम के विविध रूप भिन्न–भिन्न तरीके से वर्णित हुए हैं। क्योकि हरि अनंत हैं, इसलिए उनका वर्णन विश्लेषण करना सहज नहीं है। रामचरितमानस के पठन–पाठन से जीवन–जगत के अनेक रहस्यों का उद्घाटन होता है, ऐसा मेरा अनुभव है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी पुरुषार्थ चतुष्ट्य की संकल्पना भी विद्यमान है। मानवता के विकासक्रम एवं विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार इन पुरुषार्थों में परिवर्तन अथवा विकार भी आए हैं। बढ़ती भौतिकता एवं आधुनिकता ने कामनाओं का विस्तार किया है। फलतः विभिन्न रूपों में समाज, राष्ट्र एवं वैश्विक जीवन में विकार पैदा हो रहे हैं। आतंकवाद और विस्तारवाद की लालसा निरंतर बढ़ रही है। इस प्रकार की दूषित कामनाओं से मानवता के लिए निरंतर खतरा पैदा हो रहा है, ऐसे में इस बढ़ते काम तत्व के शमन के लिए राम तत्व ही एकमात्र साधन है। यह राम तत्व ही मानवता के सुख, समृद्धि एवं शांति का मार्ग है। जिसका विविध आयामी विवेचन विश्लेषण हमें आदिकवि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण और गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस में मिलता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रामायण, प्रथम कांड, प्रथम सर्ग
2. रामायण, प्रथम कांड, प्रथम सर्ग
3. रामायण, प्रथम कांड, प्रथम सर्ग
4. रामायण, प्रथम कांड, प्रथम सर्ग
5. रामायण, युद्ध कांड, 117 सर्ग
6. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, भक्तिकाल, प्रकरण 1

7. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, भक्तिकाल, प्रकरण 4
8. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, बालकांड
9. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, बालकांड
10. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, अयोध्याकांड
11. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, बालकांड
12. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, सुंदरकांड
13. मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, विद्यानिवास मिश्र
14. लोकवादी तुलसीदास, विश्वनाथ त्रिपाठी
15. भक्तिकाव्य की सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना–प्रेमशंकर
16. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, अयोध्याकांड

– असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

भोजपुरी लोकश्रुति परंपरा में राम कथा

प्रो. सुनील कुमार तिवारी

लोकजीवन एक जीवंत तथ्य है, जाग्रत अनुभूति है, प्रामाणिक संदर्भ है और निरंतर विकासोन्मुख चेतना है। जिस प्रकार पृथ्वी पर नानाविध और अनंत उत्पादन हैं, उसी प्रकार हमारे चतुर्दिक विस्तृत लोकजीवन का स्वरूप भी अपरिमित है। किसी देश की सभ्यता–संस्कृति, रीति–नीति, कला, काव्य, संगीत, धर्म–आचार, सामाजिक आकांक्षाओं और अभ्युदय का सूक्ष्म अवलोकन वस्तुतः लोकजीवन के गहन पर्यवेक्षण के बिना नहीं किया जा सकता। संसार के प्रत्येक क्षेत्र के ज्ञान–अनुभव–विचार, व्यवहार का आदि निवास लोककंठ में ही है। लोक ही निरंतर दैदीप्यमान आलोक है, जिसकी उपस्थिति में हम अपने बाहर–भीतर को भली–भाँति देख–पहचान सकते हैं। वस्तुतः लोक का प्राणी, समूह की वाणी में जीवन की भावस्थितियों को हमेशा ही प्रकट करता आया है, फलतः हमारी जितनी भी परंपराएँ–कथाएँ–विधाएँ हैं, उन सबका निहित बीज हम लोक–साहित्य में देख सकते हैं।

'राम कथा का वैदिक स्नायु मंडल' शीर्षक निबंध में कुबेरनाथ राय ने उचित ही प्रतिपादित किया है कि ''राम कथा के मुख्य स्रोत वैदिक साहित्य और आर्य–आर्येतर लोक–साहित्य रहे होंगे। इन्हीं में राम कथा के बीज निहित हैं।'' इस संदर्भ में भोजपुरी लोकगीतों को देखें तो वहाँ राम का वृत्त बहुत ही मुखर, व्यापक, विविधवर्णी, लोकजनीन, बहुवचनिक और बहुरंगे रूप में उपस्थित है। राम वहाँ आमजन की आशा–निराशा, हर्ष–विषाद, लाभ–हानि, संकल्प–विकल्प से घिरे–लिपटे मानव हैं, बहुत ढूँढ़ने पर भी वहाँ मर्यादा के प्रकाश–वृत्त में आप्लावित उनकी न कोई अभिजात मूर्ति मिलती है, न ही दैवत्व का दुर्लभ अभिधान प्राप्त होता है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के अनुसार ''लोक के विरोध में खड़ा होने वाला व्यक्ति रावण है, पर जो लोक में रम कर जल बने, बह जाए, वायु बने, सबको शीतल करे, वही राम है।'' वस्तुतः हिंदू, जैन, बौद्ध, ब्राह्मण, अब्राह्मण, आर्य–आर्येतर, भारत और भारत के बाहर, दक्षिण एशिया आदि में सर्वत्र राम और राम कथा इसी रूप में लोक विश्वास का अंग बनकर प्रतिष्ठित है। कोई भी कल्पित अभियानमूलक या आरोपित कथा इतनी व्यापकता और गहराई में सदियों तक लोक–स्मृति का अभिन्न हिस्सा हो ही नहीं सकती। लोकसम्मत राम शास्त्र– सम्मत राम के मुकाबले आमजन के ज्यादा करीब इसीलिए ठहरते हैं, क्योंकि उनमें मानवीयता की गहरी अनुगूँज मिलती है। मैथिलीशरण गुप्त कितना सटीक फरमाते हैं–

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है।।

भोजपुरी लोकसाहित्य में अभिचित्रित राम लोक–जन के प्रतीक हैं। फलतः राम कथा में वर्णित–चित्र हमारे आमजन के जीवन की आशा–अभिलाषा, सरलता, रोष, आशंका और हास–परिहास के समतुल्य हैं। एक प्रसिद्ध सोहर में चित्रित

प्रसंगों पर विचार कीजिए– राम का जन्म होने को है, कौशल्या आम स्त्री की भाँति पति दशरथ से पूछती हैं कि पुत्र जन्म की खुशी में आप क्या–क्या दान देंगे, क्या–क्या लुटाएँगे? दशरथ सर्वस्व लुटा देने की बात कहते हैं। राम का जन्म होता है। पंडित उनके 12 वर्ष के वनवास का भविष्य कथन कहते हैं। यह सुनकर दशरथ दुखी हो जाते हैं, पर राम के पुनः वन से लौट आने की बात कौशल्या को दुख सहने का धैर्य देती है। सबसे बड़ी प्रसन्नता कौशल्या के लिए यह है कि राम–जन्म से उनका बाँझपन छूट गया।

लोकमानस कैकेयी को लेकर आक्रोशित है और इसकी वजह कैकेयी का अशोभन व्यवहार है। इसी गीत में यह वर्णित है कि राम जन्म के उछाह में दशरथ जब पूरी अयोध्या लुटा देने की बात करते हैं तो कैकेयी सोच–समझकर राज जुटाने की चेतावनी देती है, क्योंकि भरत आधे के हकदार हैं।

राम वन के लिए प्रस्थान करते हैं और उन्हें रोकने हेतु बच्चों से धमार रचने को कहा जाता है, पर राम नहीं रुकते। कौशल्या का मातृ–हृदय चीत्कार कर उठता है। वे तत्क्षण बेर के वृक्ष से प्रार्थना करती हैं और बेर के काँटे राम की पगड़ी में फँस जाते हैं, जिससे राम कुछ देर के लिए रुक जाते हैं। माता बेर को आशीष देती हैं कि तुम्हारी जड़ पाताल तक जाए कि तुम्हें कोई उखाड़ नहीं सके। माता चकवा से पता पूछती है, वह बहाना करता है कि मैं तो अपनी प्रियतमा चकवी के साथ सोया था, पता नहीं, राम कब चले गए। दुखी होकर कौशल्या शाप देती हैं कि रात में तुम दोनों को एक–दूसरे के वियोग में तड़पना पड़ेगा। फिर वे धोबी–धोबिन से पूछती हैं। दोनों कहते हैं कि हम लोगों ने राम–लक्ष्मण की पगड़ी धो दी थी। माता प्रसन्न होकर आशीष देती हैं कि तुम बहुत से कपड़े धोओगे, लेकिन कभी किसी का एक भी कपड़ा इधर–उधर नहीं होगा। यानी स्मृति संपन्न होओगे। सोहर की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं––

ओबरिन बोलेली कोसिलारानी, सुनीं राजा दसरथ हो।
आहो, जहु घरे राम जनमिहेन, त काइ लुटाइबि हो।।
भले बउरइलु कोसिला रानी, काइ बउरावेला हो।
आहो, जहु घरे राम जनमिहें, त कूछो ना राखबि हो।।
सेर जोखि सोनवा लुटाइबि, पसेरी जोखि रूपवा हो।
आहो, सगरो लुजोधेया जुटाइबि कुछो ना राखबि हो।।
अधे राति गहले पहर राति, अवरू तीसर राति हो।
आहो, बाजे लागल अनंद बधावा, महल उसे सोहर हो।।
मोरा पिछुअरवा बिपर बसे बेगे चलि आबहु हो।
ए बिपर, खोलहु पोथिया पुरान, कवन लगने राम जनमले हो।।
रोहनी नछतरे राम जनमले, बहुत सुख पइहन हो।
आहो, बारहे बरिस राम होइहन, त बन के सिधरिहेन हो।।
अतना बचन राजा सुनलन सूनहिं न पावेले हो।
आहो, गोड़ मुड़ तनले चदरिया, सूतेले घर बाहर हो।।
सउरिन बोलेली कोसिला रानी छतिया दबा देइ हो।
आहो, छुटेले बंझिनिया के नाम, बलइया राम बने जास हो।।
ओबरिन बोलेली केकइया रानी, सूनु राजा दसरथ ए।
आहो, जानि बूझि अवध लुटाइबि, भरथ आधा चाहेले हो।।

****

कवन असीस हम दीहीं धोबिया, त जिआरा अनंद कएलऽ हो।
आहो, लदिआ धोइहऽ सौ साठ, साम सुधि राखहु हो।।

उपर्युक्त गीत में करुणा के साथ–साथ निस्संतानता की कसक, कैकेयी का अशोभन आत्मकेंद्रण और सद्भाव–सहयोग रखने वाले स्थावर–जंगम सबके प्रति कौशल्या की असीम कृतज्ञता की निर्मल लोक भावना प्रकट है। कहते हैं, बेर की जड़ पाताल तक रहती है, धोबी कभी किसी का कपड़ा नहीं भूलता तथा चकवा–चकवी दिन में तो साथ रहते हैं, पर उनकी रातें वियोग में ही व्यतीत होती हैं। इस जनविश्वास को जनमानस ने राम और कौशल्या से जोड़ दिया है।

रामायण के अनुसार दिन के ठीक बारह बजे अभिजीत मुहूर्त में राम जन्म लेते हैं, लेकिन निम्नलिखित सोहर में राम–लक्ष्मण का जन्म रात में होता है। अँधेरे के कारण जन्म संस्कार के विधान की वस्तुएँ मिल नहीं रही हैं, फलतः पुत्र प्राप्ति की खुशी में महँगी चीजों से उन विधियों को संपन्न करने की प्रतिज्ञा की जाती है। यहाँ एक बहुत ही सहज–स्वाभाविक हुलास का बड़ा ही प्रामाणिक दृश्य बनता है––

साँझहिं जनम लेले रामचंदर, आधी रात लखन हे।
ललना भोरहिं तीनों घर बाजेला बधइया महल उठे सोहर हे।।
साँझहिं रखनी हँसुअवा, हँसुअवा नाहिं मीलेला हे।
ललना, सोने के हँसुअवा से नार छीलब, राम जी जनम लिहले हे।।

एक अन्य सोहर गीत में राम के बाल–सौंदर्य की झाँकी के साथ कौशल्या के औदार्य का सुंदर वर्णन है। प्रस्तुत गीत में बालक राम की छोटी–छोटी लाल–लाल दोनों हथेलियों की उपमा दो लालों से दी गई है। राम के भव्य ललाट पर माणिक प्रकाशित हो रहे हैं। कौशल्या अपनी दोनों गोतनियों को पत्र लिखकर पुत्र को देखने का अनुरोध करती हैं। वे दोनों आ जाती हैं और उनके बैठने के लिए उचित आसन का प्रबंध किया जाता है, पर कैकेयी–सुमित्रा पहले राम को दिखाने का अनुरोध करती हैं और बच्चे को देखकर प्रसन्नता से वापस जाने के लिए प्रस्तुत हैं––

जब रघुनंदनन भुइयाँ लोटे, अवरू से भुइयाँ लोटे हो
ललना, हथवा में दुइ दुइ लाल, त लिलरा मानिक बरे हो।।

****

तोहरा उठवले नाहिं ऊठब, बइठवले नाहिं बइठब हो।
रानी, रामजी के देहु ना देखाइ, बिहँसि घरवा जाइब हो।।

लोक की आँखों में स्थित राम के इस सौंदर्यमंडित स्वरूप को तुलसी 'कोटि मनोज लजावनहारे' कहकर मंडित करते हैं। राम सौंदर्य के सिंधु हैं, वे बाहर–भीतर दोनों से सुंदर हैं –– *काम कोटि छबि स्याम सरीरा, नील कंज बारिद गंभीरा।*

एक दूसरे गीत में कौशल्या को राम जैसे पुत्र की प्राप्ति सूर्यनारायण की आराधना के फलतः बताया गया है। राम के सूर्यवंशी होने के लोक–प्रमाण के साथ–साथ सूर्य पूजा की प्राचीन लोक–परंपरा और पुत्र–प्राप्ति के अगणित उत्साह का यहाँ बड़ा ही लोकरंजक चित्र मिलता है। बीच–बीच में मार्मिक प्रसंग भी अनुस्यूत हैं। कौशल्या के पुत्र प्राप्ति की सूचना उनके पितृगृह को भेजी जाती है, पर नाई के संदेश पर सहज विश्वास न कर कौशल्या की माता अत्यंत मार्मिक वचन कहती हैं ––

मोर धिया लड़िका से बूढ़ी भइली, अवरू से बढ़ी भइली हो।
चेरिआ, मोर धिया नान्हें के बँझिनिआ, होरिला कहाँ पाई नू हो।।

अर्थात् "मेरी बेटी तो बूढ़ी हो गई। वह जन्म से ही बाँझिन है, उसे पुत्र की प्राप्ति कैसे हो सकती है।" वस्तुतः दशरथ का दर्पण में अपना श्वेत केश देखना, अवस्था ज्ञान और पुत्रहीनता का विक्षोभ यह संदर्भ तो मानस में वर्णित है, पर लोकगीत का यह संकेत कि रानी की भी उम्र हो गई है, फलतः लोक में वे बंध्या के रूप में जानी जा रही हैं। इस कारण कौशल्या की माता का नैराश्य जितना स्वाभाविक, मार्मिक और लोकानुभूत है, राम जन्म की प्रामाणिक सूचना के साथ उनकी

प्रसन्नता का चित्र भी उतना ही वास्तविक और सजीव है। नापित कहता है–

रानी, रउरा भइले दीनदयाल, जनमले रघुनंदन
हो।

राम सामान्य बालक नहीं हैं। एक दीन के हृदय का यह गहरा लोकविश्वास है कि रघुनंदन जन्मजात दीनदयाल हैं। तुलसी भी कहते हैं–

भए प्रकट कृपाला–दीनदयाला।

संदेशवाहक प्रसन्न होकर अयोध्या लौटे, उसने धन्य–धन्य कर देने वाली खबर दी है। कौशल्या के पिता से उनकी माँ का अनुरोध इस रूप में प्रकट है–

ए राजा, देई दीं ना हाथी से घोड़ा, लोचन
नउआ लावेला हो।
ए राजा, देई दीं ना पाँचों टुक कपड़वा त
होई जाई नू हो।।

रामवतार के हेतु और दशरथ द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ के संपादन को मानसकार अपने कथन में जिस तरह शामिल करते हैं, लोकगीत उसके पीछे सामान्य व्रत को हेतु बताकर लोक सहजता और लोकोपलब्धता पर बल देते हैं। पुत्र सबको चाहिए और सुशील, सुंदर, गुणवान, शीलवान पुत्र ही चाहिए, पर आमजन पुत्रेष्टि यज्ञ तो नहीं करा सकते, कदाचित यही यथार्थता, यही सोच राम जन्म के मूल में कौशल्या की सूर्य पूजा और एकादशी व्रत के महत्व–निरूपण की वजह हो––

मोहिं तोहिं पूछिला कासिला रानी अवरू
सुमितरा रानी हो।
ऐ बहिनी, कवन बरत रउरा कइनीं, रमइया
फतवा पाइला हो।।
बरत में कइलीं एकादशी, दोआदसी के पारन
हो।
एक खलना, विधि से कइलीं अतवरवा, रमइया
फलवा पाइला हो।।

ऐसे और भी कई गीत हैं, जिसमें रामजन्म को लेकर लोकमानस ने ऐतिहासिक तथ्य से भिन्न घटनाओं की चर्चा की है। एक गीत में एकादशी व्रत, सूर्य भगवान की आराधना, ब्राह्मण भोजन, माघ स्नान तथा अग्नि तप जैसे व्रतों का महत्व वर्णित है। कौशल्या से स्त्रियाँ पूछती हैं कि इतना सुंदर बालक राम किसकी कृपा के सुफल हैं। कौशल्या बड़ी श्रद्धा और प्रेम से अपनी तपश्चर्या को रेखांकित करती हैं ––

कातिक कइलीं एकादसी दोआदसी के पारन
हो।
ललना, अगहन कइलीं एतबार, त राम फल
पइलीं हो।।
माघहिं मास नेहइलीं अगिन नाहिं तपलीं हो।
बहिनी, बइसाख मास बेनिया ना डोलइलीं,
त राम फल पइलीं हो।
बहिनी भूखल बाभन जेवइलीं न राम फल
पइलीं हो।।

वस्तुतः लोक प्रतीति तो यही है कि रामफल प्रयत्न साध्य है, तपः पूत राम कौशल्या के व्रत–तपनिष्ठ आचरण, तप से अवतीर्ण हैं। इस तरह, लोक दृष्टि कर्म–साधना में अपनी निष्ठा अभिव्यक्त कर रही है। केवल मंत्रविद्ध फल खाने से राम नहीं प्राप्त होते। राम को पाने के लिए रमना पड़ता है। साधना में गहरे उतरना पड़ता है।

एक अन्य गीत में स्वयं राजा दशरथ पुत्रजन्मोपरांत अपनी बड़ी रानी से पूछते हैं कि तुमने कौन–सा व्रत किया, जिसके फलतः तुम्हें राम जैसे पुत्र–रत्न की प्राप्ति हुई?

सभवा बइठल राजा दसरथ, मचिया कोसिला
रानी हो।
रानी, कवन बरत तुहूँ कइलू, त राम फल
पावेलू हो।।

कौशल्या ने जो उत्तर दिया, उससे उनकी गहन साधना, दयालुता, उदारहृदयता और आदर्श भारतीय नारी का कर्त्तव्यपूर्ण स्वरूप उजागर होता है– ''मैंने एकादशी व्रत करके द्वादशी में पारण किया, विधि–विधान के साथ रविवार का व्रत किया, सास और जेठ का पूर्ण सम्मान किया तथा सास द्वारा पूजा के लिए लीपे हुए स्थान को न धाँगा और न जेठ (भसुर) की परछाईं तक का स्पर्श किया। नंगे को वस्त्र दिया और भूखे भानजे को खाना खिलाकर तृप्त किया, रूठी हुई ननद को मनाया, भूखे और दुखी लोगों का ख्याल किया,

जिससे राम जैसे पुत्र–रत्न को पाने का फल प्राप्त किया–

सासु के लिपल नाहिं धँगलीं, भसुर परछाँहि
ना हो।
राजा, रूसल ननदी मनवलीं, त राम फल
पाइला हो।।
भूखा दुखा हम मानिला, लंगटा के बस्तर हो।
राजा, भूखल भगिना जेववलीं, त राम फल
पाइला हो।।

दरअसल, लोकगीतों में निर्वंशता–निःसंतानता एक अभिशाप की तरह अभिचित्रित है और इससे जुड़ी समाज की मान्यताओं के भी प्रामाणिक संदर्भ मौजूद हैं। एक गीत में वर्णित है कि राजा दशरथ का मुँह प्रातःकाल एक मेहतरानी देख लेती है, पर वह महाराज के दर्शन से स्वयं को धन्यभाग या प्रसन्न न महसूस कर उदास हो अपने पति से शंका प्रकट करती है कि आज सुबह–सुबह निःसंतान का मुँह देख लिया है, पता नहीं दिन कैसा कटेगा? उधर उसकी यह बात दशरथ के कानों में जा पड़ती है, फलतः राजा ग्लानि से भर उठते हैं। दशरथ की उदासी देखकर कौशल्या कारण पूछती है और कारण जानकर सुपुत्र प्राप्ति हेतु व्रत, आराधना, नियम–निष्ठा में अपने को पूरी तरह झोंक देती है। शीघ्र ही पुण्य लाभ मिलता है और पुत्रोत्सव की धूमधाम सर्वत्र छा जाती है। ऐसे अवसर पर कौशल्या, राजा से उस दलित स्त्री को सम्मानित करने का जो मनुहार करती हैं, वह कौशल्या की नम्रता, औदार्य, सजगता और स्नेहशीलता का परिचायक है––

कइसे के उठीं हम कोसिला रानी, हमरा बड़ा
सोच बाटे हो।
आरे नीचहिं जात के हेलनिया, हमें निरबंसिया
कहे हो।।
आरे कोसिला के भइले राजा रामचंदर, सुमितरा
के लछुमन हो।
आरे, केकई के भरत भुआल, तीनों रे घरे
सोहर हो।।
ओबरी से बोलेली कोसिला रानी, सुनीं राजा
दशरथ हो।
ए राजा, सोने के तिलरिया गढ़ाईं, हेलनिया
पहिरावहु हो।।

कौशल्या पुत्र प्राप्ति के लिए कोई भी प्रयत्न नहीं छोड़ती हैं। वे गंगा की आराधना करती हैं कि यदि मुझे पुत्र की प्राप्ति होगी तो एक सहत्र मुनियों को निमंत्रित करूँगी और उनका जूठन बटोरूँगी–

ए गंगाजी, एक सहसर मुनि नेवतबि जूठन
बटोरबि हो।

उन्हें निश्चित समय पर पुत्र की प्राप्ति होती है, मुनियों और गोतिया लोगों को निमंत्रित करते–करते राजा दशरथ के पाँव घिस जाते हैं, कौशल्या का आँचल जूठन बटोरते–बटोरते धूमिल हो जाता है और गोतनियों के माँग में सिंदूर भरते–भरते उनकी उँगली घिस जाती है–

राजा दसरथ के पइयाँ खिआइ गइले मुनि
लोग नेवतत हो।
ए ललना कोसिला के अँचरा धूमिल भइले,
जूठन बटोरत हो।।
राजा दशरथ के पउआँ खिआइ गइले गोतिया
बटोरत हो।
ए ललना, कोसिला के चुटकी खिआइ गइले,
गोतनी बहोरत हो।।

संतान प्राप्ति के लिए आज बड़े–बड़े विज्ञापन दिखते हैं, तकनीक का प्रचार दिखता है, पर समाज से न तो अभी तक निस्संतानता का दंश मिटा है, न ही हृदय की वह टीस ही खत्म हुई है। इस स्थिति में मौजूद हम अपने कई नाते–रिश्तेदार और मित्रों को याद कर सकते हैं और बार–बार इस गीत को अपने भीतर गूँजता हुआ पाते हैं।

वस्तुतः लोकगीतों में राम विशिष्ट और आम के बीच लगातार आवाजाही करते हैं। तुलसी भी अपनी कथा में इसी शैली को अपनाते हैं। राम की साधारणता बनी–बची रहे, इस पर उनका पूरा बल है, पर जहाँ–जहाँ उनका दास्य भक्त जागता है, वह लोक को चेताता है कि राम की लीला को मानव की सामान्य संसारी चेष्टा मत समझ लेना, राम साक्षात् ब्रह्म हैं।

लगातार एक–दूसरे के आगे–पीछे सामान्यता और देवत्व का आरोपण प्रायः लोकगीतों में द्रष्टव्य

है। राम तारकनाथ हैं, राम नाम तारक मंत्र है– लोक में इस सहज विश्वास की जड़ बड़ी गहरी है।

जहाँ जहाँ राम मोरे नहइहें, तऽ धोतिया सुखइहें
नू हो।
ए ललना, तहाँ तहाँ पापी लोग नहइहें, सेहो
रे तरि जइहें नू हो।।

यानी जहाँ–जहाँ राम स्नान करेंगे और धोती सुखाएँगे, वहाँ कोई पापी अगर स्नान करेगा, तो उसे भी मुक्ति मिल जाएगी।

कुछ गीतों के अंत में काव्य के 'शिवेतरक्षतयेते' के आदर्श के अनुगमन का निर्देश भी मिलता है कि जो इस गीत को गाती या गाकर सुनाती हैं, उनका सौभाग्य जन्म–जन्मांतर तक अच्छा रहता है और पुत्र–फल की प्राप्ति होती है––

इहे मंगल जे गावेला, गाइ के सुनावेला हो।
ए ललना, जनम जनम एहबात पुतर फलवा
पावेला हो।।

मूलतः राम कथा जिजीविषा, करुणा और अभय की गाथा है, जिसकी पुष्टि में कई लोकगीत रखे जा सकते हैं। एक गीत में प्रियतम के प्रति प्रियतमा की चरम आसक्ति का बड़ा ही कारुणिक संदर्भ मिलता है। रामायण, रामचरितमानस आदि में ऐसी कथाएँ नहीं मिलती, पर लोक–कल्पना से जो प्रादुर्भूत है, वह अद्‌भुत है।

राजा दशरथ की रानी गर्भवती है। उन्हें हिरण का माँस खाने की इच्छा होती है। फलतः शिकारी वन में भेजे जाते हैं। हिरणी बहेलिया से हिरण को छोड़ देने की प्रार्थना करती है, पर कोई सुनवाई नहीं होती। हिरणी हिरण से अपनी आशंका जाहिर करती है, पर हिरण यह कहकर कि 'मेरा हरिआइन माँस कोई नहीं खाएगा' सांत्वना बँधाता है। पर ऐसा होता नहीं, शिकारी हिरण को मार देते हैं। हिरणी पीछे–पीछे कौशल्या के पास जाती है और प्रार्थना निवेदित करती है कि "रानी जी जिस हिरण का माँस आपके यहाँ बन रहा है, उसकी खाल मुझे देने की कृपा करें।" रानी यह कहकर कि राम उस खाल से खँजड़ी और ढोलक मढ़ँवाकर बजाएँगे, खाल सौंपने से मना कर देती हैं। निराश होकर हिरणी वन में लौट जाती है, पर उसका यह मार्मिक कथन हर किसी के दिल को बेंध देता है–

आँगन सून चउकिया बिना, मंदिल दियरा
बिना हो।
ललना, ओइसन सून बिरदाबन, एक रे हिरना
बिना हो।।

हिरणी सोचती है, अगर मेरे हिरण की खाल मुझे मिल जाती तो उसे पेड़ पर टाँग देती। घूम–घूमकर चरती और उस खाल को देख–देखकर अपने हृदय को शांत करती ––

अपन खलड़िया जहुँ हम पइतों, त पेंड़ टाँगि
दिहतो हो।
ललना, घुरुनि घुरुनि वन चरतों, त जिअरा
बुझइतों नू हो।।

आज के स्मृतिविहीन समय में यादों के सहारे संतोष अर्जित करने की सोच सचमुच चकित करती है और लोक की गहन अनुभूति–प्रवणता मन को मोह लेती है।

इसी भावभूमि की तर्ज पर किंचित परिवर्तन के साथ उपर्युक्त गीत के कई अन्य संस्करण भी उपलब्ध हैं। एक अन्य गीत में हिरणी की प्रार्थना को रानी स्वीकार ही नहीं करतीं, वरन् पुरस्कार देने का वचन भी देती हैं––

सोनवे मढ़इबो दुनो सींगिआ, भोजनिया
तिलचाउर हो।
हरिनी, भुभूतऽ जंगल बीचे राज, हरिनवा
नाहिं मारबि हो।।

यहाँ पूर्वार्द्ध का थीम वही है, पर उत्तरार्द्ध कौशल्या के स्वार्थी रूप को नहीं दिखाता। इस गीत में प्रेम, करुणा और दया का उत्कृष्ट सम्मिश्रण हुआ है।

कुछ लोकगीत प्रचलित राम कथा से पूर्णतया विलग कथा को लेकर चलते हैं, जहाँ लोकमन की कल्पना और साहस पर अचरज होता है। एक गीत में सीता निष्कासन के बदले राम का गृहत्याग, सीता का उनकी खोज में जाना, पुनः दोनों का मिलन, मानिनी सीता का मान तथा राम द्‌वारा पुनः गृहत्याग करने की धमकी का उल्लेख हुआ है––

अइसन बोली जनि बोलऽ, त तुहूँ मोर सीता हो।
सीता, फेरू से जाइबि मधुबनवा, लवटि नाहिं आइबि हो।।

एक–दूसरे गीत में लोकमानस ने राम वनगमन का सारा दोष कैकेयी के माथे से हटाकर सीता के सिर पर थोप दिया है। सीता का मन अयोध्या में नहीं लगता। हमेशा जनकपुर की याद आती है। राम से भी वे कटी–कटी रहती हैं, नहीं बोलतीं। सब चिंतित हैं, अंत में राम असहाय हो सीता से कहते हैं कि ''सीता, तुम अयोध्या के राज का उपभोग करो, मैं वन को चला।''

डासत सेजिया उड़ास देलि, हमसे ना बोलेली हो।
ए सीता, भुभुतऽ अजोधेया के राज, त हम चलली बने नू हो।।

एक अन्य गीत में भी सर्वविदित एवं प्रचलित कथ्य के विपरीत वर्णन है। यहाँ राम सीता को अयोध्या में छोड़कर वन जाते हैं और माँ से सीता की देखरेख की प्रार्थना करते हैं। कौशल्या स्पष्ट कह देती है कि अगर सीता मेरे कथनानुसार चलेगी तो मैं यथेष्ट सत्कार करूँगी। सीता राम से पूछती हैं, ''जिस प्रकार बिना केवट की नाव का क्या ठिकाना, उसी प्रकार पति के बिना स्त्री का स्थान कहाँ है?'' राम उत्तर देते हैं, ''बिना केवट की नाव जाते–जाते समुद्र में लगेगी, उसी प्रकार पतिविहीन स्त्री का ठिकाना उसके पिता के घर (नैहर) है।'' सीता कुछ ही दिनों में नैहर के लोगों के बदले हुए व्यवहार को जान लेती हैं और विह्वल होकर सोचती हैं कि किसी भाँति राम यदि घर में रह जाते तो पास रहती, रानी कहलाती ––

आरे, कइसहुँ राम घर रहितें, रनिया कहइतीं, जइतीं घरवा आपन हो।

सीता वनवास की कथा रामचरितमानस में नहीं है, पर लोकगीतों में तो नवीन उद्भावनाओं की झड़ी–सी लगी है। एक गीत के अनुसार सीता वनवास में भयभीत हैं कि प्रसवकाल में कौन संभालेगा? वनदेवी आगे बढ़ देखरेख करती हैं। पुत्रोत्पत्ति की खबर के साथ सीता संदेशवाहक को हिदायत देती हैं कि राम को कुछ नहीं बताना। पर संयोग से संदेशवाहक को सबसे पहले पोखरे पर दतवन करते राम ही मिल जाते हैं और सीता का आदेश भी जान लेते हैं। सभी सीता के संदेशवाहक को भली–भाँति पुरस्कृत करते हैं। यह गीत बहुत ही कारुणिक है। इसमें राम की मानसिक दशा का अनुमान सहज ही किया जा सकता है––

दशरथ चढ़े के घोड़वा, कोसिला देली पियरी नू हो।
आरे, बाबू लछुमन हाथू के मुनजरिया, त राम जनि देखसु हो।।

सीता निष्कासन की प्रचलित कथा से विलग वर्णन वाले भी ढेरों गीत मिलते हैं। एक गीत में राम संतान नहीं होने के कारण सीता को वन में निष्कासित कर देते हैं, पर संदेशवाहक द्वारा खबर को राम से छुपाए जाने के बावजूद पोखरे पर उन्हें पुत्रोत्पत्ति की सूचना मिल जाती है तो बड़ी बेचैनी में राम सीता के पास पहुँचकर घर लौटने का आग्रह करते हैं। वनदेवी भी सीता को समझाती हैं, पर सीता का स्त्री स्वाभिमान अनुमति नहीं देता––

ललना हम न सहब सामी बात, धरती तर समायेब हो।

इस गीत में राम पोखरे पर दतवन करते जनसाधारण की तरह चित्रित हैं और दूसरी ओर धोबी के व्यंग्योक्ति के बदले पुत्रवती नहीं होने के कारण सीता का निष्कासन वर्णित है।

एक अन्य गीत में सीता का स्वाभिमान और गुरुभक्ति वर्णित है। राम किसी मतभेद के कारण सीता का वन–निष्कासन कर देते हैं, पर एक यज्ञ के आयोजन हेतु सीता का वापस बुलाना आवश्यक हो जाता है। राम समस्या लेकर गुरु वशिष्ठ के पास जाते हैं और गुरु वशिष्ठ वन में आकर सीता को समझाते हैं। गुरु के कहने पर सीता लौटने को तैयार हैं, लेकिन उन्हें शंका है कि जब राम की बातों का स्मरण आएगा, तब वहाँ रहना कैसे संभव होगा? सीता राम के व्यवहार से कितनी मर्माहत हैं, देखिए–

कहल करबो ए गुरु कहल करबो, रउरो कहल करबो हे।
गुरुजी राम के कहल मनवा परिहेन, अजोधा में ना रहबि हे।।

राम के कटु व्यवहार के आगे सीता जैसी पतिपरायणा नारी का ऐसा कथन अनुचित नहीं जान पड़ता, बल्कि पुरुष–प्रधान समाज की प्रताड़ना का प्रामाणिक वृत्त बनता है। हमारा स्त्री विमर्श पश्चिम की ओर दौड़ लगाएगा, पर लोक में मौजूद ज्ञानराशि से मुँह फेर लेगा ——

जनि कहीं ए गुरुजी जनि कहीं, केहु कहेले नू हो।
गुरुजी लागेला करेजवा में आग, त धरती सरन दीहें हो।।

सीता के मन में कितनी गहरी टीस है, एक अन्य गीत में इसकी झलक इस तरह है ——

ए गुरुजी पाँच डेग अजोधेया में जाइबि, फेरू चलि आइबि हो।

गुरु का मान भी बचे और अपना स्वाभिमान भी बचे। सीता बीच का रास्ता लेती हैं। वे अयोध्या जाने को राजी होती हैं, पर केवल पाँच कदम चलकर वे वापस लौट जाएँगी।

कुल मिलाकर राम से संबद्ध लोकगीतों में लोकजीवन के सभी पहलुओं को सम्मिलित किया गया है। इस चित्रफलक में लोकप्रचलित नीतिवाक्य, अंधविश्वास, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, रीति–रिवाज, लोकानुभूति, पशु–पक्षी, कीट–पतंग, खेती–बारी सभी तत्व सम्मिलित हैं।

भोजपुरी लोकजीवन का राम के साथ अटूट नाता उनके लोकगीतों में पूरी तरह निबद्ध है। दरअसल, पूर्वांचली समाज का कोई प्रतीक पुरुष है, तो राम हैं। कोई ऋतु है तो बसंत, जिसमें रामनवमी आती है, कोई त्योहार है तो दीपावली, जिस दिन राम अयोध्या लौटते हैं, कोई लोकनाट्य है तो रामलीला, जिसमें राम बड़े ही स्वाभाविक और आत्मीय रूप में उपस्थित होते हैं। इन्हीं प्रतीकों और उपकरणों से भोजपुरी लोकजीवन और संस्कृति की पहचान बनती है।

वस्तुतः हर भाषा–बोली में शास्त्र से विलग होकर लोक ने अपनी उद्भावनाओं और कल्पनाओं की इतनी वृहत् यात्रा की है, इतना सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया है, स्वानुभव की प्रामाणिकता के साथ जिस भाँति सहजता और सरसता की भावधारा बहाई है कि हमें यह स्वीकारना होगा कि यही हमारी वास्तविक थाती है। आज आश्चर्य होता है, साधारण जन की उस अक्षय शक्ति पर, जो देवता को भी अपने वृत्त में बाँधने में समर्थ है।

– प्रोफेसर, शहीद भगत सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

निराला के राम

(निराला कृत ‘राम की शक्तिपूजा’ के विशेष संदर्भ में)

डॉ. अभिषेक शर्मा

छायावादी कवि श्री सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’ को याद करते ही मन में जो पहली छवि उभरती है, वह संघर्षरत आम आदमी की है। छायावादी कवियों में उनका वैयक्तिक और सामाजिक जीवन सर्वाधिक दुश्वारियों, विसंगतियों एवं चुनौतियों से भरा रहा है। इसका प्रमाण हमें उनकी कविता ‘जूही की कली’ से लेकर ‘पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है’ में मिलता है। ‘निराला’ के जीवन संघर्षों को समझने के लिए उनकी सरोज स्मृति, राम की शक्तिपूजा, कुकुरमुत्ता और तुलसीदास जैसी लंबी कविताएँ एक महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। अर्थाभाव और परवरिश की कमी के कारण अपनी ही बेटी के अवसान पर वे आहत मन से लिखते हैं कि– *धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,/कुछ भी तेरे हित न कर सका।/जाना तो अर्थागपोमाय,/पर रहा सदा संकुचित–काय/लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर/हारता रहा मैं स्वार्थ–समर। ...मुझ भाग्यहीन की तू संबल/युग वर्ष बाद जब हुई विकल,/दुख ही जीवन की कथा रही,/क्या कहूँ आज, जो नहीं कही!*[1]

‘निराला’ के दुखात्मक जीवन का यह चित्र आगे की रचनाओं में गहन से गहनतर होता चला गया है, जिसका चरमोत्कर्ष हमें ‘राम की शक्तिपूजा’ कविता में दिखाई पड़ता है। निराला साहित्य के आधिकारिक विद्वान रामविलास शर्मा लिखते हैं कि– तुलसीदास से मिलती–जुलती कविता ‘राम की शक्तिपूजा’ है। पहली रचना में राम चरित्र के निर्माता कवि तुलसीदास का चित्रण था, इस कविता में राम ही हैं। पहली कविता में उन्होंने मध्यकालीन समाज का सत्य दिया था, इस कविता की पृष्ठभूमि पौराणिक है परंतु उसका सत्य कवि के इसी जीवन का है। *धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध* यह पंक्ति पूरी कविता का सूत्र है। कहना न होगा कि यह पंक्ति स्वयं कवि के जीवन पर खूब घटित होती है।[2]

कवि सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’ कृत ‘राम की शक्तिपूजा’ की रचना 23 अक्तूबर 1936 ई. के आसपास हुई थी, जबकि इसका प्रकाशन संभवतः 26 अक्तूबर, 1936 ई. के ‘भारत’ (दैनिक, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश) में हुआ था। संपूर्ण कविता महाकाव्योचित औदात्य से संपन्न तथा पग–पग पर मानव जाति को घोर निराशा में भी संघर्ष की प्रेरणा देती है। कई अर्थों में यह कविता निराला के अपने ही जीवन संघर्षों की प्रतिध्वनि जान पड़ती है। भारतीय समाज में यह लोक चर्चा का विषय रहा है कि ‘तुलसी’ के रोम–रोम में ‘राम’ समाहित हैं। राम के प्रति तुलसी की अनन्यता असंदिग्ध है। आज की युवा पीढ़ी तुलसी से सैकड़ों वर्ष दूर है और बहुत सी सत्य बातों को भी लोग अब कपोलकल्पित मान बैठे हैं। किंतु ‘निराला’ हमसे अभी बहुत दूर नहीं हैं। तुलसी के ‘राम’ का ईश्वरत्व उनका पीछा कभी नहीं छोड़ता है। किंतु निराला के ‘राम’ तुलसी के ‘राम’ से कई अर्थों में भिन्न हैं। अपने महत्वपूर्ण लेख ‘तुलसी के राम’ में

प्रसिद्ध आलोचक 'डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी' 'राम' का व्यक्तित्व–विश्लेषण करते हुए लिखते हैं कि– "तुलसी के राम हैं ब्रह्म, किंतु मानुष रूप में लीलाधारी हैं। मनुष्य हैं, किंतु मानवीय गुणों में मानवातीत हैं। मानवातीत होने का मतलब यह है कि वह मानवीय गुणों में मनुष्य की सीमा को लाँघ जाते हैं। राम जैसे मानवीय गुणसंपन्न मनुष्य मिलना असंभव है। वे ब्रह्म हैं– सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान। ऐसी संज्ञा जब मनुष्य रूप में है, तो उनका समूचा ब्रह्मत्व ही वस्तुतः मनुष्य के रूप में आचरण करता है। इस तर्क से तुलसीदास के राम मनुष्य होते हुए भी मनुष्य नहीं हैं।"[3] अपनी कविताओं में 'निराला' लोकरुचि को लेकर बहुत सजग थे। इसके पीछे की प्रमुख वजह उनके प्रति लगातार हो रहे साहित्यिक विरोध थे। वे जानते थे कि 'राम' एक पौराणिक पात्र हैं और भारतीय जनता के हृदयहार भी हैं। उन्हें यह भी मालूम था कि उनकी उक्त कविता भविष्य में साहित्यिक मनीषियों के बीच बहस का हिस्सा भी बनेगी। यही कारण है कि निराला 'राम' के पौराणिक चरित्र को अपनी कविता में लोकमानस के बिल्कुल करीब लाए। उनकी इस रचना में जगह–जगह बंगाली संस्कार भी ध्वनित होता है। नंदकिशोर नवल जैसे प्रमुख विद्वानों का मत है कि 'राम की शक्तिपूजा' पर सर्वाधिक प्रभाव बंगाल के लोककवि कृत्तिवास कृत रामायण का है। निश्चय ही उक्त सभी प्रसंग काव्य रचना के दौरान निराला के मन में उमड़–घुमड़ रहे होंगे। थोड़ा और पीछे चलें तो हमें पता चलता है कि पौराणिक या ईश्वरीय पात्रों को लोक जीवन के निकट लाने का प्रयास धीरे–धीरे भारतीय कवियों द्वारा शुरू हो चुका था। इस संदर्भ में हमें जगन्नाथदास 'रत्नाकर' याद आते हैं। इनकी ख्याति का मूलाधार 'उद्धव शतक' महाकाव्य है। इससे पूर्व ब्रज भाषा में ही श्रीकृष्ण के जीवन चरित को आधार बनाकर सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य 'सूरसागर' भक्त कवि सूरदास द्वारा लिखा जा चुका था। ध्यातव्य बात यह है कि इन दोनों महाकाव्यों में (रामचरितमानस एवं सूरसागर) तुलसी के 'श्रीराम' और सूरदास के 'श्रीकृष्ण' ईश्वरत्व से सर्वथा मुक्त नहीं हो पाए हैं, बल्कि कभी–कभी तो कवि सायास पाठकों को उनके ईश्वरत्व की याद भी दिलाता है। लेकिन 'रत्नाकर' कृत 'उद्धव शतक' के श्रीकृष्ण विशुद्ध लोक सेवक के रूप में मानव जाति की सेवा करते हैं। वस्तुतः भगवान श्रीकृष्ण के चरित्रांकन में कवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की यह एक मौलिक उद्भावना है, जिसका प्रभाव हमें आगे आने वाले रचनाकारों पर भी दिखाई पड़ता है। कवि निराला भी अपने 'राम का चरित्रांकन युगानुरूप ही करते हैं। उनके राम भी विषम परिस्थितियों में साधारण मनुष्य की तरह निराश और भयभीत होते हैं। कवि निराला अपनी कविता के लिए 'राम' के जीवन के सर्वाधिक चुनौतीपूर्ण कालखंड– 'राम–रावण युद्ध' को चुनते हैं। 'राम की शक्तिपूजा' की रचना के पीछे निराला का मूल उद्देश्य जनसाधारण में संघर्ष की भावना का प्रसार और आत्मावलोकन का भाव है। यही कारण है कि कविता की शुरुआत सीधे युद्ध से होती है, न कि राम की राजसी पृष्ठभूमि से निराला सर्वहारा वर्ग के जीवन में व्याप्त अहर्निश संघर्ष और दुखों के चित्रण के बहाने भगवान श्रीराम को लोकजीवन की गतिविधियों से संपृक्त करते हैं और कही–न–कहीं अपने जीवन संघर्षों को भी राम में आरोपित करते हैं। इस संदर्भ में आलोचक रामविलास शर्मा लिखते हैं कि– "राक्षस, वानर, लंका, समुद्र तट यह सब एक विशाल सेटिंग मात्र है, वास्तविक संघर्ष राम के हृदय में है। वह शक्ति की साधना कर रहे हैं और प्रश्न यह है कि वह विजयी होंगे या नहीं। 'तुलसीदास' में कवि एक हद तक तटस्थ है, 'राम की शक्तिपूजा' पर कवि के अपने व्यक्तित्व की छाप है।"[4] 'राम की शक्तिपूजा' में राम की निराशा, पराजय या अपमान का भाव, शक्तिहीनता एवं किंकर्तव्यविमूढ़ता के सभी दृश्य ईश्वरत्व से नहीं अपितु, मनुष्यत्व से मेल खाते हैं। इन्हीं कारणों से 'राम की शक्तिपूजा' में निराला की आत्मछवि के अंकन का भी आरोप लगता है। पूरी कविता में निराला के 'राम' न तो कहीं ईश्वर जैसे प्रतीत होते हैं और न ही उनके कार्य–व्यवहार में कोई अलौकिकता दिखाई पड़ती है। 'भगवान श्रीराम'

का मनुष्यत्व में लीन होना, सत्य की रक्षा और स्त्री जाति की मुक्ति के लिए प्रयत्नशील होना, उन्हें एक आदर्शवादी युवा चरित्र की सहजता एवं कर्तव्य परायणता से भर देता है। संघर्ष के समय में भी युद्ध की गरिमा का ख्याल रखना, नैतिकता का पालन करना और मानवीय धर्म की रक्षा के लिए साधारण मनुष्य की तरह चिंतित होना निराला के 'राम' की सबसे बड़ी खूबी है। अपनी युद्धरत सेना से संध्याकालीन मंत्रणा में 'राम' कहते हैं कि– "निज सहज रूप में संयत हो जानकी–प्राण/बोले– आया न समझ में यह दैवी विधान,/ रावण, अधर्मरत भी, अपना, मैं हुआ अपर– /यह रहा शक्ति का खेल समर, शंकर शंकर!/...देखा, है महाशक्ति रावण को लिए अंक/लांछन को ले जैसे शशांक नभ में अशंक,/...फिर मधुर दृष्टि से प्रिय कपि को खींचते हुए/बोले प्रियतर स्वर से अंतर सींचते हुए–/चाहिए हमें एक सौ आठ, कपि, इंदीवर, /कम–से–कम अधिक और हों, अधिक और सुंदर/ जाओ देवीदह, उषःकाल होते सत्वर/ तोड़ो, लाओ वे कमल, लौटकर लड़ो समर।"[5] निराला के 'राम' की इस अपराजेयता को हम कवि या आम जन की अपराजेयता मान सकते हैं। 'निराला' के विराट व्यक्तित्व पर विचार करते हुए आलोचक 'रामविलास शर्मा' लिखते हैं कि– "निराला को यथेष्ट मान–सम्मान मिला। कारण यह कि लाख विरोध के बावजूद वे अपनी ही लीक पर चले। आप चाहें तो रचनात्मक अंशों में इस तत्व को नोट कर लें कि निराला अपनी कला के प्रति हमेशा सच्चे रहे, इसीलिए उन्हें इतना नाम और यश मिला।"[6] निराला कृत 'राम की शक्तिपूजा' का समापन देवी आराधना, शक्ति–संधान और विजय की आशा के साथ होता है। कविता के अंत में निराला के 'राम' सर्वसाधारण को यह संदेश देना चाहते हैं कि, सच्चे संघर्षों से मनुष्य मज़बूत होता है। मानवीय संघर्षों की सार्थकता जीवों की रक्षा और सत्य की स्थापना में ही निहित है। वस्तुतः यही भगवान श्रीराम का वास्तविक लोक चरित्र है, जिसमें सिर्फ निराला ही नहीं अपितु, हम सब समाहित हैं। 'राम की शक्तिपूजा' में साधारण मनुष्य की तरह राम का संघर्ष करना युवाओं के लिए सर्वथा अनुकरणीय है। यही कारण है कि कवि निराला की भगवान श्रीराम विषयक 'पुरुषोत्तम नवीन' की अवधारणा उन्हें संघर्षशील मनुष्यों के प्रतिनिधि पात्र के रूप में स्थापित करती है। विवेच्य कविता में लोकरंग में रंगे निराला के 'राम' का स्पष्ट मंतव्य है कि इतिहास विधाता उसी के पक्ष में है जो सत्यान्वेषी, सहिष्णु और परोपकारी है। इस संदर्भ में 'राम की शक्तिपूजा' का अंतिम अंश यहाँ विशेष रूप से अवलोकनीय है–

> *साधु, साधु, साधक धीर, धर्म–धन धन्य राम!*
> *कह लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम।*
> *देखा राम ने– सामने श्री दुर्गा, भास्वर*
> *वामपद असुर–स्कन्ध पर, रहा दक्षिण हरि पर,*

***

> *मस्तक पर शंकर। पद्पद्मों पर श्रद्धाभर*
> *श्री राघव हुए प्रणत मन्दस्वर वन्दन कर।*
> *होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन।*
> *कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन।*[7]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, रामवीर (सं) : आधुनिक काव्य संग्रह, षष्ठ संस्करण–2013 ई. पृ. सं.: 74–82, प्रस्तुतकर्ता : केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, प्रकाशक : विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी– 221001, मूल्य– ₹180 (अजिल्द)।

2. शर्मा, रामविलास : निराला, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1991, छठी आवृत्ति : 2011, पृ. सं. –94, प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 7/21, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, मूल्य– ₹250 (सजिल्द)।

3. शंभुनाथ (सं.): वागर्थ : वर्ष 23, अंक 265, अगस्त 2017, पृ. सं.–85, प्रकाशक : संपादकीय विभाग, 36ए, शेक्सपियर सरणी, कोलकाता– 700017, मूल्य– ₹20।

4. शर्मा, रामविलास : निराला, प्रथम (राधाकृष्ण) संस्करण : 1991, छठी आवृत्ति : 2011, पृ. सं.–94, प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 7/21, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, मूल्य– ₹250 (सजिल्द)।

5. शर्मा, रामविलास (सं.) : राग विराग, लोकभारती संस्करण : 2008, पृ.सं.–99–101, प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहबाद–1, मूल्य– ₹30 (अजिल्द)

6. शर्मा, रामविलास : परंपरा का मूल्यांकन, पहला सजिल्द संस्करण : 1981, संस्करण : 2011, पृ. सं.– 121, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, मूल्य– ₹125 (अजिल्द)।

7. शर्मा, रामविलास (सं.) : राग विराग, लोकभारती संस्करण : 2008, पृ.सं.– 104, प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद–1, मूल्य– ₹30 (अजिल्द)।

– वरिष्ठ सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, रेवेंशा विश्वविद्यालय, कटक, ओड़िशा–753003

❑❑❑

राम भक्तिरस का पूर्ण परिपाक : विनयपत्रिका

प्रो. दिलीप सिंह

(1)

विनयपत्रिका : थोरे मँह जानिहहिं सयाने

'विनयपत्रिका' तुलसीदास जी की प्रौढ़ रचना है। यह रचना 'श्रीरामचरितमानस' के बाद लिखी गई। इस संबध में डॉ. माताप्रसाद गुप्त (तुलसीः संवत् 2006) का यह मत है कि "यह संकलन संवत् 1666 के कुछ ही पूर्व का होना चाहिए।" 'पत्रिका' काशी में लिखी गई। काव्य और भक्तिभावना दोनों ही दृष्टियों से यह एक अपूर्व रचना है। कई विद्वान 'श्रीरामचरितमानस' से भी अधिक महत्व 'विनयपत्रिका को देते हैं (माताप्रसाद गुप्त, बलदेव प्रसाद मिश्रः 1994)।

इस ग्रंथ में भक्तिभाव अपनी संपूर्ण साधना की पराकाष्ठा पर है (उदयभानु सिंहः 1976)। वास्तव में भक्तिमार्ग पर चल कर ही तुलसी ने 'विनयपत्रिकामें समाज के विकृत स्वरूप पर विचार कर उसके उद्धार का उपाय भी सोचा। उनकी यह भावना थी कि राम की कृपा के बिना समाज का कल्याण नहीं हो सकता।

डॉ. भगीरथ मिश्र (तुलसी रसायनः 1995) ने यह माना है कि "विनयपत्रिका, रामचरितमानस के समान अत्यंत लोकप्रिय ग्रंथ है।" कलियुग की कुचाल से पीड़ित होकर – जैसा कि 'कवितावली' में भी संकेत है – गोस्वामी तुलसीदास ने राम–दरबार में 'विनयपत्रिकाप्रेषित की थी जो एक अर्ज़ी या प्रार्थना–पत्र के रूप में है।

व्यक्ति के अनेक भावों का विवरण हमें तुलसी की 'विनयपत्रिका में मिलता है। गहराई से देखा जाय तो यह रचना भक्ति के विभिन्न भावों की मंजूषा है जिसके समस्त भावों का यही निहितार्थ है कि भक्ति सर्वजन सुलभ होते हुए भी इष्टदेव की कठिन साधना है। मन को पूर्णरूपेण भक्ति में लगाना (रमाना) ईश्वर की कृपा पर ही निर्भर करता है– *तुलसीदास तब होई स्वबस जब प्रेरक प्रभु बरजै।*

'विनयपत्रिका का यह अभिप्रेत भी स्पष्टतः व्यंजित है कि ज्ञान की अपेक्षा भक्ति श्रेष्ठ है। इसे ही विनयपत्रिका का मूलार्थ भी कहा जा सकता है। तुलसी के अनुसार अभक्ति ही विपत्तियों का प्रधान कारण बनता है– *कह हनुमंत बिपत प्रभु सोई। जब तब सुमिरन भजन न होई।।* (विजय बहादुर अवस्थीः 'भक्ति निरूपण' आलेख में, उदयभानु सिंह (सं.))। विनयपत्रिका का केंद्रीय भाव प्रेम की अनन्यता है प्रभु प्रेम की। निरंतर सुमिरन और भजन द्वारा प्रभु की निकटता भक्त को प्राप्त होती है। यही भाव इष्टदेव के साथ भक्त की अनन्यता को भी स्थापित करता है, अर्थात् इस अनन्यता के माध्यम से ही प्रीतिपूर्ण आस्था उपजती है और उत्कट प्रेम की अभिलाषा का भक्त के हृदय में उदय होता है– *बारक कहिए कृपालु। तुलसी है मेरो।,* ऐसा उत्कट प्रेम कि भगवान भक्त से बार–बार यह कहने को विवश हो जाए कि तुम मेरे ही हो।

गोस्वामी जी द्वारा रचित बारह प्रसिद्ध ग्रंथ हैं जिनकी विस्तृत परिचयात्मक विवेचना विद्वानों ने की है (गोस्वामी तुलसीदास : श्यामसुंदर दासः

1941)। इनमें से छह बड़े और छह छोटे ग्रंथ हैं। बड़े ग्रंथों में विनयपत्रिका की गणना विद्वानों ने की है। यह भी देखा गया है कि गोस्वामी जी की मानस तथा 'पत्रिका' की विशेषताएँ तथा समतुल्य बिंदु कौन–कौन से हैं। इस धरातल पर श्री वियोगी हरि (विनयपत्रिका : हरितोषिणी टीकाः संवत् 2013) की 'टीका' के 'वक्तव्य' की ये पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं ('मानस' के समक्ष) – "यद्यपि यह कृति उतनी लोकप्रिय नहीं है, पर भक्तिप्रिय अवश्य है। यह कृति ज्ञानियों की सिद्धांत मंजूषा है, पंडितों की पांडित्य निकष है, योगियों की समाधिस्थली है और प्रेमियों एवं भक्तों की मानस तरंगिणी है।" डॉ. श्यामसुंदर दास ने इस कृति को "हिंदी साहित्य का एक अनमोल रत्न" मानते हुए लिखा है कि– "गोस्वामी जी की यह 'विनयपत्रिकाभक्ति रस के नाना स्वादों से भरी हुई है। हिंदी साहित्य में यह एक अनमोल रत्न है।" डॉ. भगीरथ मिश्र ने इस ग्रंथ को गीतिकाव्य का शिखर मानते हुए कहा है कि "विनयपत्रिका हिंदी गीतिकाव्य का शिखर है। गोस्वामी जी के अंतर्जगत का प्रकाशन होने से संवेदनात्मक ज्ञानधारा में इसका स्थान सबसे ऊपर है।" आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस ग्रंथ की विवेचना इसकी अभिव्यंजनात्मक श्रेष्ठता की दृष्टि से करते हुए लिखते हैं कि "श्रीराम का गुण और सौंदर्य किसे नहीं लुभाते। इसी मनोहर रूप की गदगद और पुलकित अभिव्यंजना है– विनयपत्रिका।" (गोस्वामी तुलसीदास : 1935)

तुलसी साहित्य के सभी मूर्धन्य अध्येताओं ने 'विनयपत्रिकाकी काव्यात्मकता, काव्यमर्म, काव्य सौष्ठव तथा विषयवस्तु की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। ये सभी इस बात पर एकमत हैं कि 'विनय पत्रिका' भगवान श्रीराम की कृपा प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा से रंजित रचना है। इस रचना के शिल्प सौंदर्य तथा भाषिक विधान पर भी ये तुलसी भक्त आलोचक कम मुग्ध नहीं हुए हैं।

(2)

विनयपत्रिका का ढाँचा शिल्पः जन्म जन्म रति राम पर

'विनयपत्रिका एक आर्त भक्त की 'अर्ज़ी' है। यह आवेदन पत्र दो कारणों से राजा राम के दरबार में पेश किया गया है – पहला यह कि कलिकाल के संकट से संसार को मुक्ति मिले और दूसरा यह कि वह (भक्त) भगवान के द्वारा अपना लिया जाए। अर्ज़ी राम–दरबार को पठायी जानी है। श्रीराम के हाथों में पहुँचानी है। यह काम सहज नहीं है, इस सत्य को भक्त शिरोमणि तुलसीदास भलीभाँति बूझते हैं। इस कठिन काम से पार पाने के लिए वे अपने इष्टदेव राम के जितने भी समीपी हैं उन सबको 'पत्रिका' के आरंभ में ही साधते हैं। उन्हें पूरा विश्वास है कि इस 'सधाव' से अभीष्ट प्राप्ति का मार्ग अति सुगम हो जाएगा। सच भी है कि यदि ये सभी सहायक हो जाएँ तो फिर कोई भी बाधा कहाँ टिकेगी।

विनयपत्रिका के आरंभ में गणपति गणेश से लेकर बिंदुमाधव तक की स्तुति–वंदना की गई है। ग्रंथ का यह भाग काव्य सौष्ठव का श्रेष्ठतम स्वरूप है। शंकर जी इष्टदेव के प्रतिरूप हैं। गणेश सिद्धिदाता हैं। अतः इन दोनों की वंदना तो सर्वप्रथम होनी ही होनी है। इनकी प्रसन्नता के बिना राम–दरबार में अर्ज़ी का प्रवेश कहाँ संभव है। प्रकाशदाता सूर्य (जो रघुकुल वंश के कुलदेवता हैं) और शक्ति स्वरूपा देवी (जिनकी स्तुति स्वयं श्रीरामचंद्र ने रामेश्वरम् के सागर तट पर की थी – निराला ने अपनी कविता 'राम की शक्तिपूजा' में जिसका व्यापक चित्र खींचा है) की वंदना तो अपरिहार्य है ही।

फिर काशी और चित्रकूट, इन दो स्थान–देवताओं का माहात्म्य गायन किया गया है। काशी, जहाँ पत्रिका लिखी गई, गोपाल मंदिर (चौखम्भा) के पीछे स्थित बगिया की एक कुटिया में बैठकर। श्री वियोगी हरि ने भी यह संकेत दिया है कि – "यह पत्रिका श्रीकृष्ण के दरबार में बैठकर लिखी गई। और चित्रकूट, जहाँ आवेदक के प्रभु ने वनवास की अवधि में सर्वाधिक वर्षों तक निवास किया था। अतः इन दोनों का आशीर्वाद भी अनिवार्य है। फिर काशीवासी तुलसी द्वारा काशी में स्थित बिंदुमाधव (विष्णु) का विस्मरण भला कैसे हो।" यह मंदिर काशी के प्रसिद्ध पंचगंगा घाट पर स्थित है। उल्लेखनीय है कि इसी घाट पर वल्लभाचार्य का प्राचीन मठ भी है।

डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने यह टिप्पणी की है कि वंदना और स्तुति के बाद पत्रिका राम के समक्ष पहुँचानी है पर राम का दरबार कोई सामान्य दरबार नहीं है। 'राम राज्य' की स्थापना करनेवाला राज्य है जहाँ संसार की कोई भी विभूति अप्राप्य नहीं। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और मारुति राम–दरबार के रत्न हैं। भरत जी, लखनलाल और शत्रुघ्न भगवान के प्राणप्रिय अनुज हैं तो हनुमंत– भरत सम भाई। माता जानकी तो तुलसी के इष्टदेव प्रभु श्रीराम की अर्धांगिनी ही ठहरीं। इन सब की तो भरपूर स्तुति होनी ही चाहिए।" विनयपत्रिका के प्रारंभिक चौहत्तर पद इसी क्रम में रचे गए हैं – स्तुतियाँ, श्रीराम का महिमागान और भक्त तुलसी की उनसे निकटता और अनन्यता की अरदास। फिर दो पदों में आत्म परिचय देकर लंबी–चौड़ी अर्ज़ी लिखी गई है। अंतिम चार पदों में आत्म–निवेदन का सारांश है, पत्रिका स्वीकृत होने की प्रार्थना है। स्वीकृति के संदर्भ में दरबारियों के प्रयत्न के प्रति आभार है और उस पर प्रभु की स्वीकृति सूचक 'सही' के हस्ताक्षर होते हैं। ये सब बातें एक के बाद एक विनयपत्रिका के ढाँचे में बड़े ही सुंदर ढंग से दी गई हैं।

साररूप में विनयपत्रिका के शिल्प पर डॉ. भगीरथ मिश्र की यह सारगर्भित टिप्पणी पढ़ने योग्य है– "इसमें सबसे पहले 'मंगलाचरण' के रूप में गणेश वंदना है, फिर सूर्य, शंकर, देवी, गंगा, यमुना, हनुमान, काशी, चित्रकूट, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता और राम तथा नरनारायण बिंदुमाधव की स्तुतियाँ हैं। इस सिरनामे के बाद विनयावली है। अंत में भरत, लक्ष्मण के अनुरोध पर तथा सीता के याद दिलाने पर राम की स्वीकृति (सही) है।"

श्री वियोगी हरि ने सबसे पहले विनयपत्रिका लिखने की वजह का जिक्र किया है और फिर इसके ढाँचे का विवरण दिया है। विनयपत्रिका लिखने की वजह वियोगी हरि के इन शब्दों में व्यक्त है– "दुख कौन देता था? कलिदेव। जब कलि के मारे गोसाईं जी का नाकोंदम आ गया, तब उन्हें महाराज रामचंद्र जी के दरबार में यह पत्रिका भेजनी पड़ी।" कलिकाल का प्रभाव बड़ा विकट था। एक ओर सांस्कृतिक पतन अपने चरम पर था–

कलिमल ग्रसै धर्म सब लुप्त भये सद्ग्रंथ। दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट कीन्ह बहु पंथ।। और दूसरी ओर सामाजिक विकृतियाँ परिवार और परिवेश में घर कर चुकी थीं– *मारग सोइ जाकहुँ जो भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।। या सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दे सो बड़ आचारी।। या जाके नख अरु अटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला।। या मातुपिता बालकन बोलावाहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं।।*

ऐसे कठिन समय में कलिकाल की भीषणता से मुक्ति के लिए विनयपत्रिका रची गई।

वियोगी हरि जी ने भी राम दरबार की 'हाइरार्की' की चर्चा की है। अत्यंत रोचक ढंग से उन्होंने लिखा है कि "राजा महाराजा के पास कोई सीधे–सीधे अर्ज़ी नहीं भेज सकता। पहले दरबार के मुसाहिबों की सहमति लेनी होती है। तब कहीं पैठ होती है। इस बात को ध्यान में रखकर गोसाईं जी ने पहले देवी–देवताओं को मनाया है तब कहीं हुजूर में अर्ज़ी पेश की है।" वियोगी हरि जी ने 'विनयपत्रिका के पदों के क्रम में उसके शिल्प को खोल कर रख दिया है– "42 पद पर्यंत स्तुतिगान करके 43वें पद में तुलसी ने संक्षिप्त रामचरित का वर्णन किया है। 45वें पद में रामचंद्र जी की वंदना, 48वें में श्रीकृष्ण वंदना, 52वें में दशावतार कथा तथा 61, 62, 63 पदों में श्री बिंदुमाधव की वंदना की गई है। इस वंदना समुच्चय के बाद विनयपत्रिका का वास्तविक रूप प्रस्तुत हुआ है। इस प्रकार 276 पदों तक 'पत्रिका' लिखी गई है।"

पत्रिका पूरी हो चुकी। दरबार में भी पहुँच गई। लेकिन अब प्रभु के समक्ष इसे पेश कौन करे? फिर हनुमान, भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण से प्रार्थना की गई। अगुवा बनने का किसी में साहस न हुआ। सब एक–दूसरे का मुँह ताकने लगे। पर सब में लक्ष्मण अधिक ढीठ थे। सो उन्होंने पत्रिका पेश की। यहीं ग्रंथ समाप्त होता है।

तत्व–तत्व कहें तो अपने मूल ढाँचे में यह ग्रंथ एक पत्रिका (अर्ज़ी/अरज/चिट्ठी) के रूप

में है। गोस्वामी तुलसीदास इसे भेजनेवाले हैं और श्रीरामचंद्र जी पाने वाले। देवी–देवताओं, मुसाहिबों और दरबारियों की संस्तुति प्राप्त करने के लिए उनकी खुशामद के बाद चिट्ठी का मजमून शुरू होता है, इस तरह –

राम राम रटु, राम राम रटु, रामनाम जपु जीहा।
रामनाम नवनेह मेह को मन, हठि होहि पपीहा।।

इसके बाद तुलसी ने राम–नाम–स्मरण के कई पद लिखे हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अच्छा लिखा है कि "राम–नाम–रस का चस्का ही कुछ ऐसा है कि भक्त–शिरोमणि तुलसी को तृप्ति ही नहीं होती।" राम के विविध गुणों को प्रदर्शित करनेवाले इन पदों के बाद तुलसी के मन में छिपा चोर जागता है कि चिट्ठी तो लिख रहा हूँ, कलिकाल की शिकायत भी कर दी है पर तनिक अपनी ओर भी तो देख लूँ। यह मेरा जड़ जीव कब से सो रहा है, पहले इसे भी तो जगा लेना चाहिए अन्यथा जब प्रभु श्रीराम की कृपा मिलेगी तो उनके सामने क्या मुँह लेकर जाऊँगा– *जागु –जागु जीव जड़, जीहै जग–जामिनी। देह गेह नेह जानि, जैसे घन दामिनी।।* शरण की भिक्षा माँगते–माँगते गोस्वामी तुलसीदास 'पत्रिका' लिखना समाप्त करते हैं। रामचंद्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास) ने ग्रंथ की पूर्णाहुति पर यह टिप्पणी की है कि "अब लिखने को रह ही क्या गया था?" और वियोगी हरि ने चिट्ठी को यथाशीघ्र श्रीराम के चरणों में पहुँचाने की तुलसी की आकुलता का मजेदार चित्र खींचा है – "चिट्ठी लिफाफे में बंद किए बिना ही भेज दी गई। खुली चिट्ठी दरबार में पहुँची।"

लक्ष्मण जी ने कृपा की। स्वामी की सेवा में दास तुलसी की चिट्ठी पेश कर दी। और सबने स्वीकृति प्रदान भी कर दी। सबकी संस्तुति जानकर श्रीराम मुस्कुराए और बोले, ठीक है, मुझे भी इसकी खबर है– *बिहँसि राम कह्यौ, सत्य है, सुधि मैंहुँ लहि है।* इस सुखद रामकृपा पर वियोगी हरि ने लिखा है – बस, फिर क्या, काम बन गया –*मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की, परि रघुनाथ–हाथ सही है।* और अंत में तुलसीदास की यह विनम्र विनती कि हे परमपिता! अब आप इस दीन की यह पत्रिका स्वयं बाँचने की असीम कृपा करें – विनयपत्रिका दीन की बाप! आप ही बाँचो।

(3)

विनयपत्रिका : राम भक्ति चिंतामनि सुंदर

'भक्ति' विनयपत्रिका का अभीष्ट मंतव्य है। भक्ति ही इस ग्रंथ का आधार भी है। भक्ति का जैसा उद्वेलन विनयपत्रिका में है वैसा स्वयं तुलसी के अन्य ग्रंथों में नहीं है। 'अर्ज़ी' के रूप में लिखी इस रचना में तुलसी ने भगवान के समक्ष अपना दिल खोलकर रख दिया है। यह निरावरणता कृति में भक्तिरस का अद्भुत संचार कर देती है जिसे महसूस करके विद्वानों ने दसवें रस – भक्तिरस के अस्तित्व पर बहस प्रारंभ कर दी थी। यह भी कहा जा सकता है कि राम की भक्ति का विनयपत्रिका अगाध सागर है। पत्रिका के लोकप्रिय 'मंगलाचरण' में गणेश वंदना करते हुए अंत में तुलसीदास ने कर जोड़ कर राम–सिय के अपने हृदय में बसे रहने की उत्कट अभिलाषा भी व्यक्त कर दी है, राम भक्ति का आश्रय तुलसी कहीं नहीं छोड़ते –

गाइये गणपति जगबंदन। संकर–सुवन भवानी नंदन।।
सिद्धि–सदन, गजबदन, विनायक। कृपा–सिंधु सुंदर सब लायक।।
मोदक–प्रिय, मुद–मंगल दाता। विद्या–वारिधि, बुद्धि विधाता।।
माँगत तुलसीदास कर जोरे। बसहिं राम–सिय मानस मोरे।।

भगवान श्रीराम पर तुलसी का अकूत भरोसा और विश्वास है। इष्टदेव के प्रति परिपूर्ण आस्था के बिना भक्ति संभव ही नहीं है। इतना भरोसा कि तुलसी को बस राम ही राम दिखाई देते हैं। ज्ञान, उपासना, बेदमत आदि को भी वे सब प्रकार से खरा मानते हुए भी अपना भरोसा श्रीराम में ही जताते हैं। यह राम के प्रति उनकी एकनिष्ठता है – *भरोसो जाहि दूसरो सो करो। करम, उपासना, ज्ञान, बेदमत, सो सब भाँति खरो। मोहि तो 'सावन*

के अंधहिं' ज्यों सूझत रंग हरो।।

यह भरोसा इतना दृढ़ है कि तुलसी के लिए राम ही लोक–परलोक के स्वामी हैं और उन्हें केवल राम के नाम पर ही भरोसा है –

लोकु परलोकु रघुनाथ ही के हाथ सब।
भारी है भरोसो तुलसी कै एक नाम को।।

केवल लोक–परलोक के स्वामी ही नहीं, श्रीराम की सामर्थ्य इससे भी कहीं अधिक है। ऐसी सामर्थ्य जो जड़ को चेतन और चेतन को जड़ कर सकती है। ऐसे समर्थ श्री रघुनाथ को जो भजता है, उनका नाम स्मरण करता है, वह जीव धन्य है –

जो चेतन कहँ जड़ करह जड़हिं करह चैतन्य।
अस समर्थ रघुनाथ कहिं भजहिं जीव ते धन्य ("मानस", उत्तरकांड)।

ऐसे सामर्थ्यवान राम की भक्ति के अतिरिक्त तुलसी को और किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं है। न उन्हें सुगति चाहिए और न सुमति। वे संपत्ति के भी इच्छुक नहीं हैं और रिद्धि–सिद्धि के भी। उन्हें अपनी ख्याति या बड़ाई भी अभीष्ट नहीं है। भक्त तुलसी की तो बस इतनी ही अभिलाषा है कि उनका हेतु रहित प्रेम श्रीराम के चरणों में बना रहे और यह प्रेम दिनों–दिन बढ़ता रहे –

चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि–सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतु–रहित अनुराग राम–पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई।।

गोस्वामी तुलसीदास का भक्त हृदय यह जानता है कि यदि श्रीराम पर हेतु–रहित अनुराग चाहिए और उस अनुराग में निरंतर वृद्धि चाहिए तो प्रभु की कृपा से ही यह संभव है क्योंकि श्रीराम जैसा उदार चरित भगवान तो इस संसार में कोई है ही नहीं। वे अपने भक्तों पर निर्ब्याज कृपा बरसाते हैं। तो वे भक्त को अपने प्रेम का वरदान भला क्यों न देंगे –

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं।।

हेतु रहित हुए बिना श्रीराम की कृपा असाध्य है क्योंकि राम का आश्रय 'मोह मुक्ति' बिना नहीं मिल सकता। राम की भक्ति का आश्रय शुद्ध भक्तिभाव अर्थात् हेतु–रहित अनुराग ही है। यह अनुराग पूर्ण समर्पण भावना से ही प्राप्त हो सकता है। अपने स्वामी के प्रति पूर्ण समर्पण – अहंकार, मोहमाया सब कुछ त्यागकर प्रभु पद में शरणागति। 'मानस' के अरण्यकांड में भी तुलसी ने भक्ति के इस उच्च भाव को व्यक्त किया है– *सब तजि करौं चरन रज सेवा* और विनयपत्रिका में भी भक्त की यह सदिच्छा व्यक्त हुई है कि हे भगवान! कुछ ऐसा कीजिए कि मैं छल–प्रपंच छोड़कर आपके द्वार पर पड़ा–पड़ा आप का गुणगान करता रहूँ – *सो कीजै जेहि भाँति छोड़ छल, द्वार परौ गुन गावौं।* ऐसा अनुराग–सिक्त समर्पण भाव विनयपत्रिका की काव्यात्मकता भी है तथा भक्त और भगवान के बीच के संबंधों की व्याख्या भी। विनयपत्रिका भक्ति ही नहीं, भक्त की दृढ़ता और विश्वास का भी काव्य है। इनके बिना प्रभु के श्री चरणों में समर्पित हो पाना कठिन है। यह विश्वास ही भक्त को दृढ़ता देता है कि भक्त भगवान से भी अधिक महत्व रखता है। श्री हनुमान की महत्ता इसी बात में है कि उनकी भक्ति ऐसे चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई थी कि वे भगवान श्रीराम के समान ही, या उनसे बढ़कर मान पा सके। आज भी भारत के प्रमुख हनुमान मंदिरों में पहले भक्त/सेवक हनुमान की पूजा की जाती है और उसके उपरांत भगवान श्रीराम का दर्शन किया जाता है। भक्त तुलसी का विश्वास भी इस संबंध में दृढ़ है– *मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा।।* (मानस, उत्तरकांड)। विनयपत्रिका शल्यता और प्रेम का काव्य है। भगवान का शील–सौंदर्य और उस सौंदर्य के प्रति असीम प्रेम की अभिव्यक्ति, यही विनयपत्रिका की भक्ति का सार है अर्थात् भगवत प्रेम का। राम के शील–सौंदर्य पर विनयपत्रिका के आरंभ में ही कई पद आए हैं। श्रीराम के इन स्वरूपों पर भक्त तुलसीदास रीझ–रीझ गए हैं। इस मोहित अवस्था में ही विनयपत्रिका रची गई है, अडिग आस्था के साथ – राम के प्रति और उनके कृपानिधान तथा दयानिधि

वाले कल्याणकारी रूप के प्रति। अपनी इस आस्था को तुलसी ने विनयपत्रिका में अनेक स्थलों पर उजागर किया है परंतु इसका सबसे अधिक प्रभावी रूप 'दोहावली' की इन पंक्तियों में उभरता है –

राम नाम मनिदीप धरू जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजियार।।
(दोहावली)

यह दोहा एक प्रकार का मंत्र है जिसकी संजीवनी शक्ति अमोघ है। राम नाम की महिमा इसमें भक्त तुलसी ने इस प्रकार व्यक्त की है जो राम के भक्ति रस में हमें भी डुबो देती है। इसका भावार्थ यह है कि अन्य दीपक तो कभी न कभी बुझ जाते हैं परंतु राम नाम ऐसा मणिदीप है जो कभी नहीं बुझता। सदैव प्रकाश फैलाता रहता है। यदि इस दीप को मुखरूपी द्वार की जीभरूपी देहरी पर रख दिया जाए तो भीतर और बाहर दोनों तरफ उजाला हो जाता है। भक्त तुलसी के हृदय में श्रीराम के लिए ऐसी ही सतत धुन लगी रहती है। राम की लगन लगी रहती है जिससे उनका अंतर और बाह्य दोनों निश्छल, प्रांजल और पवित्र बनकर राम की भक्ति में सदैव लीन रह पाता है। 'विनयपत्रिका' राम भक्ति में लीन भक्त की पुकार है– *जबहिं राम कहिं लेहिं उसासा, उमगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा।*

तुलसी का यह दृढ़ विश्वास है कि ईश्वर की कृपा भी मनुष्य प्राप्त कर सकता है, यदि वह शुद्ध भक्ति की साधना आरंभ कर दे। इस साधना की तीन अर्हताएँ हैं– पवित्र जीवन *(कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो/श्री रघुनाथ–कृपालु–कृपा तें संतसुभाव गहौंगो।।), वैराग्य (सब तजि करौं चरन रज सेवा)* और विवेक, जैसा कि 'मानस' के उत्तरकांड में भी तुलसी ने इंगित किया है – अपनी पहचान या आत्मावलोकन और फिर अपने ईश के प्रति आश्वस्ति का भाव। भक्ति के इस छंद में भक्त का विवेक सब कहीं जागृत है –

जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई।।
तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी।।
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई।।
अस संयोग ईस जब करई। तबहुँ कदाचित सो निरुअरई।। (मानस, उत्तरकांड)

मोहमाया ने गाँठें डाल दी हैं। इतनी जटिल गाँठें कि इनसे छूटना कठिन होता जा रहा है। जब से यह जीव संसारी हुआ है, न तो यह ग्रंथि छूटती है और न ही उसे सुख मिल पाता है। श्रुति और पुराणों ने इससे छूटने के कई उपाय बताए हैं, पर इनसे वह गाँठ खुलती नहीं और भी उलझती चली जाती है। ऐसी कृपा जब ईश (भगवान श्रीराम) करेंगे तभी शायद यह गाँठ खुल सके। भक्त के लिए पवित्र जीवन, वैराग्य और विवेक के साथ ही अनुराग भाव भी अति आवश्यक है। अनुराग अर्थात् पूर्ण समर्पण।

भक्ति के इस उन्नत स्वरूप पर डॉ. भगीरथ मिश्र की यह टिप्पणी अत्यंत सार्थक है जिसमें वे कहते हैं कि – "भक्ति का अपना ही पथ होता है। इस मार्ग को गह कर ईश्वर की कृपा (परम पद) प्राप्त की जा सकती है। शर्त एक ही है कि भक्ति निःस्वार्थ (हेतु–रहित) होनी चाहिए।" डॉ. भगीरथ मिश्र भक्ति के साथ निःस्वार्थ भाव को प्रमुखता देते हैं। जैसा कि पहले कहा गया कि भक्ति के साधक कोई कामना नहीं करते, उन्हें तो मुक्ति भी नहीं चाहिए। पूर्ण भक्त तो बस भक्ति ही चाहता है। भक्त को मुक्ति तो स्वतः ही प्राप्त हो जाती है – *राम भजन सोइ मुक्ति गोसाईं। अनइच्छित आवै बरियाई।।* मुक्ति तो राम भजन से ही मिल जाती है। राम भजन करते रहने से भक्त की इच्छा न भी हो तो मुक्ति स्वतः उसके पास चली आती है। "भक्ति में बड़ी भारी शक्ति है निष्कामता की। सच्ची भक्ति में लेन–देन का भाव नहीं होता। भक्त के लिए आनंद ही उसका फल है।" (गोस्वामी तुलसीदास : रामचंद्र शुक्ल)

भक्ति का एक परम तत्व यह भी है कि हमारे और जगत के बीच जो संबंध है उसके मूल में हम भगवान की सत्ता को देखें तथा जिनकी कृपा से ये नाते पुरते हैं (पूर्ण होते हैं) उस परमपिता को पहचानें, उसका स्तुति वंदन करें– *जासौं सब नातो पुरै।* विनयपत्रिका में तुलसी बारंबार यह दुहराते हैं, रटन लगाते हैं, टेरते हैं कि जगत के

साथ हमारे जितने संबंध हैं वे सब राम के संबंध हैं क्योंकि राम ही जड़–चेतन और चराचर के नियंता हैं– *नाते सबै राम के मनियत सुहृद, सुसेब्य जहाँ लौं।* भक्ति की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि विनय भाव को बार–बार दोहराया जाए। भिन्न संरचना वाले पदों में तुलसी ऐसा ही करते हैं। विनयपत्रिका में एक ही भाव की भिन्न–भिन्न शब्दों में प्रस्तुति के विषय में डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने यह इंगित किया है कि– "पिष्टपेषण उसका (विनयपत्रिका का) भूषण है न कि दूषण।" राम भक्ति के चरम रूप का काव्य है विनयपत्रिका। इसकी भक्ति जनित संरचना के विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का यह अकाट्य मत है कि "गोस्वामी जी की राम भक्ति वह पदार्थ है जिससे जीवन में शक्ति, सरसता, प्रफुल्लता, पवित्रता सब कुछ प्राप्त हो सकती है। विनयपत्रिका में राम भक्ति की चरम अभिव्यक्ति हुई है।" (परिचय : वियोगी हरि की टीका में)

(4)

विनयपत्रिका : माँगत तुलसिदास कर जोरे

अभी तक हमने विनयपत्रिका के ढाँचे या शिल्प तथा उसमें निहित भक्तिरस का अवगाहन किया है। इसमें संदेह नहीं कि इनके भीतर से भी प्रच्छन्न रूप से रचना का काव्यार्थ प्रकट होता चलता है। विनयपत्रिका का काव्यार्थ अति गहन होते हुए भी अपनी अभिव्यंजना में अति सरल है क्योंकि तुलसी का यह मत है कि– *सूधे मन सूधे बचन, सूधी सब करतूती। तुलसी सूधी सकल बिधि रघुबर प्रेम प्रसूति।।*

तुलसी की यह 'सिधाई' विनयपत्रिका के शिल्प में भी अंतर्भुक्त है और इसके काव्यार्थ के सहज (सूधी) अभिव्यंजना में भी। विनयपत्रिका प्रभु श्रीराम को लिखी गई चिट्ठी है अतः स्वाभाविक है कि इसमें कवि की समस्त भावनाओं का उद्वेलन सीधे–सीधे और खुल कर हुआ है। आमने–सामने का वार्तालाप संबोध्य (श्रीराम) की महानता के आगे संकुचित भी हो सकता था। पर लिखित पत्रिका में तो हृदय खोल कर रख दिया जा सकता है। इसीलिए इस प्रेमपाती में अभिप्रेत का अथवा काव्य का काव्यार्थ भक्त तुलसी के मन की अतल गहराइयों में पक कर व्यक्त हुआ है। विनय–पत्रिका भक्ति के विभिन्न भावों की अभिव्यंजना करने वाला काव्य है– सीधे–सीधे। सच्चाई और स्वाभाविकता के साथ। विनयपत्रिका के काव्यार्थ की प्रमुख विशेषताएँ तभी पकड़ाई में आ पाती हैं जब हम यह जान लें कि – "भक्ति की सरल और गंभीर धारा असंख्य भावों की तरंगों से तरंगित होती हुई इसमें प्रवाहित हुई हैं।"

(डॉ. भगीरथ मिश्र)

इन भाव–तरंगों की पकड़ और इनकी विवेचना से ही विनयपत्रिका का काव्यार्थ उद्घाटित किया जा सकता है। किसी भी गीतिकाव्य की भाँति ही विनयपत्रिका के भी अनेक पद स्वतंत्र हैं पर दैन्य, विश्वास, आत्म–भर्त्सना, निर्वेद, बोध, दृढ़ता, गर्व, उपालंभ, मोह, चिंता, विषाद, प्रेम आदि विविध भाव अपने सजीव रूप में गुँथ कर विनयपत्रिका के काव्यार्थ को वैविध्यपूर्ण कोणों से प्रकाशित करते हैं और इसे पूर्ण भक्ति–काव्य का स्वरूप प्रदान कर देते हैं। अर्थात् ये सब मिलकर विनयपत्रिका का अनूठा काव्यार्थ रचते हैं– "इन समस्त भावों से पुष्ट इस काव्य को इसके निहितार्थ के स्तर पर मोटे तौर पर भक्ति–रस प्रवाहित करनेवाला इष्टदेव के अनुराग से ओत–प्रोत काव्य के रूप में देखा जा सकता है।" (डॉ. माताप्रसाद गुप्त)। इन समस्त भावों से रंजित इसका काव्यार्थ ऐसा ही दिखाता भी है। अर्थात् इन सभी भाव तरंगों ने विनयपत्रिका में अपनी–अपनी भूमिकाएँ निभाई हैं। एक ही पाठ या पद में एकाधिक भाव भी तुलसीदास ने गुंफित कर दिए हैं। इस प्रकार के काव्य गठन को हम चाहें तो तुलसी का काव्य गुण भी कह सकते हैं। उनका यह काव्य गुण विनयपत्रिका में अपने चरमोत्कर्ष पर है जिसकी सभी विद्वानों ने तुलसी की श्रेष्ठ काव्यात्मकता मान कर सराहना की है।

काव्यार्थ की दृष्टि से डॉ. भगीरथ मिश्र ने विनयपत्रिका को तल्लीनता का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण माना है। उनका कहना है कि "बाकी सब उसी से बँधे हैं, उसी के इर्द–गिर्द घूमते हैं फिर उसी में घुल जाते हैं।" इसका अर्थ यह है कि 'तल्लीनता' विनयपत्रिका के काव्यार्थ के मर्म तक पहुँचने की

कुंजी है। भक्त कवि तुलसी की ऐसी लीनता जो हमें भी अपने में डुबो लेती है – कुछ इस तरह कि विनयपत्रिका का काव्यार्थ हमारे ह्रदय स्थल में जगर–मगर करने लगता है।

इस अर्थ–प्रकाश को श्री वियोगी हरि ने 'नवधा भक्ति' के वर्गीकरण के माध्यम से लक्षित करते हुए लिखा है कि– "इस मार्ग पर चल कर विनयपत्रिका के काव्यार्थ को अलग–अलग स्तरों पर समझना सहज हो पाता है।" भगवान के नाम, लीला, गुणधाम आदि का उच्चारण अर्थात् कीर्तन भक्त का सबसे बड़ा आलंबन है, क्योंकि अपने इष्ट के गुण–धर्म को जाने–पहचाने बिना उससे अनन्यता तो क्या निकटता भी प्राप्त नहीं की जा सकती। इस पहचान का सर्वोच्च साधन स्मरण है, अर्थात् भगवान के नाम, रूप, गुण आदि की स्मृति। संकेत किया जा चुका है कि वंदन का अर्थ प्रणाम, नमस्कार या स्तुति है। रामचरितमानस और विनयपत्रिका दोनों में मूलतः बहुसंख्य वंदनाओं एवं स्तुतियों की निबंधना या रचना की गई है। अपने 'दास्य भाव' में तुलसी का मन खूब रमा है। इसी स्थल पर वे भगवान की महानता तथा भक्त के रूप में स्वयं की लघुता का भी सुंदर पाठ रचते हैं। यही तुलसी का आत्म– निवेदन भी है और इसी रूप में वे राम के शरणागत होते हैं। दास्य भाव के इन समस्त पक्षों को विनयपत्रिका का केवल यह पद ही पूर्णतः अभिव्यंजित करने में समर्थ है –

तू दयालु दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुँज हारी।।
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो?।
मो समान आरत नाहिं, आरतिहन तोसो।।
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेलो।
तात मात गुरु सखा तू सब विधि हित मेरो।।

कीर्तन–स्मरण इस आत्म–निवेदन का प्रमुख उपपाठ है। कीर्तन–स्मरण से भगवान के प्रति प्रेम भाव में अतीव वृद्धि होती है। बलदेव प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि– "जब ईश्वर की ओर परम अनुराग हो तभी वह भक्ति कहलाता है।" तुलसी राम के परम 'भजनिया' थे। इनके माध्यम से उन्होंने राम के स्वरूप को पहचाना, उनकी ओर अनुरक्त हुए और रघुवीर रामचंद्र जी को अपना इष्टदेव मान लिया– *सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत ताहिं सदा मुनि धीरा।।* और इस प्रकार संत तुलसीदास मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के परम भक्त होकर हमारे सामने आते हैं। अपने 'आदर्श पुरुष' का जैसा निष्कलंक चित्र गोस्वामी तुलसीदास ने विनयपत्रिका में खींचा है उससे उत्तम शायद ही कोई खींच सका हो– *श्रीरामचंद्र कृपालु भज मन हरण भव भय दारुणं..* पद इस भाव या अर्थ का श्रेष्ठतम चित्र है। श्रीराम से बड़ा मर्यादा पुरुषोत्तम भला और कौन है – वे आदर्श पुत्र हैं, आदर्श बंधु हैं, आदर्श पति हैं, आदर्श मित्र हैं, आदर्श भक्त वत्सल हैं। कहना न होगा कि भक्त शिरोमणि तुलसीदास श्रीराम के इन रूपों पर मुग्ध हैं, आसक्त हैं। विनयपत्रिका का यह अंश सर्वाधिक प्रभावशाली है।

राम के स्वरूप में यह आसक्ति ही अनुरक्ति है और तुलसी राम में अनुरक्त महान भक्त हैं। रामजी तिवारी (गोस्वामी तुलसीदास : 1998 : साहित्य अकादमी) ने संकेत किया है कि "जिनके लोचन चातक की भाँति राम के घनश्याम रूप पर आसक्त रहते हैं। जो राम नाम का नित्य जाप करते हैं और अपने कर्मों का एक ही फल माँगते हैं, वह है– राम–चरन–रति।" विनयपत्रिका का यह वह काव्यार्थ है जिसमें अनुराग के साथ–साथ अनन्यता का भाव भी प्रकट होने लगता है। भक्त अनन्य भाव से प्रभु के प्रति समर्पित हो जाता है। 'रामचरितमानस' में भी भक्तिभाव की ऐसी समर्पित अभिव्यंजना का कोई अभाव नहीं है। मानस की कुछ पंक्तियाँ देखें –

- *रामकृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई।।*
- *रामकृपा बिनु सपनेहु, जीवन लह विश्राम।*
- *सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई। रामकृपा काहू एक पाई।।*

इन सभी पंक्तियों का भावार्थ एक ही है कि राम की कृपा के बिना भक्ति की प्राप्ति दुर्लभ है। जैसा कि भक्ति की विवेचना करते समय विचार किया गया था, 'काव्यार्थ' की मार्मिकता और भक्ति की पराकाष्ठा की दृष्टि से तुलसी का दैन्य और विनय भाव भी विनयपत्रिका का प्राणतत्व है। इन

भावों को कितने तरह की किन–किन अभिव्यंजनाओं में बाँध कर तुलसी ने प्रस्तुत किया है कि क्या कहा जाए। इन दोनों भावों या भावार्थों का प्रकटीकरण करते हुए उनका ध्यान श्रीराम की महानता और अपनी लघुता पर से क्षण भर के लिए भी नहीं हटा है– *मैं हरि पतितपावन सुने। मैं पतित तुम पतितपावन दोउ बानक बने।।... दास तुलसी सरन आयो राखिये आपनो।* अपनी लघुता के बखान में तुलसी मानस में भी चूके नहीं हैं। भक्त और भगवान के बीच का यह विपरीतधर्मी अंतःसंबंध भक्ति के लक्षणार्थ को भाषा के धरातल पर भी एक नया ही रंग देता है। रामचरितमानस में आए इस प्रकार के कुछ भावचित्र देखे जाएँ –

- *कबि न होऊँ, नहिं चतुर प्रवीना*
- *सकल कला सब बिद्या हीना*
- *वंचक भगत कहाइ राम के*
- *जौं आपन अवगुन सब कहऊँ। बाढ़ई कथा पार नहिं लहऊँ।।*

राजा राम के द्वार पर खड़े होकर विनयपत्रिका में ऐसी ही दीनता तुलसीदास ने प्रकट की है। इसमें दैन्य के साथ राम से विनय भी है और उनकी बड़ाई भी –

राम सों बड़ो है कौन, मो सों कौन छोटो?
राम सों खरो है कौन, मो सों कौन खोटो?

आचार्य शुक्ल ने ऐसे ही काव्यगत प्राणतत्व (काव्यार्थ) को विनयपत्रिका का मूलाधार स्वीकारते हुए लिखा है कि "सारी विनयपत्रिका का विषय यही है – राम की बड़ाई और तुलसी की छोटाई।" (परिचय : वियोगी हरि की टीका) वियोगी हरि ने भी अपनी इस टीका के वक्तव्य में लिखा है कि "भक्ति का मूल तत्व है महत्व की अनुभूति। इस अनुभूति के साथ ही दैन्य अर्थात् अपने लघुतत्व की अनुभूति का उदय होता है।" पुनः आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्त की इस अर्थगर्भ प्रवृत्ति की इन शब्दों में पहचान की है – "भक्त को जिस प्रकार प्रभु का महत्व वर्णन करने में आनंद आता है उसी प्रकार अपना लघुत्व वर्णन करने में भी। दैन्य भक्तों का बड़ा भारी बल है।" इस दैन्य या लघुता के चलते ही भक्त का यह अटल विश्वास होता है कि पतितपावन प्रभु उसकी सारे कलुष–कालिमा क्षण मात्र में धो डालेंगे। यह दृढ़ निश्चय और विश्वास ही दैन्य और लघुता वाले काव्यार्थ का विस्तार है। इन्हीं के बीच से एक और भावार्थ निःसृत होता है कि प्रभु की कृपा में विलंब क्यों हो रहा है– *काहे तें हरि मोहि बिसारो? या कबहिं देखाइहो हरि चरन या माधव अब न द्रवहु केहि लेखे या तुलसीदास अपनाइये, कीजै न ढील/अब जीवन–अवधि अति नेरे।*

विनयपत्रिका के ऐसे ही भाव–विह्वल पदों के विषय में लिखते हुए वियोगी हरि जी ने कहा है कि "मन–हृदय विगलित होने लग जाता है। प्रेमाश्रु बहने लगते हैं। राम के मनोहर स्वरूप की ओर ध्यान खिंचता है तो थोड़ा ढाँढस बँधता है कि यह चंचल मन राम के गुणधाम को ही समझ ले तो दुख अनुराग का स्वरूप पा लेगा।" वास्तव में यह कवि–विवेक है, सूफी या निरगुनिया भक्तों की तरह मदमस्त नहीं, लीन पर चैतन्य। ये पद विनयपत्रिका के सर्वथा भावपूर्ण पद हैं। आचार्य शुक्ल ने भी ऐसे भावों वाले पदों के काव्योत्कर्ष को अनूठा कहा है। इन पदों के काव्यार्थ की उच्चता को आचार्य ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है – "किस पद के संबंध में क्या लिखा जाए कुछ समझ में ही नहीं आता। बुद्धि चक्कर खाने लगती है। सत्य ही, विनयपत्रिका में जब प्रेमाधीरता, अनन्यता और अनुरक्ति के उच्चतर भावों में पगे पदों की ओर चित्त जाता है तो अवाक रह जाना पड़ता है।"

वास्तव में विनयपत्रिका का काव्य–शिल्प, काव्य–सौष्ठव और काव्यार्थ अतिमनोहारी है। पाठों और उपपाठों का यहाँ अद्भुत समन्वय है। भक्तिरस की ऐसी अजस्र–धारा अन्यत्र दुर्लभ है। प्रबंध–काव्य होने से मानस में यह धारा क्षीण–सी है, पर विनयपत्रिका में यह खुले प्रांगण में निर्बाध बही है। यह नितांत सत्य है कि तुलसी की काव्य–कला का विनयपत्रिका एक शिखरकाव्य है। भक्ति–काव्य का तो है ही। भक्ति के प्रांजल स्वरूप ही इसके यथार्थ हैं, काव्यात्मकता हैं।

(5)

विनयपत्रिका : सूधे मन सूधे बचन

विनयपत्रिका की भाषा वैविध्यपूर्ण और भावप्रवण

है। इसकी भाषा और शैली सभी तुलसी अध्येताओं को अपनी ओर खींचती है और ये सब उसकी संरचना पर मंत्रमुग्ध हैं। बलदेव प्रसाद मिश्र ने विनयपत्रिका की भाषा को तुलसी के अन्य सभी ग्रंथों की तुलना में श्रेष्ठ मानते हुए लिखा है कि – "भाषा के प्रौढ़ और समृद्ध रूपों की झाँकी तुलसी ने अपने सभी ग्रंथों में कराई है पर सबसे अधिक सशक्त प्रयोग विनयपत्रिका में दिखता है।" श्यामसुंदरदास ने विनयपत्रिका की भाषा को उसकी कवित्व शक्ति का आधार माना है– "इस ग्रंथ (विनयपत्रिका) से बढ़ कर दूसरे किसी ग्रंथ में ग्रंथकर्ता ने अपनी कविता शक्ति नहीं दिखलाई है।" श्यामसुंदरदास ने भाषा पर तुलसी के अधिकार को उसी तरह देखा है जैसा कि बाद में कबीर की भाषा को आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने देखा था। श्यामसुंदरदास के ये शब्द विचारणीय हैं – "भाषा पर तुलसीदास जी का पूरा अधिकार था। वे भाषा के पीछे–पीछे नहीं चलते थे, वरन भाषा उनका अनुसरण किया करती थी। शब्द–शास्त्र के पंडित रामचरितमानस और विनयपत्रिका में उनकी भाषाविज्ञता का पता पा सकते हैं।" भाषाशास्त्र के प्रकांड पंडित बाबू श्यामसुंदरदास की यह टिप्पणी गहरा अर्थ रखती है।

बलदेव प्रसाद मिश्र ने किसी गीतिकाव्य में भाषा के ऐसे मनोहारी रूप का दर्शन नहीं किया था। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि ऐसी समर्थ भाषा संस्कृत काव्य में भी सुलभ नहीं है। मिश्र जी का उद्धरण प्रस्तुत है – "संस्कृत की सामासिक पदावली का जैसा मनोहारी रूप विनय के आरंभिक पदों में है वह हिंदी में तो अन्यत्र दुर्लभ है। गीतों में तो ऐसी वैविध्यपूर्ण और समर्थ भाषा संस्कृत में भी सुलभ नहीं है। भाषा के जितने भी स्वरूप उस समय उपलब्ध थे सभी का विनयपत्रिका में प्रयोग करके गोस्वामी जी ने अपनी भाषाप्रवीणता का पूर्ण परिचय दिया है।" वियोगी हरि ने तत्कालीन समय में प्रचलित काव्य भाषाओं ब्रज और अवधी के प्रयोग के आधार पर विनयपत्रिका की भाषा पर दृष्टिपात करते हुए लिखा है कि – "विनयपत्रिका में गोसाईं जी ने जनसाधारण और विज्ञसमाज दोनों के ही उपयुक्त भाषा लिखी है। व्यर्थ के शब्द ठूँसना तो वे जानते ही न थे। विनयपत्रिका पढ़ने से ही भाषा की उत्कृष्टता और मधुरता दोनों का अनुभव सहज ही हो जाता है।"

वास्तव में ये सभी विचार विनयपत्रिका की भाषा का गहन विश्लेषण करने के बाद ही उद्भूत हुए हैं। भाषा सौष्ठव के कारण ही विनयपत्रिका एक शुद्ध गीतिकाव्य ग्रंथ के रूप में हमें प्राप्त हुई है। इसके गीतितत्व, रचना चातुर्य, भाषा सौष्ठव और रस परिपाक पर अभी गहन विचार–विमर्श होना बाकी है। लेकिन यह निःसंकोच होकर कहा जा सकता है कि इन सभी धरातलों पर विनयपत्रिका भाषा प्रयोग के अन्यतम उत्कर्ष पर है। सहज भाषा और सरल भावों का यह एक उत्कृष्ट ग्रंथ है। इसके अधिसंख्यक पद इस बात की गवाही देते हैं कि ऊँचे सिद्धांतों और ज्ञानात्मक विषयों को भी तुलसी जनसाधारण की भाषा में लिख सकते थे। उदाहरणार्थ उनके एक लंबे पद को पढ़ा जा सकता है जिसका आरंभ इन पंक्तियों से होता है –

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे।
नाहिं त भव–बेगार मँह परिहौं, छूटत अति कठिनाई रे।।

(6)

विनयपत्रिका : सकल राममय जान

गोस्वामी तुलसीदास लोकमंगल और लोककल्याण की भावना से आप्लावित कवि थे। विनयपत्रिका में भी वे इसी के लिए रट लगाते हैं। भगवान से अरदास करते हैं। रामचंद्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास) ने यह स्वीकार किया है कि "गोस्वामी जी कट्टर मर्यादावादी थे।" तुलसी का कोई भी ग्रंथ पढ़ा जाए तो उसमें दया, क्षमा, करुणा और त्याग आदि की उदात्त वृत्तियाँ उत्कीर्ण मिलती हैं। तुलसी ने इन्हें राम के जीवन में ही देखा और वहीं से इन्हें प्राप्त किया था। राम से बड़ा लोककल्याणकारी और कौन है! वे लोककल्याण के लिए ही समस्त मर्यादाओं का पालन करते हैं। तुलसी के राम यही कृपानिधान राम हैं जिन्होंने

संसार को कष्टों और विपदाओं से मुक्त करने का संकल्प लिया है। ऐसे ही राम को विनयपत्रिका के रूप में तुलसी अपनी अर्ज़ी भेजते हैं। इस आवेदन को आद्यांत पढ़ कर यह आसानी से समझा जा सकता है कि तुलसी की यह 'अर्ज़ी' उनकी ही नहीं, किंतु प्रत्येक देश और प्रत्येक काल के प्रत्येक आर्त के हृदय की आवेदनपत्रिका बन गई है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने (विश्वकवि तुलसीदास : तुलसी में, (सं.) उदयभानु सिंह) ठीक ही विनयपत्रिका को 'विश्वमानव की पुकार' कहा है। इसमें संदेह नहीं कि विनयपत्रिका के पद–पद में गोस्वामी जी का कवि हृदय सर्व सामान्य जीवों का प्रतीक हो कर बोल उठा है। मनुष्य के सब कर्म, सब वचन, सब भाव विनयपत्रिका में आ गए हैं। इस बात को वियोगी हरि जी ने अत्यंत सूक्ष्मता से देखा है और इसकी व्याख्या भक्त तुलसीदास और भगवान श्रीराम के लोकमंगलकारी रूप से जोड़कर प्रभावी ढंग से की है– "क्या डूबते हुए को बचाना, क्या स्तुति करना, क्या दया से आर्द्र होना, क्या संसार को विकार रहित बनाना, लोक कल्याण के ये सभी तत्व विनयपत्रिका का अवलंब हैं। इसीलिए भगवान के लोक पालन करने वाले (पालनकर्ता) कर्म, वचन और भाव को भी यहाँ प्रमुखता के साथ दिखाया गया है।" (वक्तव्य)

उस समय समाज में जैसी विच्छृंखलता थी उसका संकेत तुलसी ने कलिकाल की भीषणता का वर्णन करते हुए अनेक स्थलों पर दिया है। मानस के कलियुग वर्णन में तो उन्होंने समाज का पूरा खाका ही खींच दिया है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अपने आलेख 'विश्वकवि तुलसीदास' में यह संकेत दिया है कि "कलियुग के अत्याचार से त्रस्त होकर उन्होंने (तुलसी ने) राज राजेश्वर महाराज कोसलेंद्र रामचंद्र के दरबार में अपनी अर्ज़ी पेश की है।" आचार्य मिश्र ने यह भी लिखा है कि "यह पत्रिका केवल तुलसीदास की व्यक्तिगत पत्रिका नहीं है। सारे समाज के प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने पत्रिका भगवान के समीप भेजी है।" विनयपत्रिका सर्वजन की चिंता का काव्य है। राम का भक्त तो ऐसा ही होगा जो मानव–कल्याण की चिंता करे, मानव के कष्ट में व्याकुल हो और उससे निजात पाने और देने के लिए श्रीराम से 'विनय' करे। समस्त मानव जाति को एक समझना, मानव जाति को ही नहीं सकल जीव–जंतुओं को भी मानव के अस्तित्व का हिस्सा मानना और इन सबको 'राममय' स्वीकार करना तुलसी जैसे भक्त की लोकमंगल संबंधी साध भी है और साधना भी–

जड़ चेतन जग जीव जंतु सकल राममय जानि।
बँदऊँ सबके पदकमल सदा जोर जुग पानि।।
सीय राममय सब जग जानी, करऊँ प्रणाम जोरि जुग पानी

का भाव भी यही है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तुलसी के लोकमंगलभाव को उनके शील का परिणाम माना है– "गोस्वामी जी की श्रुति सम्मत हरि भक्ति वही है जिसका लक्षण शील है।" और इसी के क्रम में आचार्य शुक्ल ने 'शील' की व्याख्या इन शब्दों में की है – "शील हृदय की वह स्थिति है जो लोक को सदाचार की प्रेरणा आप से आप करके उसका कल्याण करती है।" (तुलसी ग्रंथावली : तृतीय खंड : संवत् 2033)। तुलसी ने अपने असीम भक्त हृदय का परिचय देते हुए भक्ति की अपनी प्यास को चातक और घन के प्रतीक द्वारा अभिव्यंजित किया है– *तुलसी के मन चातकहि केवल प्रेम पिआस*–ध्यान से देखें तो चातक 'घन' से याचना मात्र अपने लिए नहीं, समस्त जगत के लिए करता है। वह घन से जल–दान की याचना करता है कि समस्त भूमि जल–संपन्न हो जाए तथा जीवचराचर सबका उससे हित हो। 'चातक' तुलसी की लोकमंगलमयी प्रकृति का प्रतीक है। तभी तो तुलसी का हृदय उसके स्नेह से आपूरित है– *तुलसी चातक मन बस्यो घन सों सहज सनेह।* यह तो सर्वविदित है कि तुलसी को *राम का लोकरंजक रूप* सर्वाधिक प्रिय लगता है, जैसा कि चातक को मेघ का लोक सुखदाई रूप। चंद्र और चकोर का प्रतीक भी कुछ–कुछ चातक और मेघ जैसा ही है। शुक्ल पक्ष की चाँदनी सर्वहितकारी होती है। गहन अंधकार को भी चंद्र किरणें चीर कर रख देती हैं। तुलसी

श्रीराम से यह भी विनती करते हैं– *"रामचंद्र चंद्र तू, चकोर मोहि कीजै।"*

श्री वियोगी हरि ने यह सटीक लक्षित किया है कि – प्रभु के सर्वगत होने का ध्यान करते–करते भक्त (तुलसीदास) अंत में जाकर उस अवस्था को प्राप्त करता है जिसमें वह अपने साथ–साथ समस्त संसार को एक अपरिच्छिन्न सत्ता में लीन होता हुआ देखने लगता है।" संक्षेप में कहें तो विनयपत्रिका का यह सार्वभौमिक और सर्वकल्याणकारी स्वरूप ही तुलसी और इस काव्यकृति दोनों का आत्मतत्व है– "सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय" का काव्यमय उद्घोष है।

(7)

विनयपत्रिका : तुलसी बारिध बूँद गहि.

तुलसी राम भक्ति के परम गायक हैं। भक्ति रस की प्रबल धारा उन्होंने विशेष रूप से 'रामचरितमानस', 'विनयपत्रिका' तथा 'कवितावली', 'गीतावली' और 'दोहावली' में बहाई है। 'दोहावली' कुल 573 दोहों का संग्रह है। इसका विषय वैविध्य असाधारण है। राम नाम का माहात्म्य इसके कई दोहों में गाया गया है। कलियुग दुर्दशा पर भी अनेक दोहे हैं। वेदांत और ज्ञान चर्चा भी है और धर्मोपदेश भी। भक्तिकाल के अन्य दोहाकारों से तुलसी की यह रचना अपनी विषय–वस्तु में नितांत भिन्न है। श्रीराम इनमें से कई दोहों के केंद्र में हैं। कलिकाल के कारण उत्पन्न सामाजिक विकृतियों को 'दोहावली' का एक दोहा एकदम भिन्न रचनात्मकता के साथ देखता है –

तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन।
अब तौ दादुर बोलिहैं, हमे पूछिहैं कौन।।

ऐसी ही विलक्षणता दोहावली के सभी दोहों में है। इसी प्रकार गीतावली भी एक विलक्षण कृति है जिसमें राम के बिछोह में सीता और कौशल्या की दशा पर मार्मिक पद लिखे गए हैं। सीता की दशा का एक अद्‌भुत चित्र तुलसी ने खींचा है– *लोचन नीर कृपानि के धन ज्यों रहत निरंतर लोचन–कौन* ऐसे कई पद तुलसी के विगलित हृदय से निकले हैं। राम के बिछोह में कौशल्या की तड़प तो मानस में भी इस रूप में न आ पाई थी– *जननी निरखति बान–धनुहियाँ, जब जब भवन बिलोकति सूनो। तब तब बिकल होति कौसल्या, दिन दिन प्रति दुख दूनो।।..., कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर, कहहु काग! फुरि बाता। दूध भात की दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहौं।।* बिछोह में वात्सल्य की ऐसी पराकाष्ठा तुलसी ही बखान कर सकते थे। कौशल्या की तड़प देखकर उसकी गहनता को वे इस प्रकार व्यक्त करते हैं – *तुलसिदास रघुबीर–बिरह की पीर न जाति बखानी।* तुलसी मानव की भावनाओं के कुशल चितेरे हैं। उनकी प्रत्येक रचना उनके काव्य कौशल और शिल्प विधान का स्वतः आदर्श हैं। अपने वक्तव्य के प्रारंभ की पंक्तियों में ही श्री वियोगी हरि जी अपनी प्रांजल और कवित्वमय भाषा में तुलसी की काव्यकला पर परम मुग्ध होते हुए लिखते हैं – "जिन्होंने (तुलसी) चिरपिपासाकुल संसार–संतप्त पथिकों के लिए सुशीतल सुधा–स्त्रोतस्वती पुण्यसलिला राम भक्ति मंदाकिनी की धवल धारा बहा दी है, जिन्होंने भक्त–भ्रमरों के लिए अपनी कृति–वाटिका में भाव–कुंज–कलिकाओं से अनुराग–मकरंद प्रस्त्रावित किया है, जिन्होंने साहित्य–सेवियों के सम्मुख भगवती भारती की अप्रतिम प्रतिमा प्रत्यक्ष करा दी है, भला, उनका प्रातः स्मरणीय पुनीत नाम किस अभागे अरसिक के हृदय–पटल पर अंकित न होगा।"

तुलसी भक्ति काव्य के महान प्रस्तोता हैं। राम भक्ति में वे आत्मलीन हैं। विनयपत्रिका उनकी राम भक्ति में आत्मलीनता की एक अनूठी तथा नव्य–अभिव्यंजनाओं से रंजित कृति है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

मूल ग्रंथ

रामचरितमानस
कवितावली
गीतावली – सभी गीता प्रेस गोरखपुर से
दोहावली
विनयपत्रिका

संदर्भित पुस्तकें

1. तुलसी ग्रंथावली. (सं.), रामचंद्र शुक्ल : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2033

2. विनयपत्रिका (हरितोषिणी टीका), वियोगी हरि, साहित्य–सेवा–सदन, वाराणसी, संवत् 2013

3. तुलसी, डॉ. माताप्रसाद गुप्त, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, संवत् 2006

4. गोस्वामी तुलसीदास, रामचंद्र शुक्ल : इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, 1935

5. गोस्वामी तुलसीदास, श्यामसुंदर दास : इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, 1941

6. तुलसी. (सं.), उदयभानु सिंह : राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1976

7. तुलसी काव्य (सं.), डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1994

8. तुलसी रसायन, डॉ. भगीरथ मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1995

9. गोस्वामी तुलसीदास, रामजी तिवारी, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1998

10. तुलसीदास (सं.), विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999

– 75, आनंदवन, हर्राटोला, पोड़की, लालपुर, पोस्ट जोहिलाबाँध, अनूपपुर, मध्य प्रदेश–484886

❑❑❑

निराला के राम

डॉ. तृप्ता

सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’ आधुनिक छायावादी कविता के मौलिक समता के मूर्धन्य कवि हैं। महाप्राण कवि निराला ने ‘मतवाला’ पत्रिका के संपादक के रूप में अपना उपनाम ‘निराला’ चुना था। वास्तव में यह उपनाम ही उनकी बहुमुखी चारित्रिक विशेषता, मसलन निर्भीकता, अक्खड़ता एवं उग्र स्वभाव तथा नव्यता का पर्याय बन गया। कवि ने अनूठे और निराले ढंग से ही अपनी साहित्यिक रचनाओं का सृजन किया है। इसी संदर्भ में ‘राम की शक्तिपूजा’ कवि की निराली कालजयी कृति मानी जा सकती है।

कविवर निराला पर बांगला मनीषी रामकृष्ण देव, विवेकानंद और रवींद्रनाथ टैगोर की प्रेरणा एवं प्रभाव दोनों दृष्टव्य हैं। निराला की साहित्य–सृजन ऊर्जा में भी इसी गुरु परंपरा के दर्शन होते हैं। निराला कृत ‘राम की शक्तिपूजा’ एक लंबी, विशिष्ट, विख्यात कविता है। इस कविता में कवि ने राम के चरित्र को ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक और दार्शनिक छवियों में उकेरकर उसे आधुनिक प्रासंगिक रूप प्रदान किया है। निराला के राम का व्यक्तित्व समसामयिक जीवन के संघर्षों व द्वंद्वों में विजयी होने का समाधान सुझाता है। कवि ने इस कविता में अपने प्राणों की ऊर्जा की सशक्त अभिव्यक्ति ‘राम’ के माध्यम से की है। डॉ. रामविलास शर्मा के मतानुसार ‘‘राम की शक्तिपूजा जैसी नाटकीयता निराला की और किसी भी कविता में नहीं। यहाँ उन्होंने अपने जीवन की अनुभूति, निराशा, पराजय, संघर्ष और विजय कामना को नाटकीय रूप दिया है।’’ शर्मा जी ने इस लंबी कविता को ‘एपिक–क्वालिटी’ से ओत–प्रोत माना है।

‘राम की शक्तिपूजा’ का संबंध ‘राम कथा’ से है, किंतु निराला की राम कथा के इस शक्तिपूजा प्रसंग का आधार न तो वाल्मीकि ‘रामायण’ है और न ही तुलसीकृत ‘रामचरितमानस’। इस लंबी कविता के कथासूत्र के आधार ‘देवी भागवत पुराण’, ‘शिव महिम्न स्त्रोत’ तथा कृत्तिवास कृत ‘बांग्ला–रामायण’ ही हैं। इन सभी ग्रंथों में शक्तिपूजा का विविध वर्णन मिलता है लेकिन निराला ने शक्तिपूजा प्रसंग को अपनी विशिष्ट और आधुनिक सोच के साथ रचा है। दुर्गापूजा के देश बंगाल में भी शक्ति–आराधना संबंधित ऐसी ऊर्जास्वित रचना अभी तक नहीं लिखी गई है जैसी राम की शक्तिपूजा के रूप में निराला जी ने लिखी है। निराला द्वारा रचित यह काव्य राम के शक्ति मंत्र आह्वान का आख्यान है। इसमें राम की शक्ति–चेतना और मानवीय–चेतना का उत्स दिखलाई पड़ता है। राम की शक्तिपूजा भारतीय पुनर्जागरण को भी परिभाषित करती है, किंतु साहित्यिक स्तर पर उन्मुक्त शक्ति–काव्य के ऐसे रूप के पुरोधा छायावादी कवि प्रसाद और निराला ही माने जाते हैं।

कथानक की दृष्टि से इसमें राम–रावण युद्ध का परंपरागत प्रसंग ही दर्शाया गया है। राम द्वारा लंका पर चढ़ाई कर सीता को रावण की कैद से मुक्ति दिलवाने हेतु ही शक्तिपूजा का उपक्रम किया गया है। निराला ने इस परंपरागत

कथा में नवीन कल्पनाओं का समावेश किया है। इसके तहत जनकवाटिका के दृश्य की पूर्व–दीप्ति के रूप में कल्पना की गई है। दूसरा महाकाश का ग्रास करने के लिए हनुमान का अभियान और अंजनी का छद्म रूप धारण कर महाशक्ति द्वारा उसका शमन दर्शाया है। तीसरे राम के प्रति विभीषण का उद्बोधन भी नव–उद्भावना का ही प्रतीक है। शक्तिपूजा का कथा–प्रसंग परिवर्तित रूप में प्रस्तुत किया गया है। राम–रावण युद्ध के समय राम का रावण के समक्ष विफल होना समग्र विश्वविजयी दिव्यास्त्रों के होते हुए भी अत्यंत चिंतनीय विषय बन जाता है।

निराला की इस लंबी कविता का मूल संदेश राम द्वारा मौलिक शक्ति–नियोजन करना ही है। इसमें राम जैसे आदर्श नायक राष्ट्रीय संदर्भ से जुड़ी समग्र मानवता के लिए चिंतित होते हैं। 'शक्तिपूजा' के राम की पात्र–परिकल्पना निराला की मौलिक–छाप का ही परिणाम है।

नंद दुलारे वाजपेयी के अनुसार–''महान कविता युग की अनिवार्य कविता है।'' यह कथन 'राम की शक्तिपूजा' पर भी चरितार्थ होता है। रवि हुआ अस्त के उद्घोष के साथ कथा आरंभ होकर शक्ति–वरदान प्राप्त कर समाप्त हो जाती है– *होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।* इस कविता के कथानक में युगीन परिस्थितियों के अनुसार दर्शन, मनोविज्ञान, राष्ट्रीय भावना को आधुनिक समसामयिक रूप प्रदान किया गया है। यहाँ शक्तिपूजा वर्णन के तीन स्तर हैं। मसलन, वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और दार्शनिक। वैयक्तिक स्तर पर स्वयं निराला के जीवन–संघर्ष और उनके दुख–सुख की अभिव्यक्ति हुई है। सामाजिक स्तर पर विदेशी शासन के विरुद्ध प्रयासों को चित्रित किया गया है। राष्ट्रीय और दार्शनिक स्तर पर सत्–असत् के द्वंद्व, जय–पराजय को भी दर्शाया गया है।

निराला ने राम का व्यक्तित्व एक साधारण व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। यह वही परंपरागत राम हैं जो रघुकुल के गौरव हैं, साधक हैं, क्षत्रिय धर्म के पालक, पौरुषवान, पराक्रमी तथा संवेदनशील, सुमित्र होने के साथ–साथ धीरोदात नायक और गहन उदात्त चरित्र वाले हैं।

निराला के नायक राम तुलसी, वाल्मीकि के राम से भिन्न हैं। वह यहाँ ब्रह्म रूप में वर्णित नहीं हैं। वह आम इनसान की भाँति रूदन करते हैं। तनाव और मानसिक उथल–पुथल के भावावेग में बह जाते हैं, किंतु फिर भी आत्मसंयम को नहीं त्यागते हैं, निष्कंप दीपशिखा की भाँति। राम की चिंता व्यक्तिगत न होकर सामाजिक और राष्ट्रीय सरोकारों से जुड़ाव रखती है। युद्ध में असफलता के बावजूद उनका व्यक्तित्व गरिमा से लबरेज रहता है।

दृढ़ जटामुकुट हो विपर्यस्त प्रति लट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर बिपुल।

खलनायक नायक रावण के साथ युद्ध में पराजय–भाव से ही वह सिहर उठते हैं–

स्थिर राघवेंद्र को हिला रहा, फिर–फिर संशय,
रह–रह उठता जग जीवन में रावण जय भय।

योग साधना के अनुरूप निराला के राम पूजक न होकर साधक रूप में दिखलाई पड़ते हैं। आत्म–साधनारत राम, साधक राम और उनकी भक्ति सूक्ष्म और आंतरिक भाव से परिपूर्ण हैं। इस कविता के राम अशेष शक्ति के प्रतिमान हैं। कवि ने राम की मनोदशा के अनुरूप ही परिवेश का चित्रण अत्यंत सुंदर ढंग से किया है। निराला के राम *'अतुल बल शेष नयन'* होकर भी साधारण मानव के समान संशयग्रस्त होते हैं। कवि ने राम की निराशा को भी बखूबी दर्शाया है। यह युद्ध देव–असुर, सत्–असत् का संघर्ष है। राम की चिंता और निराशा वैयक्तिक न होकर व्यापक रूप से जग–जीवन से जुड़ाव रखती है। निराला के काव्य में मुख्य चरित्र राम हैं, खलनायक रावण है और बाकी सभी पात्र सहायक रूप में हैं। हनुमान, जाम्बवान तथा अन्य वन्य प्राणियों का एकत्रीकरण कर राम समाज के हाशिए के तबके को मुख्यधारा में संगठित व सम्मिलित करने का संदेश देते हैं। राम सामाजिक न्याय और उपेक्षित वर्ग के अधिकारों के पक्षधर के रूप में यहाँ खड़े दिखलाई पड़ते हैं।

रावण के समक्ष राम का सारा पुरुषार्थ और युद्ध –कुशलता जब व्यर्थ होने लगती है तो वह इस कठिन परिस्थिति में एक सामान्य संवेदनशील व्यक्ति की तरह सोचते हुए दिखाई देते हैं। राम के भीतर आत्मग्लानि भाव 'धिक जीवन को जो पाता ही आया विरोध।' एक ओर यह मनःस्थिति है तो दूसरी ओर निराला लिखते हैं– किंतु वह रहा एक मन और राम का, जो न थका। अर्थात् राम के भीतर एक उच्चतर मनोवृत्ति भी विद्यमान है। इस कविता में राम की मानसिकता की अभिव्यक्ति 'टेक्शचर' और 'स्ट्रकचर' के सामंजस्य के रूप में परिणत हुई है। राम का संघर्ष सघन व जटिल है। एक ओर बाहर असुर रावण और दूसरी ओर भीतरी असुर। दोनों के नाश हेतु राम को जाम्बवान द्वारा शक्तिपूजा करने का परामर्श दिया जाता है– "शक्ति की करो मौलिक कल्पना करो पूजन छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो, रघुनंदन।" इस पूजन के लिए राम समर्पण भाव से लीन होते हैं। राम के दृष्टिकोण में बदलाव आने लगता है। युद्ध में शक्ति की भीमाभूति उन्हें सभी दिशाओं में व्याप्त मंगलकारिणी तथा असुर विनाशनी दुर्गा के रूप में दिखाई देने लगती है। उनके मन का राक्षसत्व पराजित हो जाता है। राम की इस आंतरिक विजय के द्वारा ही बाह्य असुर पर भी उनका मार्ग प्रशस्त हो जाता है। यह विजय –'स्थूल पर सूक्ष्म' की विजय का प्रतीक है। सर्वप्रथम राम स्वयं को साधते हैं और पूर्णतः समर्पण भाव से ही उन्हें सिद्धि प्राप्त होती है। राम का रावण से युद्ध का मूल उद्देश्य सीता–उद्धार ही है। राम स्त्री–विमर्श के तहत उनके हितों व सम्मान को अत्यधिक महत्व देते हैं। पत्नी व माँ के प्रसंग राम के स्त्री विषयक नजरिए को दर्शाते हैं। कविता में अवसादग्रस्त राम को सीता की जनकवाटिका में प्रथम मिलन की पूर्वस्मृति स्त्रीशक्ति व स्त्री–प्रेम का मनोवैज्ञानिक संबल प्रदान करती है।

ऐसे क्षण अंधकार घन में जैसे विद्युत, जागी पृथवी तनया कुमारिका छवि अच्युत।

अतीत में 'प्रिया स्मरण' मानो राम के भीतर कठोर वर्तमान से जूझने की सकारात्मक ऊर्जा प्रदान करता है। इसी से जुड़ा दूसरा प्रसंग पूजा में अंतिम कमल न मिलने पर हताश और असफल राम को माँ द्वारा प्रेमपूर्वक 'राजीव नयन' कहे जाने की पूर्वस्मृति नेत्र रूपी पुण्य का समर्पण करने का भाव उत्पन्न करती है।

कहती थी माता मुझे सदा राजीव नयन।

राम को दुविधा, संशय और समस्या का उपाय 'राजीव नयन' के टूल के रूप में सूझ जाता है। निराला ने नारी–सौंदर्य और मातृस्नेह द्वारा राम के 'नेत्र त्याग' और आत्मबलिदानी रूप की प्रस्तुति की है– *ले अर्पित करने को उद्धत हो गए सुमन* पंक्ति द्वारा कवि ने यहाँ राम के सुंदर मन के समर्पण–भाव को अभिव्यक्ति दी है। शक्तिपूजा के राम पारंपरिक जकड़न को तोड़ने वाले प्रतिनिधि हैं जो कि पूजा और साधना के मार्ग से आधुनिक भारतीय मन की मुक्ति की तान छेड़ते हैं।

राम एक मिथक हैं, राम चरम सत्य हैं जो कि इस कविता में 'सत्यमेव जयते' का मूलमंत्र फूँकते हैं। राम का चरित्र 'विरुद्धों का सामंजस्य' है। राम प्रतीक हैं जो कि कई तरह के विरोधों की गहराई के बावजूद संघर्ष को व्यापक धरातल प्रदान करते हैं।

'राम की शक्तिपूजा' में राम की चारित्रिक सुपात्रता–व्यंजक राम के देवत्व एवं धर्माधारित पक्ष' की प्रस्तुति की गई है। राम के विश्वविजयी बाणों की शक्ति एवं लक्ष्य का गुणगान किया गया है।

हो सकती है जिनसे यह संसृति संपूर्ण विजित,
जो बस पुंज सृष्टि की रक्षा का विचार,
है जिनमें निहित पतनधात संस्कृति अपार
शत सुद्धि बोध सूक्ष्मति सूक्ष्म बनकर विशेश।

वास्तव में यह कविता साधक राम की 'नवीन पुरुषोतम' रूपी विजय कथा का रूपांतरित विजन है। राम की विराट परिकल्पना, शक्ति में गहरी आस्था राम जैसे संपूर्ण व्यक्तित्व का शक्ति–संग्रह राम का निजी आत्म–साक्षात्कार अंततः सार्वजनिक, सार्वभौमिक रूपाकार ग्रहण कर लेता है।

दरअसल राम के भीतर शक्ति–प्रवेश उनके व्यक्तित्व का ही अंग बन जाती है और उसका युगीन संभावना, युगीन वास्तविकता के साथ जुड़ाव स्थापित हो जाता है। निराला ने राम के आत्मान्वेषण

का संबंध मौलिकता से जोड़ा है। राम–रावण के बीच सनातन युद्ध रावण की हीनतर मनोवृत्ति का प्रतीक है जबकि राम की उच्चतर मनोवृत्ति का। राम के चरित्र और संघर्ष द्वारा निराला ने स्वजीवन एवं कवि–कर्म की बाधाओं को भावाभिव्यक्ति प्रदान की है। इस कविता में निराला राम के माध्यम से कवि भावी पीढ़ी में पुरुषोचित गुण, नया मार्ग, नया छंद, नयी भाषा, जीवन में नव–अवतारणा के अनेकानेक आयाम चित्रित करते हैं। युवा मानस के भीतर राम के समान राष्ट्र के प्रति समर्पण भाव परोसते हैं। राम का वैयक्तिक चिंतन, अनुभूति की परिधि, अवसाद, सुख–दुख का उतार–चढ़ाव, आशा–निराशा, देशप्रेम, राष्ट्रीय भावना, जीवन के बदलते पहलुओं और बदलते मूल्यों के रोल–मॉडल के रूप में कथानायक राम के उज्ज्वल गुणों की छवि अंकित करते हैं। निराला महात्मा गांधी के समान वैयक्तिक आत्मबल का आह्वान और आंदोलन की मौलिक योजना द्वारा राम की विजय का अनुष्ठान संपन्न करवाते हैं जो कि अत्यंत प्रेरणास्पद एवं अनुकरणीय है।

गौरतलब है कि निराला के राम संयमी हैं। वह विषाद जड़ित होकर भी चरित्रानुकूल आचरण करते हैं। राम परम पुरुष के नए अवतार की तर्ज पर धर्मरक्षा हेतु, रावण–वध हेतु मौलिक शक्ति–सिद्धि के लिए अनुष्ठान करते हैं।

होगी जय, होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन।
कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।

वस्तुतः इस कविता में राम 'मानव मन की अपराजेयता' को स्थापित करते हैं। राम का मन पराजय की संभावना से आक्रांत, व्याकुल और कुंठित होता है लेकिन इस कुंठित मन की मुक्ति और अपराजेयता का आधार आध्यात्मिक मौलिक–शक्ति ही चरम सत्य साबित होती है। राम के चरित्र में नई परिस्थिति, नई परंपरा का संघर्ष व तनाव वैयक्तिक तौर पर न होकर सामूहिक तौर पर वर्णित है। राम का आदर्श चरित्र मानव के भीतर की आत्मशक्ति के विकास का प्रतीकार्थ है, क्योंकि शक्ति स्वयं मानव के भीतर विद्यमान है। हमें केवल उसका संधान करना है।

बहरहाल निराला कृत 'राम की शक्तिपूजा' वर्तमान युग की त्रासद परिस्थितियों में राम द्वारा एक विराट, मूल्यवान, आस्थावान, विश्व–विजय की सकारात्मक ऊर्जा का स्रोत द्वार खोलती है। प्रस्तुत कविता में उन्नायक राम का व्यक्तित्व उनकी संभावनाओं के साक्षात्कार की सतत प्रक्रिया है। मानवीय आत्मशक्ति का विराट आख्यान है। असफलता के बीच सफलता का गान है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी के 'आनंद की साधनावस्था' का उच्चतम मनोभाव है। 'राम की शक्तिपूजा' अपने युग के साथ–साथ वर्तमान, भविष्य की भी कथा है। यह कृति बहुअधीत कवि निराला की उपलब्धि का मानदंड है।

सदर्भ ग्रंथ सूची

1. राम की शक्तिपूजा, निराला की कालजयी कृति, डॉ. नगेंद्र
2. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी
3. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. बच्चन सिंह
4. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. सुधींद्र कुमार
5. भारतीय साहित्य के निर्माता निराला, परमानंद श्रीवास्तव

– एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी विभाग, अदिति महाविद्यालय बवाना, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

वाल्मीकि रामायण के महारहस्य के उद्घाटक गुंटूर शेषेंद्र शर्मा

डॉ. जे. आत्माराम

सारांशः

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि द्वारा विरचित रामायण अत्यंत महिमावान काव्य है। सदियों से रामायण का पारायण किया जा रहा है, पर रामायण में गायत्री मंत्र, कुंडलिनी योग आदि निक्षिप्त हैं, यह रहस्य कई लोगों को नहीं पता। इन रहस्यों को उद्घाटित करने का श्रेय तेलुगु भाषा के प्रसिद्ध कवि गुण्टूर शेषेंद्र शर्मा को प्राप्त है। यहाँ शेषेंद्र शर्मा द्वारा लिखित विमर्शात्मक पुस्तक षोडशी : 'रामायण के रहस्य' के महत्व को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। वर्ष 1967 में मूलतः तेलुगु में प्रकाशित इस पुस्तक का हिंदी अनुवाद (2006) कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन के विद्वान डॉ. जगदीश शर्मा ने किया। यह पुस्तक रामायण में निक्षिप्त किए गए मंत्रों को जानने के लिए बहुत ही उपयोगी है। यह पुस्तक भारतीय साहित्य की अनमोल निधि है। इसके बग़ैर महर्षि द्वारा रामायण में निक्षिप्त किए गए मंत्रों के रहस्यों तक पहुँचना असंभव है।

संकेत शब्द : रामायण, षोडशी, कुंडलिनी योग, गायत्री मंत्र, श्रीविद्या, पराशक्ति

'चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्'[1] कहा गया है। अर्थात् श्री रघुनाथ का चरित्र सौ कोटि के विस्तारवाला है। लोकमंगलकारी, पुरुषोत्तम श्रीराम की कथा वेदभूमि भारत पर सहस्रों वर्षों से कही जा रही है और कही जाती रहेगी। क्योंकि रघुकुलनंदन श्रीराम सत्य, शील एवं धर्म के प्रतिरूप हैं, और श्रीराम से भारतवर्ष की अस्मिता पहचानी जाती है। राम कथा का आर्षकाव्य महर्षि वाल्मीकि द्वारा विरचित 'रामायण' है। यह संसार का आदिकाव्य है। इसी से कविता की शुरुआत हुई है, ऐसा माना जाता है। 'रामायण' को वेदों का विस्तार भी कहा गया है। यह ग्रंथ काव्यशास्त्रीय दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। प्राचीन हो या आधुनिक यह सभी लेखकों के लिए आदर्श–काव्य है। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में जिस प्रकार उपमाओं का प्रयोग किया है उसे देख कर शेषेंद्र शर्मा 'उपमा कालिदासस्यः' नहीं, बल्कि 'उपमा वाल्मीके' कहना अधिक उचित समझते हैं। क्योंकि महर्षि वाल्मीकि ने जिस प्रकार उपमा अलंकार का प्रयोग किया है उसका प्रभाव महाकवि कालिदास के 'रघुवंश' में भी देखा जा सकता है। (शर्मा, शेषेंद्र; 2019)

वैसे तो संस्कृत वाङ्मय वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद्, महाकाव्यादि से परिपूर्ण हैं। फिर भी, जो महत्व वाल्मीकि 'रामायण' को प्राप्त है, वह अद्वितीय है। मानव के नैतिक जीवन के उद्धार के लिए जो भी आवश्यक है वह सब इस रामायण में है। इसलिए तेलुगु के प्रसिद्ध कवि श्री विश्वनाथ सत्यनारायण ने रामायण को 'कल्पवृक्ष' कहा है। ('रामयणकल्पवृक्षम्' महाकवि श्रीविश्वनाथ सत्यनारायण जी का रामायण पर लिखा प्रसिद्ध ग्रंथ है)।

विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालों तक के पाठ्यक्रम में रामायण पढ़ाया जाता है। सैकड़ों वर्षों से रामायण का पारायण हो रहा है। रामायण यूँ ही पारायण काव्य नहीं बना। विश्वास किया जाता है कि रामायण का पारायण ही नहीं श्रवण भी अत्यंत

मंगलकारी होता है। क्योंकि इसमें महर्षि वाल्मीकि ने गायत्री मंत्र सहित अनेक मंत्रों को रहस्य रूप में निक्षिप्त किया है। यह वाल्मीकि रामायण का ऐसा अद्भुत महारहस्य है जिसकी ओर साधारण पाठकों का ध्यान प्रायः कभी नहीं जाता। रामायण में निक्षिप्त इन अद्भुत रहस्यों का उद्घाटन पहली बार तेलुगु भाषा के महाकवि गुण्टूरु शेषेंद्र शर्मा ने अपने ग्रंथ 'षोडशी : रामायण के रहस्य' में किया है।

सर्वविदित है कि राम कथा को पहली बार महर्षि वाल्मीकि ने ही लिखा है। वाल्मीकि रामायण से प्ररेणा पाकर बाद में सैकड़ों रामायण लिखी गईं। पुराणों, बौद्ध जातकों और जैन साहित्य में भी राम कथा प्राप्त होती है। इतना ही नहीं, अनेक भारतीय भाषाओं में भी रामायण रची गईं। "हिंदी में कम से कम 11, मराठी में 8, बाग्ंला में 25, तमिल में 12, तेलुगु में 12 तथा ओड़िया में 6 रामायण मिलती हैं।"[2] मानसकार गोस्वामी तुलसीदास ने सत्य कहा है– *नाना भाँति राम अवताता, रामायन सतकोटि अपारा।*[3]

इस संदर्भ में रोचक तथ्य यह है कि, सहस्रों वर्षो से रामायण ग्रंथ पढ़ा और पढ़ाया जा रहा है। अनेक विद्वानों, पंडितों एवं काव्यशास्त्रियों द्वारा इसकी व्याख्या की गई किंतु अब तक किसी ने भी उन रहस्यों की चर्चा नहीं की जिसका उल्लेख तेलुगु भाषा के महाकवि एवं श्रीविद्योपासक शेषेंद्र शर्मा करते हैं। इसका एक कारण यह हो सकता है कि अब तक अधिकतर पाठक रामायण के वाच्यार्थ को ही विश्लेषित करते रहे हैं, ध्वन्यार्थ को नहीं। शेषेंद्र शर्मा ध्वन्यार्थ के माध्यम से रामायण के रहस्यों को उद्घाटित करते हैं।

शेषेंद्र शर्मा तेलुगु भाषा के ही नहीं, संस्कृत साहित्य के भी महापंडित हैं। वे आगमशास्त्र, मंत्रशास्त्र, एवं तंत्रशास्त्र के विद्वान हैं। शेषेंद्र शर्मा के पांडित्य का प्रमाण 'षोडशी' के प्रत्येक पृष्ठ पर देखने को मिलता है। उनके विश्लेषण की पद्धति एवं तर्क–निरूपण के लिए दिए गए आधार देखकर संस्कृत महापंडित भी आश्चर्य व्यक्त करते हैं क्योंकि वे अपने तर्कों को प्रमाणित करने के लिए श्रीललितासहस्रनाम, सौंदर्यलहरी, देवीभागवत्, भास्करराय के भाष्य, सीतोपनिषत्, रामरहस्योपनिषत्, रामतापिन्युपनिषत्, चम्पूरामायण आदि को उद्धृत करते हैं।

'सुंदरकांड के त्रिजटा स्वप्न में गायत्री मंत्र निक्षिप्त है', यह विचार ही चमत्कारिक है। शेषेंद्र शर्मा इस रहस्य को न केवल उद्घाटित करते हैं बल्कि इस बात को प्रमाणित करने में पूरी तरह से सफल भी होते हैं।

वैसे, महर्षि वाल्मीकि द्वारा विरचित संपूर्ण रामायण ही एक दिव्य काव्य है। उसमें 'सुंदरकांड' अत्यंत महिमावान है। उस 'सुंदरकांड' में गायत्री मंत्र का निक्षिप्त होना अभूतपूर्व कल्पना है। इस संदर्भ में शेषेंद्र एक और रोचक विषय को भी उद्घाटित करते हैं– *"सुंदरकांड रामायण का हृदय–स्थल है तो सुंदरकांड का हृदय है त्रिजटास्वप्न! इसकी स्थिति कहाँ है, देखें– रामायण के चौबीस हजार श्लोकों के ठीक बीच में है। बारह हजार श्लोकों के पश्चात् प्रारंभ होने वाले तेरहवें हजार का प्रथम श्लोक इस त्रिजटा स्वप्न–वृत्तांत के मध्य है।"*[4]

वाल्मीकि रामायण केवल कथा काव्य नहीं है। इसमें कई परमरहस्य विद्यमान हैं। ये रहस्य काव्य में इस तरह निक्षिप्त किए गए हैं कि साधारण पाठक की पकड़ में नहीं आते, क्योंकि साधारण पाठक प्रायः काव्य का वाच्यार्थ ही ग्रहण करते हैं। इन रहस्यों तक पहुँचने के लिए काव्य के ध्वन्यार्थ को ग्रहण करना होगा और इसके लिए पाठक को ध्वनिशास्त्र का अच्छा ज्ञाता भी होना होगा। ध्वन्यार्थ ही क्यों? इस संदर्भ में शेषेंद्र शर्मा लिखते हैं– ध्वनिसिद्धांत अपने प्रतिपादन के पश्चात् चर्चित, विस्तरित, अलंकृत अवश्य हुआ, किंतु खंडित होकर किसी नए मत का मार्ग इसने प्रशस्त नहीं किया। अर्थात् जब तक मिथ्या दृश्य देखता रहा लोक संतुष्ट नहीं हुआ, सत्य के गोचर होते ही वह तृप्त हो गया, अतः विराम लग गया। किंतु इससे पहले के अलंकार, औचित्य, रीति आदि सिद्धांत काव्य–तत्व संबंधी विचार–चर्चा, खंडन– मण्डन के आधार पर विकसित हुए। अर्थात् ध्वनि–अर्थ ही वास्तविक सत्य है। (शर्मा, शेषेंद्र; 2019)

"रामायण में विद्यमान रहस्यों में परमरहस्य है– सुंदरकांड में निक्षिप्त कुंडलिनी योग। सुंदरकांड का प्रथम श्लोक ही इस रहस्य की प्रस्तावना कर देता है। वह श्लोक इस प्रकार है–

ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्शनः
इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि।।

रावण द्वारा ले जाई गई सीता के वास–स्थान को शत्रुकर्शन (हनुमान्) ने चारणचरित पथ में ढूँढने का विचार किया– यह श्लोक का अर्थ है।[5]

शेषेंद्र शर्मा इस श्लोक का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट करते हैं कि श्लोक में प्रयुक्त 'चारणाचरिते पथि' का अर्थ टीकाकारों ने देवगायक चारणों के संचरण का मार्ग (यानी आकाश मार्ग) किया है। आकाश देव संचरण के मार्ग के रूप में तो प्रसिद्ध है, किंतु देवगायक संचरण मार्ग के रूप में प्रसिद्ध कैसे हुआ? परंतु सारा रहस्य तो 'चारण' शब्द में ही है। श्रीललितासहस्रनामावली के अंतर्गत 'बिसतन्तुतनीयसी' नाम पर भास्कर राय द्वारा प्रस्तुत भाष्य को उद्धृत करते हुए शेषेंद्र शर्मा कुंडलिनी शक्ति का एक पर्यायवाची शब्द 'चरण' भी है, बताते हैं और कहते हैं कि यह 'चरण' शब्द ही अपने प्रस्तुत श्लोक में 'चारण' बना।

'आचरिते पथि' को समझाने के लिए भाष्यकार द्वारा 'आ समन्तात् चरितः' कहा गया क्योंकि मूलाधार से उत्थापित कुंडलिनी शक्ति, सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कर उत्तरोत्तर क्रम से स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा चक्रों को पार करती हुई सहस्रार पद्म में जाकर वहाँ शिव से संयोग प्राप्त करती है। संक्षेप में यही कुंडलिनी योग है। इस भाँति षट्चक्रों में यात्रा करते समय प्रत्येक चक्र के समस्त दलों में चरण कर फिर तदनंतर चक्र को पहुँचती है। इसलिए 'आचरिते पथि' कहा गया है। अतएव 'चारणाचरित पथि' का अर्थ हुआ षट्चक्रमार्ग अर्थात् कुंडलिनी योग।"(शर्मा, शेषेंद्र; 2019)

इसी प्रकार, शेषेंद्र शर्मा की दूसरी सबसे महत्वपूर्ण स्थापना है 'त्रिजटा का स्वप्न गायत्री मंत्र ही है'। त्रिजटा–स्वप्न का वृत्तांत कुछ इस प्रकार है– "अशोक वाटिका में तैनात लंका की राक्षस स्त्रियाँ रावण की प्रेरणा से सीता को तंग करने लगीं कि रावण का वरण करो, किंतु सीता ने दृढ़ चित्त से उनकी माँग को ठुकरा दिया तो वे धमकी देने लगीं कि तुम्हें हम खा जाएँगी।" तब उनमें से त्रिजटा नामक राक्षसी ने उन सबको रोकते हुए कहा– "तुम लोग स्वयं का भक्षण कर लो, सीता को नहीं खा सकोगी। मैंने एक स्वप्न देखा है। उसमें राम लक्ष्मण सहित आते हैं और सीता की रक्षा करते हैं, उसे ले जाते हैं। मैंने देखा कि रावण आदि राक्षसों का तथा लंका का विनाश हो गया है।" इस स्वप्न में त्रिजटा को राम चार बार चार प्रकार से दिखलाई देते हैं। "पहली बार हाथी के दाँतों का बना हुआ, सहस्र हंसों से जुता हुआ, आकाश में जाने वाली शिबिका (पालकी) में बैठकर राम आए।"[6] "दूसरी बार पर्वत सदृश चार दाँतों वाले महागज (ऐरावत) पर लक्ष्मण के साथ आरूढ़ राम सुशोभित हैं।"[7] "तीसरी बार आठ श्वेत वृषभों से जुते रथ पर सवार हो राम सीता के साथ यहाँ आए।"[8] और "चौथी बार श्वेत मालाओं को तथा वस्त्रों को धारण कर राम लक्ष्मण सहित पुष्पक विमान पर बैठकर आए।"[9] इन चारों दृश्यों के पश्चात् त्रिजटा देखती है कि "राम पुष्पक विमान में बैठकर उत्तर दिशा की ओर चले गए।"[10]

यदि त्रिजटा स्वप्न को सामान्य स्वप्न मान लें, तो उसका यही अर्थ लिया जाएगा, जैसे कि अक्सर विद्वान लेते आए हैं। किंतु शेषेंद्र शर्मा त्रिजटा–स्वप्न का ध्वन्यार्थ ग्रहण करते हुए गायत्री मंत्र की खोज करते हैं। शेषेंद्र शर्मा का विश्लेषण देखिए– "प्रथम दृश्य में वाहन शिबिका गजदंतमयी है। गज अर्थात् आठ। दंत अर्थात् बत्तीस। इस प्रकार यह शिबिका आठ तथा बत्तीस से युक्त है। दूसरे दृश्य का वाहन है महागज अर्थात् महा आठ। यह महागज चतुर्दंत (चार दाँतों वाला) है। इस प्रकार राम चार बत्तीस युक्त महा आठ पर आरूढ़ होकर आते हैं। यह तो गायत्री मंत्र के स्थूल स्वरूप का वर्णन ही है न!"[11]

त्रिजटा–स्वप्न गायत्री मंत्र कैसे हो सकता है? प्रथम दृश्य में गजदंतमयी कहकर गज शब्द से आठ की संख्या बतला कर गायत्री को अष्टाक्षरी सूचित किया गया है। दंत शब्द से गायत्री मंत्र के कुल अक्षरों को बत्तीस बतलाया गया है। गायत्री

के एक–एक पाद में कुल आठ अक्षर होते हैं। अतएव इस मंत्र के कुल चार पद होते हैं, जिसे द्वितीय दृश्य के चतुर्दंत महागज से सूचित किया गया है। इसमें प्रयुक्त दंत और गज शब्द नवीन नहीं हैं, प्रथम दृश्य के ही हैं, परंतु इसमें चतुः अधिक है वह बतलाने के लिए कि यतियों के– 'परो रजसि सावदो' इस तुरीय पाद को मिलाकर चार पाद बतलाए गए हैं, उन्हीं को यहाँ सूचित किया गया है। यही पूर्ण गायत्री है। यहाँ पर यही ध्वनित किया गया है।[12]

एक बात और, शेषेंद्र शर्मा कहते हैं कि "इस अपूर्व कल्पना का नाम ऋषि ने त्रिजटा–स्वप्न रखा है। त्रिजटा कहने में भी रहस्य छुपा हुआ है। त्रिजटा कोई राक्षसी नहीं, गायत्री के लिए उक्त सहस्र नामों में एक नाम त्रिजटा भी है– त्रिजटा तित्तिरी तृष्णा त्रिविधा तरुणाकृतिः।"[13] (दे.भा.12.6.72) गोस्वामी तुलसीदास भी "त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका।।"[14] कह कर त्रिजटा के विशिष्ट गुणों की ओर संकेत करते हैं।

'षोडशी' में शेषेंद्र शर्मा की एक और महत्वपूर्ण स्थापना यह है कि 'माता सीता पराशक्ति ही है।' सीता के महालक्ष्मी होने की ध्वनि वाल्मीकि के संपूर्ण काव्य में अनुस्यूत है। सुंदरकांड में तो विपुलता में उपलब्ध हैं। (शर्मा, शेषेंद्र; 2019) "रामायण में माता सीता के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन शब्दों में एक है सुंदरकांड में प्रयुक्त 'विद्या'। महर्षि वाल्मीकि ने अनेक बार माता सीता की तुलना 'विद्या' से की है। प्रायः इसे सामान्य अर्थ में ही लिया जाता है, किंतु पूर्वापर विवेचन कर वह शब्द जिन श्लोकों में प्रयुक्त है उन श्लोकों का पुनः–पुनः चर्वण किया जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि 'विद्या' शब्द केवल शास्त्रीय पारिभाषिक अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। महर्षि वाल्मीकि ने सुंदरकांड के पंद्रहवें सर्ग के 35वें श्लोक में अशोकवन में क्षीण, शोकमग्न सीता का वर्णन करते हुए 'कृशांमलिनिदिग्धाङ्गी विद्यां प्रतिपदीमिव' कहा है (कुछ संस्करणों में यह पाठ अनुपलब्ध है) जिसका तात्पर्य है कि 'सीता प्रतिपदा विद्या–सी श्रीण हो गई है।' यहाँ 'विद्या' का अर्थ सामान्यतः पाठशालाओं में गुरु के समीप सीखने वाली विद्या का अर्थ हो सकता है, पर रामायण के हृदयभूत सुंदरकांड में विद्या का अर्थ है– पराशक्ति। महर्षि वाल्मीकि ने इसी आशय से इस शब्द का प्रयोग किया है। शेषेंद्र शर्मा द्वारा ऐसा सोचने के दो कारण हैं। पहला कारण है, इस श्लोक के पूर्व तथा उत्तर श्लोकों में पराशक्ति के ही अपर नाम स्मृति, आज्ञा, कीर्ति इत्यादि शब्दों का प्रयुक्त होना। दूसरा, सकल तंत्रशास्त्र ग्रंथों में प्रसिद्ध पराशक्ति का एक पर्याय 'विद्या' शब्द का होना। इस मत के प्रमाणस्वरूप शेषेंद्र शर्मा ने देवीभागवत् और उस पर लिखे नीलकंठ की टीका, विष्णुकृत भुवनेश्वरी स्तुति, श्री ललितासहस्रनाम में उलिखित 'विद्यायै नमः' मंत्र सौंदर्यलहरी का 32वाँ श्लोक और उस पर लिखे लक्ष्मीधर टीका को प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। इतना ही नहीं, रामायण में सीता के लिए चंद्रकला की उपमा अनेक स्थलों पर दी गई है। यह भी सीता को पराशक्ति ही सिद्ध करता है। इस प्रकार शेषेंद्र शर्मा 'श्रीललितासहस्रनाम', 'सौंदर्यलहरी' 'देवीभागवत्' सीतोपनिषत्, रामरहस्योपनिषत् तथा रामतापिन्युपनिषत् आदि शास्त्रों में उलिखित मंत्रों एवं श्लोकों और उन पर लिखी टीकाओं के आधार पर इस महारहस्य को निरूपित करते हैं कि माता सीता पराशक्ति ही हैं। (शर्मा शेषेंद्र 2019)

शेषेंद्र शर्मा ने अपने ग्रंथ 'षोडशी : रामायण के रहस्य' के माध्यम में उक्त रहस्यों के अतिरिक्त 'श्री सुंदरकांड को वह नाम कैसे मिला है?', 'भारत रामायण का प्रतिबिंब है', 'मेघसंदेश का रामायण से संबंध', 'रामायण को विष्णुपरक कहने की अपेक्षा इंद्रपरक कहना अधिक उचित है', 'भारत से रामायण की अर्वाचीनता' आदि कई महत्वपूर्ण विमर्शात्मक निबंध दिए हैं जो कि रामायण में निहित तंत्रशास्त्रीय रहस्यों से पाठकों का परिचय कराते हैं। अतः रामायण और राम तत्व में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए यह पुस्तक अवश्य पठनीय है।

निष्कर्ष

तेलुगु भाषा के महाकवि शेषेंद्र शर्मा संस्कृत साहित्य एवं आगम शास्त्र के निष्णात पंडित हैं। उन्होंने 'षोडशी : रामायण के रहस्य" की रचना कर सुंदरकांड में विद्यमान कुंडलिनी योग, गायत्री

मंत्र, श्रीविद्या के जिन महारहस्यों को उद्घाटित किया है वह अभूतपूर्व हैं। अंत में, हिंदी पाठकों के लिए इस पुस्तक की महत्ता और उपयोगिता के संदर्भ में श्रद्धेय डॉ. कमलेशदत्त त्रिपाठी, (पूर्व निदेशक, कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन, म.प्र.) के शब्दों को उद्धृत करना मात्र ही पर्याप्त होगा, वे लिखते हैं– "रामायण को मंत्रशास्त्र और श्रीविद्या साधना के रहस्यार्थ से समन्वित महाग्रंथ के रूप में विद्वानों के सामने रखकर महाकवि शेषेंद्र शर्मा ने विद्वज्जगत का उपकार किया है।"15

मूलतः तेलुगु में लिखित इस ग्रंथ के अनुवाद के संदर्भ में एक वाक्य कहना आवश्यक है कि इस ग्रंथ को पढ़ते हुए पाठकों को कहीं भी ऐसा प्रतीत नहीं होगा कि वे अनुवाद पढ़ रहे हैं। इस पुस्तक का पहला संस्करण 2006 में प्रकाशित हुआ था। इसका द्वितीय संस्करण शेषेंद्र शर्मा के सुपुत्र सात्यकि के सत्प्रयत्नों से गुंटूर शेषेंद्र शर्मा मेमोरिलय ट्रस्ट, हैदराबाद द्वारा 2019 में प्रकाशित किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. तुलसीदास, रामरक्षास्तोत्रम, श्लोक–1, गीताप्रेस, गोरखपुर।

2. https://hi.wikipedia.org/विभिन्न_भाषाओं_में._रामायण (1.8.2021)

3. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकांड, 1.1.33

4. शर्मा, शेषेंद्र; षोडशी : रामायण के रहस्य, (द्वितीय संस्करण, 2019), पृ.सं. 66

5. शर्मा, शेषेंद्र; षोडशी : रामायण के रहस्य, (द्वितीय संस्करण, 2019), पृ.सं. 66–67

6. शर्मा, शेषेंद्र; षोडशी : रामायण के रहस्य, (द्वितीय संस्करण, 2019), पृ.सं. 111

"गजदंतमयीं दिव्यां शिबिकां अन्तरिक्षकाम्
युक्तां हंससहस्रेण स्वयमास्थाय राघवः
शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन सहागतः।"

7. शर्मा, शेषेंद्र; षोडशी : रामायण के रहस्य, (द्वितीय संस्करण, 2019), पृ.सं. 112

राघवश्च मया दृष्टः चतुर्दंतं महागजम्।
आरूढ़ शैलसंकाशं चकास सह लक्ष्मणः।

8. शर्मा, शेषेंद्र; षोडशी : रामायण के रहस्य, (द्वितीय संस्करण, 2019), पृ.सं. 113

पाण्डरर्षभयुक्तेन रथेनाष्टयुजा स्वयम्।
इहोपयातः काकुत्स्थ सीतया सह भार्यया।

9. शर्मा, शेषेंद्र; षोडशी : रामायण के रहस्य, (द्वितीय संस्करण, 2019), पृ.सं. 114

लक्ष्मणेन सह भ्राता विमाने पुष्पके स्थितः
शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन समागतः।

10. शर्मा, शेषेंद्र; षोडशी : रामायण के रहस्य, (द्वितीय संस्करण, 2019), पृ.सं. 114

आरुह्या पुष्पकं दिव्यं विमानं सूर्यसन्निभम्।
उत्तरां दिशमालोक्य जगाम पुरुषर्षभः।

11. शर्मा, शेषेंद्र; षोडशी : रामायण के रहस्य, (द्वितीय संस्करण, 2019), पृ.सं. 112

12. शर्मा, शेषेंद्र; षोडशी : रामायण के रहस्य, (द्वितीय संस्करण, 2019) पृ.सं. 113

13. शर्मा, शेषेंद्र; षोडशी : रामायण के रहस्य, (द्वितीय संस्करण, 2019), पृ.सं. 112–113

14. तुलसीदास, रामचरितमानस, सुंदरकांड, 1.5.11 गीताप्रेस, गोरखपुर।

15. शर्मा, शेषेंद्र; षोडशी : रामायण के रहस्य, (द्वितीय संस्करण, 2019), पृ. सं. 10

– हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

❑❑❑

‘तुलसीदास की भक्ति भावना और विशिष्टाद्वैतवाद’

डॉ. देवी प्रसाद तिवारी

राम पर लिखना और राममय होकर लिखना दोनों में फर्क है। तुलसीदास की ख्याति का एक बड़ा कारण है उनका राममय होकर लिखना। वे स्पष्ट तौर पर इसकी घोषणा करते हैं कि–

स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा[1]

तुलसी आगम, निगम और पुराण का आश्रय लेते हुए अपनी रामकथा को आगे बढ़ाते हैं। ‘संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने’ की समझ रखने वाले बाबा तुलसी का राममय हो जाना अनायास ही नहीं था। ज्यादातर विद्वानों का ऐसा मानना हैं कि तुलसी का युग अर्थात् समकालीन परिस्थितियाँ उन्हें ‘राम’ की ओर ले जाती हैं तुलसी की पूरवर्ती कविता अर्थात् वीरगाथा कालीन कविता लोगों को उद्धत करती है अथवा ललकारती है लेकिन उनकी कविताई जनमानस में आत्मविश्वास पैदा करती है। तुलसी का युग अन्याय और अत्याचार का युग था और ऐसे कालखंड में राम कथा आम जन मानस के लिए किसी संजीवनी से कम न थी। तुलसी की कविता न्याय की प्रतिष्ठा करती है, धर्म की प्रतिष्ठा करती है, अन्याय के खिलाफ मुखर होती है। तुलसी के राम लोकनायक हैं। त्याग और धैर्य की प्रतिमूर्ति हैं। जिस दौर से सत्ता का प्रिय बने रहने का चलन बढ़ने लगा हो ऐसे दौर में तुलसीदास परंपरा के उस नायक को पुनः याद करते हैं जिसने आज्ञा की अवज्ञा करने के बजाय वनगमन ठीक समझा था।

समकालीन परिस्थितियों में गोस्वामी तुलसीदास की प्रासंगिकता इसलिए भी और अधिक बढ़ जाती है कि उनका लेखन समाज में आत्मविश्वास पैदा करता है, समाज को नई गति प्रदान करता है। कष्ट तो कलिकाल की महिमा है, कलिकाल के दौरान संभावनाओं की तलाश ही धैर्य है। आज जिसे आधुनिकता के नाम से प्रचारित प्रसारित किया जा रहा है, मिथ्या विचारों के आलोक में आस्था का अपमान किया जा रहा है, भक्ति कथा को गल्प बताया जा रहा है यह सब कुछ अव्यवस्थित समाज व्यवस्था का सीधा संबंध मनुष्य की दिनचर्या से है और दिनचर्या का सीधा संबंध मनुष्य के स्वास्थ्य से है। गोस्वामी तुलसीदास के नायक राम की दिनचर्या, उनका धैर्य, उनका आत्मविश्वास समाज को सकारात्मक गति प्रदान करने वाला है। परहित की कामना और आत्मरक्षा का भाव तुलसी की कविताई को हर युग में प्रासंगिक बनाते हैं। दरअसल तुलसीदास ने जिन विचारों को लेकर आगे बढ़ने का प्रयास किया उनकी जड़े इतनी गहरी हैं कि जब भी कोई संवेदनशील पाठक तुलसी की कविता से संवाद करेगा तो उसकी पहुँच अनायास ही उन विचारों अथवा सिद्धांतों तक हो जाएगी जहाँ से पारंपरिक भारतीय दर्शन का आरंभ होता है। यूँ तो तुलसीदास ने स्वयं ही यह घोषणा कर दी थी कि उनकी रचनाधर्मिता नाना मतों, सिद्धांतों और विचारों से प्रभावित रही है लेकिन विद्वत समाज उनकी

कृतियों के आलोक में अपने–अपने मत–मतांतर को पुष्ट करने का प्रयास करता रहा है। यही तो कालजयी और कालजीवी रचनाओं का सर्वप्रमुख गुण है कि जिन सिद्धांतों के आलोक में उनका सृजन हुआ उनकी प्रत्येक पंक्तियाँ उन्हीं सिद्धांतों को युगों तक पुष्ट करने का भार वहन करते हुए स्वयं को धन्य महसूस करती हैं। तुलसी की कविता अपने आराध्य राम को तो जन–जन तक पहुँचाती ही है साथ ही साथ उन दार्शनिक सिद्धांतों का भी सरलीकरण करती है जिनकी प्रेरणा से कलयुग में भी 'राम नाम की महिमा' पुष्ट होती है। विद्वत समाज तुलसी की कविता को अपने–अपने ढंग से समझने समझाने का नित्य प्रयास करता रहा है। वह कभी शंकराचार्य के अद्वैत का आलंबन लेता है तो कभी रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत का अर्थात् तुलसी की कविता में अद्वैत भी है और उसका खंडन करने वाला विशिष्टाद्वैत भी। सगुणोपासना में लीन तुलसीदास की कविताई को समझने के लिए रामानुज का दार्शनिक सिद्धांत अनुकूल जान पड़ता है। रामानुजाचार्य का मत है कि 'जीव और जगत ब्रह्म के शरीर हैं।' तुलसी भी ब्रह्म और जीव को 'सहज सँघाती बताते हैं'–

बरनत बरन प्रीति बिलगाती।
ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती।[2]
ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी।।[3]

ब्रह्म की सत्ता तो सभी स्वीकारते हैं लेकिन ब्रह्म ही नियंता है ऐसा रामानुज का मानना है। समस्त प्राणियों पर उसका नियंत्रण है लेकिन वह अदृश्य है। वह सब में व्याप्त है, अंतर्यामी है। रामानुज के इस मत को तुलसी कुछ यूँ समझाते हैं–

बिनु पग चलई सुनई बिनु काना।
कर बिधि करम करई बिधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।[4]

रामानुज के मतानुसार परमात्मा केवल नियंत्रक ही नहीं है, रक्षक भी है। तुलसी की कविता रामानुज के इन्हीं सिद्धांतों को आगे बढ़ाते हुए और भी प्रासंगिक हो उठती है कि–

जब–जब होइ धरम कै हानी,
बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।।[5]
तब–तब धरि प्रभु बिबिध सरीरा,
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।[6]

यही तो परमात्मा का रक्षक रूप है। तुलसी के राम अचानक प्रगट होकर शत्रुओं का संहार नहीं करते। वे बालरूप में अवतरित होते हैं जिन्हें निहार कर अयोध्या मुदित होती है। उनके बाल सखा हैं, भाई हैं जिनके साथ वे सरयू तट पर भ्रमण करते हैं–

सरजू बर तीरहिं तीर फिरैं रघुवीर सखा अरु बीर सबै।
धनुहीं कर तीर, निषंग कसें कटि पीत दुकूल नवीन फबै।।
तुलसी तेहि अवसर लावनिता दस चार नौ इक्कीस सबै।
मति भारति पंगु भई जो निहारि बिचारी फिरी उपमा न फबै।।[7]

गुरु की आज्ञा के अनुरूप व्यवहार करने वाले राम उन राक्षसों का वध करते हैं जो ऋषियों के प्रति वैर भाव रखते हैं, उनकी तपस्या को खंडित करने का प्रयास करते हैं। यही तो परमात्मा की लीला है कि उन्होंने जो कुछ भी किया गुरु की आज्ञा से किया अर्थात् वे भी सामाजिक अनुशासन का पालन करते हैं। राम का चरित्र समाज में इस भाव की प्रतिष्ठा करता है कि शक्ति का प्रयोग अपराधियों के खिलाफ होना चाहिए न कि हतोत्साहित एवं दुर्बल जनों के खिलाफ। तुलसी कमजोर और हतोत्साहित समाज में उस 'राम' की प्रतिष्ठा करते हैं जो 'निर्बल के बल' हैं। पारंपरिक दार्शनिक सिद्धांतों के अनुरूप गोस्वामी तुलसीदास ऐसे समाज की परिकल्पना करते हैं जहाँ भय, रोग इत्यादि नकारात्मक प्रवृत्तियों के लिए स्थान नहीं है। जिस शक्ति या स्वरूप में तुलसी का विश्वास है वही तो स्रष्टा है अर्थात् सब उसी का किया धरा है–

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत–संत गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार।।[8]

तुलसी के राम नर तनधारी हैं लेकिन चिदानंद हैं–

चिदानंदमय देह तुम्हारी।
बिगत बिकार जान अधिकारी।।
नर तन धरेहु संत सुर काजा।
कहहु करहु जस प्राकृत राजा।।[9]

तुलसी के राम परमब्रह्म हैं, जगत नियंता हैं, स्रष्टा हैं ऐसा विश्वास भक्तों में है लेकिन मनुष्य स्वभाव के कारण उन भक्तों के मन में अनेक प्रकार के संशय उत्पन्न होते हैं जिसका समाधान तुलसी श्रीरामचरितमानस में करते हैं–

मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावही।
कह नेति निगत पुरान आगम जासु कीरति गावही।।
सोइ राम ब्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति मायाधनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी।।[10]

श्री रामचरितमानस में अनेक ऐसी पंक्तियाँ हैं जो प्रभु श्रीराम को परमब्रह्म सिद्ध करती हैं। राम की भक्ति कोई कठिन काम नहीं है केवल नाम जप मात्र से वह सर्वत्र सुलभ है अर्थात् जिसके पास कुछ भी नहीं है, निर्बल है, निर्धन है वह भी रामभक्त होने का अधिकारी है। तुलसी की समकालीन परिस्थितियाँ भी कुछ ऐसी ही थी जहाँ तीर्थाटन के लिए जनता को भारी कर चुकाना पड़ता था। हिंदुओं का बलात धर्म परिवर्तन सत्ता का उद्देश्य था ऐसे समय में नामजप मात्र से अपने इष्ट की प्राप्ति जनसामान्य के हित में थी। राम नाम की महिमा की प्रतिष्ठा तुलसी कुछ इस प्रकार से करते हैं–

चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका।
भए नाम जपि जीव बिसोका।।
बेद पुरान संतमत ऐहु।
सकल सुकृत फल राम सनेहू।।[11]
'कलि केवल मल मूल मलीना।
पाप पयोनिधि जनमनमीना।
नाम कामतरु काल कराला।
सुमिरत समन सकल जल जाला।।[12]
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू।
रामनाम अवलंबन ऐकू।।[13]

जो घट–घट में व्याप्त है वही ब्रह्म है, घट–घट में व्याप्त ब्रह्म ही राम हैं। जड़ और चेतन में उसी की व्याप्ति है, वही विशिष्ट है, सगुण है, साकार है। समूची सृष्टि में उसी का वास है। तुलसी उसी की वंदना करते हुए लिखते हैं कि–

सीयराममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।[14]

राम कथा मनुष्य में व्याप्त भ्रम का नाश करती है। वह अन्य कथाओं की भाँति गल्प नहीं है क्योंकि वह प्रमाणों के आलोक में आगे बढ़ती है। धर्म उसके मूल में है। कथा में प्रतिष्ठित परब्रह्म के गुण धर्मानुकूल हैं, युगानुकूल हैं–

एक अनीह अरुप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा।।
ब्यापक विश्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना।।
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी।।[15]

श्री रामचरितमानस में त्याग की प्रतिष्ठा है अर्थात् जब समाज में इस भाव की प्रतिष्ठा हो जाए कि जड़ और चेतन में केवल परमात्मा ही विशिष्ट है तो मोह का स्थान स्वतः ही समाप्त हो जाता है। मनुष्य सत्य के जितना करीब जाता है माया के बंधन से उतना ही दूर। तुलसीदास यूँ ही माया को महाठगिनी नहीं कहते। उन्होंने पारंपरिक ज्ञान के आलोक में इष्ट की सत्ता से साक्षात्कार करते हुए उन कारणों पर भी दृष्टिपात किया है जो भक्ति मार्ग में बाधक हैं। मोह इसका सबसे बड़ा कारण है। मोह से भ्रम उत्पन्न होता है और भ्रम के कारण ही मनुष्य धर्म के विपरीत आचरण करता है।

रामानुजाचार्य दक्षिण में वैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा करते हुए अद्वैत का खंडन करते हैं यही कारण था कि उनका अपने गुरु यादव प्रकाश से मतभेद हुआ। निर्गुण निराकार ब्रह्म को नकारते हुए सगुण

साकार ब्रह्म की उपासना के पीछे उनके अपने तर्क हैं। वे चित्त और अचित्त को अर्थात् जीव और प्रकृति को ब्रह्म का ही प्रकार मानते हैं। ये दोनों ब्रह्म के ही आधीन हैं। रामानुज जीव और जगत दोनों की स्वतंत्र सत्ता स्वीकारते हैं जबकि अद्वैत मतानुयायी ब्रह्म को सत्य लेकिन जगत को मिथ्या मानते हैं। शंकराचार्य केवल ब्रह्म की सत्ता स्वीकारते हैं अर्थात् एक पदार्थ को सत्य मानते हैं लेकिन रामानुज तीन पदार्थ स्वीकारते हैं जीव, जगत और ईश्वर। जीव में गुण और दोष विद्यमान होते हैं लेकिन ईश्वर या परमात्मा जीव के इन गुण दोषों से मुक्त होता है। रामनुज सगुण के उपासक हैं उनसे प्रेरित तुलसी भी सगुण ब्रह्म की उपासना करते हैं। रामानुज के यहाँ भी ईश्वर की उपासना का सर्वप्रमुख साधन भक्ति है और तुलसी के यहाँ भी। रामानुज माया की सत्ता स्वीकारते हैं लेकिन माया ब्रह्म के आधीन है न कि ब्रह्म माया के। जीव माया के वशीभूत होता है, ईश्वर तो मायापति है।

माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुनखानी।
परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता।।[16]

जिस प्रकार रामानुज के ईश्वर में, ब्रह्म में, परमात्मा में यह ब्रह्मांड लीन है उसी प्रकार तुलसी के इष्ट राम में यह ब्रह्मांड लीन है–

ब्रह्मांड निकाया निरमित माया रोम–रोम प्रति बेद कहैं।[17]

तुलसीदास जीव और ब्रह्म की अलग–अलग सत्ता स्वीकारते हैं, जीव ब्रह्म के समकक्ष नहीं हो सकता वह तो ब्रह्म का अंश मात्र है। जीव का स्वयं को ईश्वर के समकक्ष समझना ही तो अज्ञान है–

जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़ बिबेक अभिमान।
परहिं कलप भरि नरक महुँ जीव की ईस समान।।[18]

रामानुज के ब्रह्म ही तुलसी के राम हैं–

राम ब्रह्म परमारथ रुपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा।।
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहिं नित नेति निरुपहिं बेदा।।[19]

जगत को मिथ्या, झूठा बताने वालों से तुलसी का मतभेद है।

कवितावली में वे लिखते हैं कि–

झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जगु, संतक हंत जे अंतु लहा है।
ताको सहै सठ! संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है।।
जानपनीको गुमान बड़ो, तुलसी के बिचार गँवार महा है।
जानकी जीवनु जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है।।[20]

तुलसीदास भक्त कवि हैं, उनकी कविता सगुणोपासना को पुष्ट करती है। वे दार्शनिक नहीं है लेकिन दार्शनिकों से कम भी नहीं हैं। उनका एक मत है 'राम' उनका एक मात्र सिद्धांत है।

'राम', उनका एक मात्र विचार है 'राम' और इसी 'राम' की लोक में प्रतिष्ठा हेतु उन्होंने अनेक दार्शनिक मतों का सहारा लिया या इसे यूँ कहिए कि जगत नियंता ब्रह्म ने उन्हें ऐसा करने के लिए प्रेरित किया। तुलसी की पंक्तियों के आलोक में ही इसे बेहतर समझा जा सकता है कि–

कवित्त विवेक एक नहीं मोरे
सत्य कहहूँ लिख कागज कोरे।।[21]

यही तो भक्ति की पराकाष्ठा है कि सब कुछ उसी परमात्मा का ही किया धरा है। अनेक विद्वानों का मत है कि तुलसी समन्वयवादी हैं जबकि उन्होंने जो कुछ भी किया लोक में 'राम' नाम की प्रतिष्ठा के निमित्त किया। जो विचार या दर्शन सर्वाधिक प्रभावशाली ढंग से तुलसी के इस प्रयास को सफल बनाता है वह उनकी रचनाओं में उतने ही प्रभावशाली ढंग में विद्यमान भी है। प्रायः माया के वशीभूत होकर कुछ विद्वान तुलसी की रचनाओं से ऐसी पंक्तियाँ छाँटकर निकालने का प्रयास करते हैं जिससे यह साबित किया जा सके कि तुलसी का समुदाय विशेष से मतभेद है जबकि ऐसा नहीं है। तुलसी की रचनाधर्मिता किसी की स्वतंत्रता में बाधा नहीं है बल्कि वह तो जीव को माया से मुक्त करने का प्रयास है। तुलसी की

दृष्टि एक भक्त की दृष्टि है और भक्त किसी से वैर भाव नहीं रखता लेकिन जिनकी दृष्टि पर पर्दा पड़ा है वे अनायास ही भक्तों के प्रति वैर भाव रखते हैं, तुलसी के इष्ट 'राम' ऐसे लोगों का भी उद्धार करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्री रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ सं.–2

2. वही, पृष्ठ सं.–24

2. वही, पृष्ठ सं.–945

4. वही, पृष्ठ सं.–107

5. वही, पृष्ठ सं.–110

6. वही, पृष्ठ सं.–110

7. कवितावली–गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ सं.–3

8. श्री रामचरितमानस–गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ सं.–9

9. वही, पृष्ठ सं.–407

10. वही, पृष्ठ सं.–53

11. वही, पृष्ठ सं.–30

12. वही, पृष्ठ सं.–30

13. वही, पृष्ठ सं.–30

14. वही, पृष्ठ सं.–17

15. वही, पृष्ठ सं.–11

16. वही, पृष्ठ सं.–903

17. वही, पृष्ठ सं.–165

18. वही, पृष्ठ सं.–66

19. वही, पृष्ठ सं.–380

20. कवितावली–गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ सं.–87

21. श्री रामचरितमानस–गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ सं.–13

– ग्रा. अकबालपुर, पो. इटौरी जिला, अंबेडकर नगर, उत्तर प्रदेश–224159

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित, साहित्यिकी, डी. 54, निरालानगर, लखनऊ–226020
2. डॉ. कमल किशोर गोयनका, ए–98, अशोक विहार, फेज प्रथम, दिल्ली–110052
3. डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण', 74/3, न्यू नेहरू नगर, रुड़की–247667
4. प्रो. पूरन चंद टंडन, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
5. प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल, 56, अशोक नगर, अधारताल, जबलपुर, मध्य प्रदेश–482004
6. डॉ. नृत्य गोपाल, हिंदी विभाग, हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110007
7. डॉ. दीनदयाल, कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्टडीज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
8. श्री अखिलेष आर्येंदु, ए–11, त्यागी विहार, नांगलोई, दिल्ली–110041
9. श्री हरींद्र कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
10. डॉ. नरेश मिश्र, 960, सेक्टर–1, रोहतक, हरियाणा
11. डॉ. शालिनी राजवंशी, सहायक निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम, नई दिल्ली–110066
12. डॉ. शुकंतला कालरा, एन.डी.–57, पीतमपुरा, दिल्ली–110034
13. श्री वीरेश कुमार, राष्ट्रीय परीक्षण सेवा, भा.भा.सं., मैसूर, भारत
14. सुश्री नीरजा माधव, मधुवन, सा. 14/96 एन–5, सारंगनाथ कॉलोनी, सारनाथ, वाराणसी–221007
15. डॉ. दीपक कुमार पांडेय, सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, पंजाब केंद्रीय विश्वविद्यालय, बठिंडा गाँव एवं पोस्ट घुद्दा, बठिंडा, पंजाब–151401
16. सुश्री साक्षी जोशी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
17. डॉ. अहिल्या मिश्र, 93/सी राज सदन, वेंगल राव नगर, तेलंगाना, हैदराबाद–500038
18. श्री गन्नू कृष्णामूर्ती, मकान नं. 5–3–770/1, बिलाल मस्जिद के पीछे, विद्यानगर कॉलोनी, कामा रेड्डी, निजामाबाद–503111
19. डॉ. प्रभु वि उपासे, हिंदी सह–प्राध्यापक, सरकारी कला कॉलेज, डॉ. बी आर अंबेडकर मार्ग, बेंगलूरु–560001
20. डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी), राजकीय महाविद्यालय, गौंडा इगला, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश

21. डॉ. अमिला दमयंती, लेक्चरर डिपार्टमेंट ऑफ इंडियन एंड एशियन डांस फैकल्टी ऑफ डांस एंड ड्रामा, यूनिवर्सिटी ऑफ द विजुअल एंड परफॉर्मिंग आर्ट्स, कोलंबो–7

    Dr. Amila Damayanthi, Lecturer Department of Indian & Asian Dance Faculty of Dance and Drama, University of the Visual and Performing Arts, Colombo -7
22. डॉ. शेख़ अब्दुल ग़नी, 1–3–255, पहाड़ी नगर, जिला–यदादरी भुवनगिरी–तेलंगाना, भुवनगिरी–508116
23. डॉ. शशिकांत मिश्र, विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग एवी कॉलेज ऑफ आर्ट्स, साइंस एंड कॉमर्स दोमलगुडा, हैदराबाद–500029
24. डॉ. दीपिका विजयवर्गीय, सह–आचार्य, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
25. प्रो. जयंतकर शर्मा, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, गवर्नमेंट विमेंस कॉलेज, संबलपुर, ओड़िशा
26. प्रो. निरंजन कुमार, फ्लैट नंबर 4, वॉर्डन फ्लैट्स, कोयना छात्रावास, जेएनयू, नई दिल्ली–110067
27. डॉ. आलोक रंजन पांडेय, हिंदी विभाग, रामानुजन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
28. डॉ. वेदप्रकाश, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
29. प्रो. सुनील कुमार तिवारी, प्रोफेसर, शहीद भगत सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
30. डॉ. अभिषेक शर्मा, वरिष्ठ सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, रेवेंशा विश्वविद्यालय, कटक, ओड़िशा–753003
31. प्रो. दिलीप सिंह, 75, आनंदवन, हर्राटोला, पोड़की, लालपुर, पोस्ट जोहिलाबाँध, अनूपपुर, मध्य प्रदेश–484886
32. डॉ. तृप्ता, एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी विभाग, अदिति महाविद्यालय बवाना, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
33. डॉ. जे. आत्माराम, हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद
34. डॉ. देवी प्रसाद तिवारी, ग्रा. अकबालपुर, पो. इटौरी जिला, अंबेडकर नगर, उत्तर प्रदेश–224159

❑❑❑

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,

शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली – 110066

ई.मेल – chdsalesunit@gmail.com

फोन नं. – 011–26105211 एक्सटेंशन नं. 201, 244

महोदय / महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए / दस वर्ष के लिए / बीस वर्ष के लिए दिनांक .... से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक / पंचवर्षीय / दसवर्षीय / बीसवर्षीय सदस्यता शुल्क .... रुपए, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. .... दिनांक .... द्वारा भेज रहा / रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम : ....
पूरा पता : ....
....
....
मोबाइल / दूरभाष : ....
ई–मेल : ....
संबद्धता / व्यवसाय : ....
आयु : ....
पूरा पता जिस पर पत्रिका प्रेषित की जाए : ....
....

सदस्यता	शुल्क डाक खर्च सहित
वार्षिक सदस्यता	रु. 125.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 625.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
बीसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम एवं पूरा पता भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट : कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।

पंजी संख्या. 10646 / 61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. इ. डी. 305-6-2021
700

भाषा

नवंबर–दिसंबर (विशेषांक) 2021

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्
हिंदी
केंद्रीय
निदेशालय

Digital India
Power To Empower

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
www.chdpublication.mhrd.gov.in